॥ श्रीः ॥

चौखम्बा सुरभारती ग्रन्थमाला
१३७

समास-सन्दर्शिका

(सिद्धान्तकौमुदी के समास-प्रकरण का विश्लेषण)

लेखक
डॉ० बालगोविन्द झा
व्याकरणाचार्य, साहित्यशास्त्री, एम० ए०, पी-एच० डी०,
अध्यक्ष, संस्कृत-विभाग
स० व० पटेल महाविद्यालय, भभुआ
जिला–रोहतास, (बिहार)

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन
वाराणसी

॥ श्रीः ॥

चौखम्बा सुरभारती ग्रन्थमाला
१३७

समास-सन्दर्शिका

(सिद्धान्तकौमुदी के समास-प्रकरण का विश्लेषण)

लेखक

डॉ० बालगोविन्द झा

व्याकरणाचार्य, साहित्यशास्त्री, एम० ए०, पी-एच० डी०

अध्यक्ष, संस्कृत-विभाग

स० व० पटेल महाविद्यालय, भभुआ

जिला-रोहतास, (बिहार)

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन

वाराणसी

प्रकाशक

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन

(भारतीय संस्कृति एवं साहित्य के प्रकाशक तथा वितरक)

के० ३७/११७, गोपालमन्दिर लेन

पो० बा० नं० ११२९, वाराणसी २२१००१

दूरभाष : ५५३५७

सर्वाधिकार सुरक्षित

द्वितीय संस्करण १९९०

मूल्य २०–००

अन्य प्राप्तिस्थान

चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान

३८ यू. ए., जवाहरनगर, बंगलो रोड

दिल्ली ११०००७

दूरभाष : २३६३९१

*

प्रधान वितरक

चौखम्बा विद्याभवन

चौक (बनारस स्टेट बैंक भवन के पीछे)

पो० बा० नं० १०६९, वाराणसी २२१००१

दूरभाष : ६३०७६

मुद्रक

श्रीजी मुद्रणालय

वाराणसी

प्राक्कथन

भारतवर्ष के अधिकांश विश्वविद्यालयों में स्नातक प्रतिष्ठा या स्नातक कक्षाओं के पाठ्यक्रम के अन्तर्गत वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी अथवा मध्यसिद्धान्तकौमुदी का समास-प्रकरण पाठ्यांश के रूप में निर्धारित है।

विगत कई वर्षों के अपने अध्यापनानुभव से मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि मूल पुस्तक को पढ़कर समास-प्रकरण को पूरी तरह समझ पाना छात्रों के लिए परम कष्टसाध्य होता है; अतः छात्रों की इस कठिनाई के समाधान-हेतु एक ऐसी पुस्तक आवश्यक है, जो उन्हें इस कष्ट से उबार ले। छात्रों की उसी आवश्यकता की परिणति है– "समास-सन्दर्शिका"।

उपर्युक्त कक्षाओं के छात्र समास-प्रकरण के अन्तर्गत सभी सूत्रों एवं प्रयोगों की विस्तृत साधनिकाओं को सरलतापूर्वक हृदयङ्गम कर सकें; इसी उद्देश्य से यह 'समास-सन्दर्शिका' लिखी गयी है। इसमें समास-प्रकरण को सरलतापूर्वक समझाने का प्रयास किया गया है।

मुझे विश्वास है कि प्रस्तुत पुस्तक से छात्र-वर्ग तथा अन्य जिज्ञासु समास-प्रकरण का अध्ययन करते समय निश्चय ही लाभान्वित होंगे। यदि यह 'समास-सन्दर्शिका' उनका कुछ भी हित साधन कर सकी तो मैं अपने परिश्रम को सार्थक समझूंगा।

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी के सहृदय व्यवस्थापकों ने प्रस्तुत पुस्तक को प्रकाशित कर मेरे प्रति जो सौहार्द-प्रकाशन किया है, तदर्थ मैं उन्हें हार्दिक साधुवाद देता हूँ।

विनयावनत

बालगोविन्द झा

सूत्र-प्रयोग-वार्तिक-सूची

समास-विषयक ज्ञेय बातें	१
केवल समास	४
सह सुपा (सूत्र)	४
भूतपूर्वः (प्रयोग)	४
इवेन समासो विभक्त्यलोपश्च	५
अव्ययीभावसमास-प्रकरण	
अव्ययं विभक्ति० (सूत्र)	६
अपदिशम् (प्रयोग)	६
अधिहरि ,,	७
अधिगोपम् ,,	८
उपकृष्णम् ,,	८
सम्मद्रम् ,,	९
दुर्यवनम् ,,	९
निर्मक्षिकम् ,,	१०
अतिहिमम् ,,	१०
अतिनिद्रम् ,,	१०
इतिहरि ,,	११
अनुविष्णु ,,	११
अनुरूपम् ,,	११
प्रत्यर्थम् ,,	१२
यथाशक्ति ,,	१२
सहरि ,,	१२
अव्ययीभावे चाकाले (सूत्र)	१२
सचक्रम् (प्रयोग)	१३
सक्षत्रम् ,,	१३
सतृणम् ,,	१३
साग्नि ,,	१४
यथाऽसादृश्ये (सूत्र)	१४
यावदवधारणे ,,	१४
शाकप्रति (प्रयोग)	१५
अपपरिबहि० (सूत्र)	१५
आङ्मर्यादा० ,,	१५
लक्षणेनाभिप्रती० ,,	१६
अनुर्यत्समया ,,	१७
यस्य चायामः ,,	१७
पारेमध्ये षष्ठ्या वा ,,	१८
संख्या वंश्येन ,,	१८
नदीभिश्च (सूत्र)	१९
अन्यपदार्थे च० ,,	१९
अव्ययीभावे शरत्० ,,	२०
प्रतिविपाशम् (प्रयोग)	२०
उपजरसम् ,,	२०
प्रत्यक्षम् ,,	२१
परोक्षम् ,,	२१
समक्षम् ,,	२१
उपराजम् ,,	२२
अध्यात्मम् ,,	२२
उपचर्मम् ,,	२२
उपनदम् ,,	२२
उपसमिधम् ,,	२३
उपगिरम् ,,	२३
तत्पुरुषसमास-प्रकरण	
द्वितीया श्रितातीत० (सूत्र)	२५
ग्रामगमी (प्रयोग)	२५

विशेष—पाठकों की सुविधा के लिए इन प्रयोगों की अकारादि क्रम से व्यवस्थित सूची ग्रन्थान्त में प्रस्तुत की गई है।

स्वायङ्कृतिः (प्रयोग)	२५	सिद्धशुष्क० (सूत्र)	३६
खट्वा क्षेपे (सूत्र)	२६	ध्वाङ्क्षेण क्षेपे ,,	३६
कालाः ,,	२६	कृत्यैर्ऋणे ,,	३७
अत्यन्तसंयोगे च ,,	२७	संज्ञायाम् ,,	३७
तृतीया तत्कृतार्थेन० ,,	२७	क्तेनाहो० ,,	३७
पूर्वसदृश० ,,	२८	तत्र ,,	३८
कर्तृकरणे० ,,	२८	पात्रेसमिताः (प्रयोग)	३८
कृत्यैरधिकार्थ० ,,	२९	दिक्संख्ये० (सूत्र)	३८
अन्नेन व्यञ्जनम् ,,	२९	तद्धितार्थोत्तर० ,,	३९
भक्ष्येण मिश्रीकरणम् ,,	३०	षाण्मातुरः (प्रयोग)	३९
चतुर्थी तदर्थार्थ० ,,	३०	पञ्चगवधनः ,,	४०
अर्थेन नित्य० (वार्त्तिक)	३०	पञ्चगवम् ,,	४०
भूतबलिः (प्रयोग)	३०	कुत्सितानि० (सूत्र)	४०
पञ्चमी भयेन (सूत्र)	३१	उपमानानि० ,,	४१
सुखापेतः (प्रयोग)	३१	उपमितं० ,,	४१
स्तोकान्तिक० (सूत्र)	३१	विशेषणं० ,,	४२
षष्ठी ,,	३२	क्तेन नञ्वि० ,,	४२
याजकादिभिश्च ,,	३२	शाकपार्थिवः (प्रयोग)	४२
सर्वश्वेतः, सर्वमहान् (प्रयोग)	३२	सन्महत्० (सूत्र)	४३
न निर्धारणे (सूत्र)	३३	महावैयाकरणः (प्रयोग)	४३
सर्पिषो ज्ञानम् (प्रयोग)	३३	किं क्षेपे (सूत्र)	४३
पूरणगुण० (सूत्र)	३३	युवखलतिः (प्रयोग)	४३
क्तेन च पूजायाम् ,,	३३	कृष्णसारङ्गः ,,	४४
अधिकरण० ,,	३४	कडाराः कर्म० (सूत्र)	४४
तृजकाभ्यां० ,,	३४	मयूरव्यंस० ,,	४४
कर्त्तरि च ,,	३४	आख्यातमाख्यातेन० ,,	४४
अर्धं नपुंसकम् ,,	३५	ईषदकृता ,,	४५
प्राप्तापन्ने० ,,	३५	अब्राह्मणः (प्रयोग)	४५
कालाः परि० ,,	३५	अनश्वः ,,	४५
सप्तमी शौण्डैः ,,	३६	कुगतिप्रादयः (सूत्र)	४६

ऊर्यादि० (सूत्र)	४६
सत्कृत्य (प्रयोग)	४६
अलङ्कृत्य ,,	४७
पुरस्कृत्य ,,	४७
अस्तङ्गत्य ,,	४७
तिरोभूय ,,	४७
कुम्भकारः ,,	४७
द्वयङ्गुलम् ,,	४८
अहोरात्रः ,,	४८
द्विरात्रम् ,,	४८
अतिरात्रः ,,	४९
परमराजः ,,	४९
अतिराजः ,,	४९
सर्वाह्णः ,,	४९
द्वयहः, त्र्यहः ,,	५०
अश्वोरसम् ,,	५०
ग्रामतक्षः ,,	५०
अतिश्वो वराहः ,,	५१
आकर्षश्वः ,,	५१
द्विनावम् ,,	५१
द्वयञ्जलम् ,,	५२
महाब्रह्मः, महाब्रह्मा (प्रयोग)	५२
द्वादश ,,	५२
त्रयोदश ,,	५३
विभाषा चत्वारिंशत्० (सूत्र)	५३
परवल्लिङ्गं० ,,	५३
छाया बाहुल्ये ,,	५४
सभाराजा० ,,	५४
अशाला च ,,	५४
विभाषा सेना० ,,	५५

बहुव्रीहिसमास-प्रकरण

अनेकमन्यपदार्थे (सूत्र)	५६
प्रपतितपर्णः (प्रयोग)	५६
अविद्यमानपुत्रः ,,	५६
कण्ठेकालः ,,	५७
उष्ट्रमुखः ,,	५७
केशचूडः ,,	५७
अस्तिक्षीरा गौः ,,	५८
स्त्रियाः पुंवत्० (सूत्र)	५८
चित्रगुः (प्रयोग)	५८
रूपवद्भार्यः ,,	५९
चित्राजरद्गुः ,,	५९
कल्याणीपञ्चमा ,,	६०
कल्याणपञ्चमीकः ,,	६१
सर्वकभार्यः ,,	६१
कुक्कुटाण्डम् ,,	६२
एतायते ,,	६२
पाचिकाभार्यः ,,	६३
संज्ञापूरण्योश्च (सूत्र)	६३
वृद्धिनिमित्तस्य च० ,,	६४
स्वाङ्गाच्चेतः (सूत्र)	६४
जातेश्च ,,	६५
आसन्नविंशाः (प्रयोग)	६६
केशाकेशि ,,	६६
सपुत्रः, सहपुत्रः ,,	६७
सहपुत्राय (प्रयोग)	६७
उपदशाः ,,	६७
दीर्घसक्थः ,,	६८
पञ्चाङ्गुलम् ,,	६८
द्विमूर्धः ,,	६८

अन्तर्लोमः (प्रयोग)	६९
द्रुणसः ,,	६९
उन्नसः ,,	६९
प्रणसः ,,	६९
विग्रः ,,	७०
विख्यः (प्रयोग)	७०
सुप्रातः ,,	७०
अप्रजाः ,,	७०
धर्मादनिच्० (सूत्र)	७१
प्रज्ञुः, संज्ञुः (प्रयोग)	७१
ऊर्ध्वज्ञुः, ऊर्ध्वजानुः ,,	७२
द्विधन्वा ,,	७२
युवजानिः ,,	७२
उद्गन्धिः ,,	७२
अल्पाख्यायाम् (सूत्र)	७३
उपमानाच्च ,,	७३
व्याघ्रपात् (प्रयोग)	७३
वयसि दन्तस्य दतृ (सूत्र)	७३
उत्काकुत् ,,	७४
सुहृन्मित्रम् ,,	७४
व्यूढोरस्कः ,,	७४
प्रियसर्पिष्कः ,,	७४
बहुदण्डिका नगरी ,,	७५
महायशस्कः ,,	७५
बहुमालाकः ,,	७५
बहुश्रेयान् ,,	७६
प्रशस्तभ्राता ,,	७६
कण्ठेकालः ,,	७७
कृतकृत्यः ,,	७७
आहिताग्निः ,,	७७
अस्युद्यतः ,,	७७

द्वन्द्वसमास-प्रकरण

चार्थे द्वन्द्वः (सूत्र)	७९
(क) समुच्चय	७९
(ख) अन्वाचय	७९
(ग) इतरेतरयोग	८०
(घ) समाहार	८०
राजदन्तादिषु० ,,	८०
धर्मादिष्वनियमः (वार्त्तिक)	८०
दम्पती-जम्पती-जायापती (प्रयोग)	८०
हरिहरौ ,,	८१
हरिगुरुहराः ,,	८१
अजाद्यदन्तम् (सूत्र)	८१
अल्पाच्तरम् ,,	८१
हेमन्तशिशिरवसन्ताः (प्रयोग)	८२
कुशकाशम् ,,	८२
तापसपर्वतौ ,,	८२
ब्राह्मणक्षत्रियविट्शूद्राः (प्रयोग)	८३
युधिष्ठिरार्जुनौ ,,	८३
द्वन्द्वश्च प्राणि० (सूत्र)	८३
अनुवादे चरणानाम् ,,	८४
अर्काश्वमेधम् (प्रयोग)	८४
अध्ययनतोऽवि० (सूत्र)	८५
जातिरप्राणिनाम् ,,	८५
विशिष्टलिङ्गो नदी० ,,	८५
क्षुद्रजन्तवः ,,	८६
येषां च विरोधः० ,,	८६
शूद्राणामनि० ,,	८७
प्लक्षन्यग्रोधम् (प्रयोग)	८८
आनङ् ऋतो द्वन्द्वे (सूत्र)	८८
मातापितरौ (प्रयोग)	८८

पितापुत्रौ (प्रयोग)	८९
मित्रावरुणौ ,,	८९
अग्निष्टुत् ,,	८९
अग्नीषोमौ ;,	८९
आग्निमारुतम् (प्रयोग)	९०
आग्नावैष्णवम् ,,	९०
द्यावाभूमी ,,	९१
दिवसश्च पृथिव्याम् (सूत्र)	९१
उषासासूर्यम् (प्रयोग)	९१
मातरपितरौ ,,	९२
वाक्त्वचम् ,,	९२
एकशेषसमास-प्रकरण	
विरूपाणामपि० (वार्तिक)	९३
गार्ग्यौ (प्रयोग)	९३
गार्ग्यी ,,	९४
हंसौ ;:	९४
भ्रातरौ, पुत्रौ ,,	९४
शुक्लम् ,,	९४
पितरौ ,,	९५
श्वशुरौ ,,	९५
तौ ,,	९५
यौ ,,	९५
त्यदादितः० (वार्तिक)	९५
ग्राम्यपशुसङ्घे० (सूत्र)	९६
अनेकशफे० (वार्तिक)	९६
सर्वसमासान्त-प्रकरण	
ऋक्पूरब्धूः० (सूत्र)	९७
अनृक्साम (प्रयोग)	९७
विष्णुपुरम् ,,	९७
विमलापं सरः ,,	९८
द्वीपम् आदि (प्रयोग)	९८
अवर्णान्ताद्वा (वार्तिक)	९९
अनूपो देशः (प्रयोग)	९९
राजधुरा ,,	९९
सखिपथः ,,	९९
रम्यपथो देशः ,,	१००
प्रतिसामम् (प्रयोग)	१००
प्रतिलोमम् ,,	१००
कृष्णभूमः ,,	१००
पञ्चनदम् ,,	१०१
पद्मनाभः ,,	१०१
अचतुरः ,,	१०२
त्रिचतुराः ,,	१०२
उपचतुराः ,,	१०२
स्त्रीपुंसौ ,,	१०२
धेन्वनडुहौ ,,	१०२
ऋक्सामे ,,	१०३
वाङ्मनसे ,,	१०३
अक्षिभ्रुवम् ,,	१०३
नक्तन्दिवम् ,,	१०३
रात्रिन्दिवम् ,,	१०३
अहर्दिवम् ,,	१०४
सरजसम् ,,	१०४
निःश्रेयसम् ,,	१०४
पुरुषायुषम् ,,	१०४
द्व्यायुषम् ,,	१०५
जातोक्षः आदि ,,	१०५
उपशुनम् ,,	१०५
गोष्ठश्वः ,,	१०६
ब्रह्मवर्चसम् ,,	१०६

पल्यवर्चसम् (प्रयोग) १०६
अवतमसम् ,, १०६
श्वोवसीयम् ,, १०७
अनुरहसम् ,, १०७
प्रत्युरसम् ,, १०८
अनुगवम् ,, १०८
प्राङ्वो रथः ,, १०८
सुराज्ञा ,, १०८
किंराजा ,, १०९
अराजा ,, १०९
पथो विभाषा (सूत्र) ११०

अलुक्समास-प्रकरण

स्तोकान्मुक्तः (प्रयोग) १११
ओजसाकृतम् ,, १११
अञ्जसाकृतम् ,, १११
मनसागुप्ता ,, १११
मनसाज्ञायी ,, १११
आत्मनश्च (सूत्र) ११२
वैयाकरणाख्यायां० ,, ११२
परस्य च ,, ११३
त्वचिसारः (प्रयोग) ११३
गविष्ठिरः ,, ११३
अरण्येतिलकाः ,, ११४
हृदिस्पृक् ,, ११४
मुकुटेकार्षापणम् ,, ११४
मध्येगुरुः ,, ११४
अन्तेगुरुः ,, ११५
कण्ठेकालः ,, ११५
हस्तेबन्धः ,, ११५
स्तम्बेरमः ,, ११५
प्रावृषिजः (प्रयोग) ११६
विभाषा वर्षक्षर० (सूत्र) ११६
घकालतनेषु० ,, ११६
खेशयः (प्रयोग) ११६
चौरस्य कुलम् ,, ११७
वाचोयुक्तिः ,, ११७
देवानाम्प्रियः ,, ११७
शुनःशेपः ,, ११७
दिवोदासः ,, ११८
दास्याःपुत्रः ,, ११८
होतुरन्तेवासी ,, ११८
मातुःष्वसा ,, ११८

समासाश्रयविधि-प्रकरण

ब्राह्मणितरा (प्रयोग) १२०
नद्याः शेषस्या० (सूत्र) १२०
विदुषितरा (प्रयोग) १२०
हृल्लेखः आदि ,, १२०
सौहार्दम् ,, १२१
हृद्रोगः ,, १२१
पद्धिमम् ,, १२१
उदमेघः ,, १२१
क्षीरोदः ,, १२१
ग्रामणिपुत्रः ,, १२२
भ्रुकुटिः आदि ,, १२२
एकरूप्यम् ,, १२२
रेवतिपुत्रः ,, १२२
अजत्वम् आदि ,, १२३
कौमुदगन्धीपुत्रः ,, १२३
परमकारीषगन्धीपुत्रः ,, १२३
कारीषगन्धीबन्धुः ,, १२४

इष्टकचितम् (प्रयोग) १२५
सत्यङ्कारः ,, १२५
धेनुम्भव्या ,, १२५
लोकम्पृणः ,, १२५
तिमिङ्गिलः ,, १२६
उष्णकरणम् ,, १२६
रात्रेः कृति विभाषा (सूत्र) १२६
सपलाशम् (प्रयोग) १२६
समुहूर्त्तम् आदि ,, १२७
अनु भ्राता सगर्भ्यः आदि ,, १२७
सज्योतिः ,, १२७
सब्रह्मचारी ,, १२७
सतीर्थ्यः ,, १२८
सोदर्यः ,, १२८
अङ्गुलिषङ्गः ,, १२८
भीरुष्ठानम् ,, १२८
ज्योतिष्टोमः (प्रयोग) १२८
सुषामा ,, १२९
कदश्वः ,, १२९
कुत्रयः ,, १२९
कद्रथः (प्रयोग) १२९
कत्तृणम् ,, १२९
कापथम् ,, १२९
काक्षः ,, १३०
काजलम् ,, १३०
कापुरुषः ,, १३०
कवोष्णम् आदि ,, १३०
पृषोदरादीनि० (सूत्र) १३०
द्विगुणाकर्णः (प्रयोग) १३१
उपानत् आदि ,, १३१
विश्वामित्रः ,, १३१
श्वादन्तः ,, १३१
दूर्वावणम् ,, १३१
क्षीरपाणाः ,, १३२
गिरिनदी-गिरिणदी ,, १३२
गोष्पदः ,, १३२
आश्चर्यम् ,, १३२
पारस्करः ,, १३३
तस्करः, बृहस्पतिः ,, १३३
प्रायश्चित्तम्, प्रायश्चित्तिः ,, १३३

॥ श्रीः ॥

समास-प्रकरण

समास-विषयक कतिपय ज्ञेय बातें

(१) **समास**—समास का अर्थ होता है संक्षेपण। इसीलिए कहा गया है—'समसनं समासः'। समास के द्वारा पदसमूह को विभक्तियाँ हटाकर छोटा कर लिया जाता है, जिससे श्रम-लाघव होता है। लाघव का व्याकरणशास्त्र में बहुत महत्त्व है। लाघव के महत्त्व की ओर ही इंगित करते हुए कहा गया है—'अर्धमात्रालाघवेन पुत्रोत्सवं मन्यन्ते वैयाकरणाः।' समास शब्द सम् उपसर्गपूर्वक अस् धातु से व्युत्पन्न होता है। समास करने के बाद विभक्तियों का लोप करने से जिन पदों का समास किया जाता है, वे मिलकर एक पद में ही परिवर्तित हो जाते हैं और अन्त में ही विभक्ति आती है। अतः संक्षेपण या लाघव की दृष्टि से समास का बहुत महत्त्व है।

(२) **विग्रह**—इसका लक्षण करते हुए कहा गया है—'वृत्त्यर्थावबोधकं वाक्यं विग्रहः'। अर्थात् वृत्त्यर्थ को समझाने वाला वाक्य विग्रह कहलाता है। वृत्तियाँ पाँच हैं—कृत्, तद्धित, समास, एकशेष एवं सनाद्यन्त धातुरूप। विग्रह लौकिक तथा अलौकिक के भेद से दो प्रकार का होता है। लोक में जो व्यवहार-योग्य होता है, उसे लौकिक विग्रह कहते हैं।—जैसे—'राजपुरुषः' इस समास का लौकिक विग्रह 'राज्ञः पुरुषः' है, क्योंकि यही परिनिष्ठित रूप लोक-व्यवहार के योग्य होता है। इसी 'राजपुरुषः' का जब 'राजन् ङस्, पुरुष सु' इस रूप में विग्रह किया जाता है तो यह अलौकिक विग्रह कहलाता है, क्योंकि यह विग्रह केवल साधनिका के लिए ही उपयोगी है, लोक-व्यवहार योग्य नहीं।

(३) **समास-भेद**—समास के पाँच भेद स्वीकार किये गये हैं—

१. केवल समास।
२. अव्ययीभाव समास।
३. द्वन्द्व समास।
४. तत्पुरुष समास।
५. बहुव्रीहि समास।

इसीलिए कहा गया है—

'केवलश्चाऽव्ययीभावो द्वन्द्वस्तत्पुरुषस्तथा ।
बहुव्रीहिश्च विज्ञेयः समासः पञ्चधा बुधैः ॥'

जिसमें अव्ययीभावादि विशेष सञ्ज्ञा का विधान न हो, वह केवल समास है, जो पहला समास है। 'सह सुपा' तथा 'इवेन समासो विभक्त्यलोपश्च' से विहित समास ही केवल समास है।

दूसरा अव्ययीभाव समास प्रायः पूर्वपदार्थप्रधानक होता है। तीसरा समास तत्पुरुष है, जो प्रायः उत्तरपदार्थप्रधानक होता है। तत्पुरुष का ही भेद कर्मधारय समास है तथा कर्मधारय का ही भेद द्विगु समास है।

चौथा समास बहुव्रीहि है, जो प्रायः समासघटक पदार्थ से भिन्न पदार्थक होता है।

पाचवां समास द्वन्द्व है, जो उभयपदार्थप्रधानक होता है। समास-भेद-विषयक निम्न पद्य बहुत ही रोचक है—

'द्वन्द्वो द्विगुरपि चाहं मद्गेहे नित्यमव्ययीभावः ।
तत्पूरुष ! कर्मधारय, येनाऽहं स्यां बहुव्रीहिः ॥'

[कोई याचक राजा से कहता है—मैं दो हूँ अर्थात् मैं और मेरी पत्नी। मेरे पास दो गायें भी हैं, फिर भी मेरे घर में खर्चे का अभाव बना रहता है। इसलिए हे पूरुष ! मुझे वह काम दिला दें, ताकि मैं बहुत धान्य-सम्पन्न हो सकूँ।]

(४) **समास और सामर्थ्य**—समास पदसम्बन्धी कार्य है, अतः समर्थाश्रित होता है। इस आशय को प्रकट करने वाला सूत्र है–'समर्थः पदविधिः'। इस सूत्र में समर्थ पद समर्थाश्रित में लाक्षणिक है, इसीलिए सूत्रार्थ फलित होता है—पदसम्बन्धी अर्थात् पद को उद्देश्य करके जो विधि अर्थात् कार्य होता है, उसे समर्थाश्रित समझना चाहिए।

सामर्थ्य के दो भेद होते हैं—एकार्थीभाव और व्यपेक्षा। एकार्थीभाव का लक्षण है—

'स्वार्थपर्यवसायिनां पदानां विशिष्टैकार्थोपस्थितिजनकत्वम् एकार्थीभावत्वम् ।'

अर्थात् पृथक्-पृथक् अर्थवाले पदों में समुदायशक्ति से एकार्थ की उपस्थिति द्वारा घी में मिले हुए तेल के समान या दूध में मिले हुए पानी के समान विशेष्य-विशेषणभाव के रूप में मिले-जुले अर्थ को बतलाने वाली शक्ति

का नाम एकार्थीभाव है। यह एकार्थीभाव नामक सामर्थ्य 'राजपुरुष:' आदि समास में ही रहती है। इसी प्रकार कृत्, तद्धित, समास, एकशेष तथा सनाद्यन्त धातुरूप—इन पञ्चविध वृत्तियों में से चाहे कोई भी हो; उसमें समुदाय में ही अर्थ-प्रत्यायन की शक्ति मानी जाती है। यही शक्ति सामर्थ्य कहलाती है तथा समासादि में एकार्थीभाव के नाम से वह सामर्थ्य रहती है।

सामर्थ्य का दूसरा प्रकार है—व्यपेक्षा। इसका लक्षण है—'स्वार्थपर्यवसायिनां पदानामाकाङ्क्षादिवशाद्यः परस्परसम्बन्धः सा व्यपेक्षा।'

अर्थात् अपने-अपने अर्थों को बतलाने वाले पदों का आकांक्षा, योग्यता एवं आसक्ति (सन्निधि या सामीप्य) के द्वारा जो पारस्परिक सम्बन्ध होता है, वह व्यपेक्षा नामक सामर्थ्य है, जो वाक्यार्थ-प्रतीति का कारण होती है। इस सामर्थ्य के बिना वाक्यार्थ-बोध सम्भव नहीं होता।

इस प्रकार यह निष्कर्ष निकलता है कि समास में एकार्थीभावरूप सामर्थ्य होती है।

(५) **समास पद की अनुवृत्ति**—समास-प्रकरण के अन्तर्गत 'सह सुपा' आदि सभी समास-विधायक सूत्रों में 'प्राक्कडारात्समासः' इस सूत्र से 'समासः' पद की अनुवृत्ति होती है। चूंकि यह सूत्र अधिकारसूत्र है तथा 'कडाराः कर्मधारये' इस सूत्रपर्यन्त इसका क्षेत्र फैला हुआ है। इसी सूत्र के अधिकारक्षेत्र में सभी समास-विधायक सूत्र अन्तर्भूत हैं, अतः उन सूत्रों में 'समासः' पद की अनुवृत्ति होती है।

(६) **समास और प्रातिपदिक संज्ञा**—जब किसी सूत्र से समास किया जाता है तो समास करने के तुरन्त बाद ही समासघटक सभी पदों की विभक्तियों का 'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः' सूत्र से लुक् अर्थात् लोप हो जाता है। समुदाय से पुनः विभक्ति लाने के लिए प्रातिपदिक संज्ञा की आवश्यकता होती है। प्रातिपदिक संज्ञा-विधायक दो सूत्र हैं—'अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्' तथा 'कृत्तद्धितसमासाश्च'। हमें कई बार ऐसा देखने को मिला है कि अक्सर छात्र किसी सामासिक प्रयोग को सिद्ध करते समय समासादि करने के बाद समुदाय को प्रचलित होने के कारण 'अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्' सूत्र से ही प्रातिपदिक संज्ञा कर देते हैं, जो सर्वथा अनुचित है। छात्रों को ध्यान रखना चाहिए कि कृदन्त तद्धितान्त एवं समास को जब भी प्रातिपदिक संज्ञा होगी तो वह 'कृत्तद्धितसमासाश्च' सूत्र से ही होगी, 'अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्' से नहीं।

केवल-समास

(१) **सह सुपा** (सूत्र)—इस सूत्र में 'सुबामन्त्रिते पराङ्गवत्स्वरे' सूत्र से 'सुप्' पद की अनुवृत्ति होती है। 'प्राक्कडारात्समासः' से 'समासः' पद की अनुवृत्ति होती है। 'समर्थः पदविधिः' सूत्र से 'समर्थः' पद की अनुवृत्ति करके उसका तृतीयान्त के रूप में विपरिणाम होता है। 'प्रत्ययग्रहणे यस्मात्सविधिस्तदादेस्तदन्तस्य ग्रहणम्' इस परिभाषा के अनुसार तदादि तदन्तविधि होने से 'सुबन्ततदादि समर्थ सुबन्ततदादि के साथ समस्त हो' ऐसा सूत्रार्थ फलित होता है।

'सह सुपा' इस सूत्र में 'सह' ऐसा योगविभाग किया जाता है। इस योगविभक्त 'सह' भाग में 'सुबामन्त्रिते पराङ्गवत्स्वरे' से सुप् की अनुवृत्ति करने पर तथा 'समर्थः पदविधिः' सूत्र से 'समर्थः' पद की अनुवृत्ति एवं उसका तृतीयान्तत्वेन विपरिणाम करने पर 'सुबन्त पद समर्थ के साथ समस्त हो' ऐसा अर्थ किया जाता है। यदि इस प्रकार योगविभाग न किया जाता तथा 'सुबन्ततदादि समर्थ सुबन्ततदादि के साथ समस्त हो' ऐसा ही कहा जाता, तो 'पर्यभूषयत्' 'अनुव्यचलत्' जैसे वैदिक प्रयोगों में समास न होता। लौकिक भाषा में ऐसा नहीं होता है। अन्यथा 'घटो भवति' यहाँ पर 'घट भवति' ऐसा प्रयोग होने लगता। वेद में भी केवल कुछ ही ऐसे प्रयोग हैं, जहाँ तिङन्त उत्तरपद के रूप में है तथा वहाँ समास होता है। ऐसे वैदिक प्रयोगों की सिद्धि के लिए ही 'सह' ऐसा योगविभाग किया जाता है।

योगविभक्त 'सुपा' भाग में 'सुबामन्त्रिते०' से 'सुप्' की अनुवृत्ति करने पर 'सुप्सुपा' ऐसा सूत्र का स्वरूप स्थिर होता है। अपने ही सूत्र के 'सह' भाग का उस पर प्रभाव बना ही रहता है। अतः पूर्व में जैसा कहा गया है—'सुबन्ततदादि समर्थ सुबन्ततदादि के साथ समस्त हो' ऐसा सूत्रार्थ फलित होता है। भूतपूर्वः आदि इसके उदाहरण हैं।

(२) **भूतपूर्वः (प्रयोग)**—'पूर्वं भूतः' इस लौकिक विग्रह में तथा पूर्व अम्, भूत सु इस अलौकिक विग्रह में 'सह सुपा' सूत्रान्तर्गत 'सुबन्ततदादि समर्थ सुबन्ततदादि के साथ समस्त हो' एतदर्थक 'सुप्सुपा' इस योगविभक्त भाग से समास हुआ। 'धात्ववयव एवं प्रातिपदिकावयव सुप् का लुक् हो' इस

अर्थवाले 'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः' सूत्र से प्रातिपदिकावयव अम् तथा सु विभक्तियों का लोप हो गया। अब 'समासशास्त्र में प्रथमान्तत्वेन निर्दिष्ट जो पद है (तत्पदबोध्य समासघटक जो पद), उसे उपसर्जन संज्ञा हो' इस अर्थ वाले 'प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्' सूत्र की प्रवृत्ति हुई। 'सुप्सुपा' इस समास-विधायक शास्त्र अर्थात् सूत्र में प्रथमान्तत्वेन निर्दिष्ट पद—सुप् यानि सुबन्त है तथा तत्पदबोध्य समासघटक पद—भूत एवं पूर्व दोनों हैं, इसलिए उन दोनों को उपसर्जन संज्ञा एवं 'समास में उपसर्जन का पूर्वप्रयोग करना चाहिए' इस अर्थवाले 'उपसर्जनं पूर्वम्' इस सूत्र से पूर्व एवं भूत—इन दोनों का पूर्व-प्रयोग प्राप्त होगा। दोनों में से किसका पूर्वप्रयोग हो, इसके लिए निर्णय की युक्ति का अभाव होने के कारण यहाँ विनिगमनाविरह हो जाता है। विनि-गमनाविरह का अर्थ है—'द्वयोरेकतरपक्षपातयुक्तिविरहः विनिगमनाविरहः।' अर्थात् दो में से किसी एक के प्रति पक्षपात करने की युक्ति का अभाव विनि-गमनाविरह कहलाता है, जो यहाँ उपस्थित है। अतः 'भूतपूर्वे चरट्' इस पाणिनि सूत्र के निर्देश से भूत शब्द का ही पूर्वनिपात किया गया। तत्पश्चात् 'कृत्तद्धितसमासाश्च' सूत्र से भूतपूर्व इस समुदाय को प्रातिपदिक संज्ञा हुई। सु विभक्ति, उसे रुत्व एवं विसर्ग करने पर 'भूतपूर्वः' प्रयोग सिद्ध हुआ।

(३) **इवेन समासो विभक्त्यलोपश्च (वार्तिक)**—'इव के साथ समर्थ सुबन्त समस्त हो तथा विभक्ति का लोप न हो' यही वार्तिकार्थ है। उदाहरण है—जीमूतस्येव (सिद्धान्तकौमुदी), वागर्थाविव (म० सि० कौमुदी)। 'जीमूतस्य इव' इस लौकिक विग्रह में प्रस्तुत वार्तिक से समास हुआ तथा 'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः' से प्रातिपदिकावयव सुप् अर्थात् जीमूत के आगे की ङस् विभक्ति का जो लोप प्राप्त था, उसका निषेध हुआ, इसलिए 'जीमूतस्येव' प्रयोग सिद्ध हुआ। 'वागर्थौ इव' में भी इसी वार्तिक से समास करने तथा 'औ' विभक्ति के लोप का निषेध करने से 'वागर्थाविव' प्रयोग सिद्ध होता है।

उपर्युक्त दोनों प्रयोगों या इस प्रकार के अन्य प्रयोगों (जहाँ इव के साथ समर्थ सुबन्ततदादि का समास होता हो, ऐसे प्रयोगों) की सिद्धि 'सह सुपा' सूत्र से ही समास करने पर हो जाती, किन्तु 'इव' के पूर्वनिपात की निवृत्ति के लिए ही प्रस्तुत वार्तिक का विधान अलग से किया गया है।

अव्ययीभाव-समास

(१) **अव्ययं विभक्तिसमीपसमृद्धिव्यृद्ध्यर्थाभावात्ययासम्प्रतिशब्दप्रादुर्भाव-पश्चाद्यथानुपूर्व्ययौगपद्यसादृश्यसम्पत्तिसाकल्यान्तवचनेषु** (सूत्र)—इस सूत्र में 'समर्थः पदविधिः' सूत्र से 'समर्थः' पद की अनुवृत्ति होती है तथा तृतीयान्त में उसका विपरिणाम होता है। 'सह सुपा' सूत्र से 'सुपा' की अनुवृत्ति, 'प्राक्कडारात्समासः' से 'समासः' की तथा 'अव्ययीभावः' से 'अव्ययीभावः' का अधिकार आता है। इस प्रकार—'विभक्ति, समीप, समृद्धि, व्यृद्धि, अर्थाभाव, अत्यय (ध्वंस), असम्प्रति, शब्द-प्रादुर्भाव (प्रादुर्भाव=प्रकाश), पश्चात्, यथार्थ—इन अर्थों में विद्यमान अव्यय समर्थ सुबन्त के साथ नित्य ही समस्त होता हुआ अव्ययीभावसंज्ञक हो' यही सूत्रार्थ फलित होता है।

'सह सुपा' के समान 'अव्ययं विभक्ति०' इस सूत्र में 'अव्ययम्' ऐसा योगविभाग किया जाता है। विभक्ति, समीप आदि अर्थ से भिन्न अर्थ में वर्तमान अव्यय जहाँ समस्त होता है, उसी की सिद्धि के लिए यह योगविभाग किया जाता है। अपदिशम् आदि प्रयोगों की सिद्धि के लिए ही योगविभाग की उपयोगिता है, इसीलिए योगविभाग किया गया है। 'अव्ययम्' ऐसा योगविभाग करने पर 'अव्यय समर्थ सुबन्त के साथ समस्त हो' ऐसा अर्थ फलित होता है। इसका उदाहरण है—अपदिशम् आदि। पूर्ण सूत्र के उदाहरण अधिहरि, उपकृष्णम् आदि हैं।

(२) **अपदिशम्। अपदिशम्—अपदिशेन। अपदिशम्—अपदिशे (प्रयोग)**—'दिशयोर्मध्यम्' इस विग्रह में दिशा ओस् तथा अप का 'अव्ययम्' इस योगविभक्त सूत्र से अव्ययीभाव समास हुआ। 'धात्ववयव एवं प्रातिपदिकावयव सुप् का लुक् हो' एतदर्थक 'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः' सूत्र से प्रातिपदिकावयव सुप् का लुक् अर्थात् लोप हो गया। दिशा+अप ऐसी स्थिति बनने पर 'समासशास्त्र में प्रथमान्तत्वेन निर्दिष्ट जो पद है (तत्पदबोध्य समासघटक जो पद), उपसर्जन संज्ञा हो' इस अर्थवाले 'प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्' इस सूत्र से अप को उपसर्जन संज्ञा तथा 'समास में उपसर्जन का पूर्वप्रयोग करना चाहिए' इस अर्थवाले 'उपसर्जनं पूर्वम्' इस सूत्र से उसका पूर्वप्रयोग किया

गया। यहाँ पर यह ध्यातव्य है कि यदि 'दिशयोर्मध्यः', 'दिशयोर्मध्यम्' या 'दिशयोर्मध्येन' आदि विग्रह किया जाय तो ऐसी स्थिति में मध्य शब्द की विभक्ति में अनियतता आ जाती है, किन्तु 'दिशयोः' शब्द की विभक्ति नियत सिद्ध होती है, अतः 'विग्रह में जो नियत विभक्ति वाला पद है, उसे उपसर्जन संज्ञा हो किन्तु उसका पूर्वप्रयोग न हो' इस अर्थवाले 'एकविभक्ति चापूर्वनिपाते' इस सूत्र से दिशा शब्द को यद्यपि उपसर्जनसंज्ञा तो होगी, किन्तु उसका पूर्वनिपात नहीं होगा। अतः अपदिशा ऐसी स्थिति बनने पर 'उपसर्जन जो गोशब्द तथा स्त्रीप्रत्ययान्त शब्द तदन्त प्रातिपदिक को ह्रस्व हो' एतदर्थक 'गोस्त्रियोरुपसर्जनस्य' सूत्र से ह्रस्व किया गया। तत्पश्चात् 'अव्ययीभावश्च' सूत्र से अव्ययत्वात् प्रातिपदिकसंज्ञोपरान्त आयी हुई सु विभक्ति का 'अव्यय के आगे आप् एवं सुप् का लुक् हो' इस अर्थवाले 'अव्ययादाप्सुपः' सूत्र से लुक् प्राप्त था, किन्तु 'अकारान्त अव्ययीभाव से आगे सुप् का लुक् न हो तथा पञ्चमी के बिना उसे अमादेश हो' इस अर्थवाले 'नाऽव्ययीभावादतोऽम्त्वपञ्चम्याः' इस सूत्र से सुब्लुक का निषेध तथा सु को अम् आदेश किया गया। पूर्वरूप करने पर 'अपदिशम्' प्रयोग सिद्ध हुआ।

'नाऽव्ययीभावादतोऽम्त्वपञ्चम्याः' सूत्र से अकारान्त अव्ययीभाव से आगे की सुप् विभक्ति के लोप का निषेध तो होगा, किन्तु पञ्चमी के बिना ही सुप् विभक्ति को अमादेश होगा, इसीलिए पञ्चमी में 'अपदिशात्' ऐसा ही रूप बनेगा।

यदि 'दिशयोर्मध्येन' या 'दिशयोर्मध्ये' ऐसा विग्रह किया जाय तो 'अकारान्त अव्ययीभाव से विहित तृतीया एवं सप्तमी विभक्ति को विकल्प से अम् आदेश हो' एतदर्थक 'तृतीयासप्तम्योर्बहुलम्' इस सूत्र से वैकल्पिक अम्भाव होने से अम्भावपक्ष में 'अपदिशम्' ऐसा तृतीया तथा सप्तमी दोनों में रूप सिद्ध होगा, किन्तु अमभावपक्ष में तृतीया में 'अपदिशेन' तथा सप्तमी में 'अपदिशे' ऐसा रूप सिद्ध होगा।

(३) अधिहरि (प्रयोग)—'हरौ' इस लौकिक विग्रह में हरि ङि तथा अधि का 'अव्ययं विभक्ति०' इत्यादि सूत्र से विभक्त्यर्थ में अव्ययीभाव समास हुआ। 'धात्ववयव एवं प्रातिपदिकावयव सुप् का लोप हो' इस अर्थवाले 'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः' सूत्र से प्रातिपदिकावयव ङि विभक्ति का लोप हो गया। 'समासशास्त्र में प्रथमान्तत्वेन निर्दिष्ट जो पद है (तत्पदबोध्य जो समासघटक

पद), उसे उपसर्जन संज्ञा हो' इस अर्थवाले 'प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्' इस सूत्र से अधि को उपसर्जन संज्ञा तथा 'समास में उपसर्जन का पूर्वप्रयोग करना चाहिए' इस अर्थवाले 'उपसर्जनं पूर्वम्' इस सूत्र से अधि का पूर्वप्रयोग किया गया। प्रातिपदिकसंज्ञोपरान्त समुदाय से आयी हुई सु विभक्ति का 'अव्ययीभावश्च' सूत्र से अधिहरि को अव्यय संज्ञा होने के कारण 'अव्ययादाप्सुपः' सूत्र से लुक् अर्थात् लोप हो जाने से 'अधिहरि' प्रयोग सिद्ध हुआ। इस प्रयोग में अधि यह अव्यय सप्तम्यर्थ का बोधक है।

(४) **अधिगोपम् (प्रयोग)**—'गोपायतीति गोपाः' अथवा 'गाः पातीति गोपाः' तस्मिन् इत्यधिगोपम्। 'गुपू रक्षणे' धातु से भी गोपा शब्द बनेगा तथा गो उपपदपूर्वक पा धातु से भी विच् प्रत्यय करने पर गोपा शब्द निष्पन्न होगा। यहा पर 'अव्ययं विभक्ति०' इत्यादि सूत्र से विभक्त्यर्थ में अव्ययीभाव समास हुआ। 'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः' सूत्र से ङि विभक्ति का लोप हुआ। समासशास्त्र अर्थात् 'अव्ययं विभक्ति०' सूत्र में प्रथमान्तत्वेन निर्दिष्टपद है अव्ययम्, तत्पदबोध्य समासघटक पद है अधि, इसलिए 'प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्' से अधि को उपसर्जन संज्ञा तथा 'उपसर्जनं पूर्वम्' सूत्र से उसका पूर्वप्रयोग हुआ। 'अव्ययीभाव नपुंसक हो' एतदर्थक 'अव्ययीभावश्च' सूत्र से नपुंसकत्व का विधान होने से 'ह्रस्वो नपुंसके प्रातिपदिकस्य' इस सूत्र से गोपा के आकार को ह्रस्व हो गया। इस प्रकार 'अधिगोप' ऐसा रूप बना। 'अव्ययीभावश्च' सूत्र से अव्यय संज्ञा होने के कारण प्रातिपदिकसंज्ञोपरान्त आयी हुई सु विभक्ति का 'अव्ययादाप्सुपः' सूत्र से लोप प्राप्त था, किन्तु 'अकारान्त अव्ययीभाव से विहित सुप् विभक्ति का लोप न हो तथा पञ्चमी के बिना उसे अम् आदेश हो' एतदर्थक 'नाऽव्ययीभावादतोऽम्त्वपञ्चम्याः' सूत्र से सु विभक्ति के लोप का निषेध तथा उसे अमादेश भी हो गया। 'अमि पूर्वः' से पूर्वरूप करने पर 'अधिगोपम्' प्रयोग सिद्ध हुआ।

(५) **उपकृष्णम् (प्रयोग)**—'कृष्णस्य समीपम्' इस लौकिक विग्रह में कृष्ण ङस् उप का 'अव्ययं विभक्ति०' इत्यादि सूत्र से समीपार्थ में अव्ययीभाव समास हुआ। 'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः' सूत्र से प्रातिपदिकावयव सुप् अर्थात् ङि विभक्ति का लोप हो गया। समीपार्थक 'उप' इस अव्यय का 'प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्' सूत्र से उपसर्जनसंज्ञा होने के कारण 'उपसर्जनं पूर्वम्' सूत्र से पूर्वप्रयोग हुआ। 'कृत्तद्धितसमासाश्च' सूत्र से प्राति-

पदिक संज्ञा होने के कारण जो सु विभक्ति आयी, उसका 'अव्ययीभावश्च' सूत्र से 'उपकृष्ण' को अव्ययसंज्ञा होने के कारण लोप प्राप्त था, किन्तु 'नाव्ययीभावादतोऽम्त्वपञ्चम्याः' सूत्र से सुब्लुक् का निषेध तथा सुप् को पञ्चमी के बिना अमादेश का विधान करने के कारण सु का लोप नहीं हुआ तथा उसे अमादेश भी हो गया। 'अमि पूर्वः' से पूर्वरूप करने पर 'उपकृष्णम्' प्रयोग सिद्ध हुआ।

यदि 'कृष्णस्य समीपेन' या 'कृष्णस्य समीपे' ऐसा विग्रह करेंगे तो 'तृतीयासप्तम्योर्बहुलम्' सूत्र से वैकल्पिक अम्भाव करने के कारण अमादेशपक्ष में तृतीया एवं सप्तमी दोनों में ही 'उपकृष्णम्' ऐसा रूप ही सिद्ध होगा। अमभावपक्ष में अर्थात् जब अम् का आदेश नहीं होगा तो तृतीया में 'उपकृष्णेन' एवं सप्तमी में 'उपकृष्णे' ऐसा प्रयोग होगा। मध्यसिद्धान्तकौमुदी में 'तृतीयासप्तम्योर्बहुलम्' सूत्र के उदाहरण के रूप में उपकृष्णम्, उपकृष्णेन आदि को रखा गया है। सिद्धान्तकौमुदी में अपदिशम्, अपदिशे आदि इस सूत्र के उदारण हैं।

(६) **संमद्रम्** (**प्रयोग**)—'मद्राणां समृद्धिः' इस विग्रह में मद्र आम् सम् का 'अव्ययं विभक्ति०' इत्यादि सूत्र से समृद्धयर्थ में अव्ययीभाव समास हुआ। 'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः' से प्रातिपदिकावयव सुप् का लुक्, सम् इस अव्यय को 'प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्' से उपसर्जन संज्ञा तथा 'उपसर्जनं पूर्वम्' से उसका पूर्वप्रयोग हुआ। प्रातिपदिकसंज्ञोपरान्त आयी हुई सु विभक्ति का 'अव्ययादाप्सुपः' से लोप प्राप्त था, किन्तु 'नाऽव्ययीभावादतोऽम्त्वपञ्चम्याः' सूत्र से उसके लोप का निषेध, उसे अमादेश तथा बाद में 'अमि पूर्वः' से पूर्वरूप करने पर 'संमद्रम्' प्रयोग सिद्ध हुआ।

(७) **दुर्यवनम्** (**प्रयोग**)—'यवनानां व्यृद्धिः' इस विग्रह में यवन आम् तथा दुर् का 'अव्ययं विभक्ति०' इत्यादि सूत्र से व्यृद्धयर्थ में अव्ययीभाव समास हुआ। 'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः' से प्रातिपदिकावयव आम् विभक्ति का लोप हो गया। 'प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्' से दुर् को उपसर्जनसंज्ञा तथा 'उपसर्जनं पूर्वम्' से उसका पूर्वप्रयोग किया गया। समासत्वात् 'कृत्तद्धितसमासाश्च' से प्रातिपदिकसंज्ञा होने से आयी हुई सु विभक्ति का 'अव्ययादाप्सुपः' से लोप प्राप्त हुआ, किन्तु 'नाव्ययीभावादतोऽम्त्वपञ्चम्याः' से उसका निषेध तथा उसे अमादेश हो गया। पूर्वरूप करने पर 'दुर्यवनम्'

प्रयोग सिद्ध हुआ। व्यृद्धि का अर्थ है—'विगता ऋद्धिः' अर्थात् ऋद्धि या वृद्धि का अभाव।

(८) **निर्मक्षिकम् (प्रयोग)**—'मक्षिकाणामभावः' इस लौकिक विग्रह में मक्षिक आम् तथा निर् का 'अव्ययं विभक्ति०' इत्यादि सूत्र से अभाव अर्थ में अव्ययीभाव समास हुआ। 'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः' से प्रातिपदिकावयव आम् विभक्ति का लोप हो गया तथा 'प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्' से निर् को उपसर्जनसंज्ञा एवं 'उपसर्जनं पूर्वम्' से उसका पूर्वप्रयोग किया गया। 'अव्ययीभावश्च' सूत्र से नपुंसकत्व होने के कारण 'ह्रस्वो नपुंसके प्रातिपदिकस्य' से मक्षिका के आकार को ह्रस्व हो गया। प्रातिपदिक संज्ञा, सु-विभक्ति, 'अव्ययीभावश्च' से अव्यय संज्ञा हुई तथा अव्ययत्वात् 'अव्ययादाप्सुपः' से सु विभक्ति का लोप प्राप्त हुआ, किन्तु 'नाव्ययीभावादतोऽम्त्वपञ्चम्याः' सूत्र से सुब्लुक् का निषेध तथा सु को अमादेश होने से पूर्वरूप करने पर 'निर्मक्षिकम्' प्रयोग सिद्ध हुआ।

(९) **अतिहिमम् (प्रयोग)**—अत्यय का अर्थ होता है—ध्वंस। 'हिमस्यात्ययः' इस विग्रह में हिम ङस् एवं अत्ययार्थक 'अति' इस अव्यय का 'अव्ययं विभक्ति०' इत्यादि सूत्र से अत्ययार्थ में अव्ययीभाव समास हुआ। 'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः' सूत्र से प्रातिपदिकावयव ङस् विभक्ति का लोप हो गया। 'प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्' से अति को उपसर्जन संज्ञा तथा 'उपसर्जनं पूर्वम्' से उसका पूर्वप्रयोग हुआ। प्रातिपदिकसंज्ञोपरान्त समुदाय से आयी हुई सु विभक्ति का 'अव्ययादाप्सुपः' से लोप प्राप्त हुआ, किन्तु 'नाऽव्ययीभावादतोऽम्त्वपञ्चम्याः' सु विभक्ति के लोप का निषेध होने के साथ-साथ उसे अमादेश हो गया। 'अमि पूर्वः' से पूर्वरूप करने पर 'अतिहिमम्' प्रयोग सिद्ध हुआ।

(१०) **अतिनिद्रम् (प्रयोग)**—'निद्रा सम्प्रति न युज्यते' इस विग्रह में निद्रा सु तथा अति का 'अव्ययं विभक्ति०' इत्यादि सूत्र से असम्प्रत्यर्थ में अव्ययीभाव समास हुआ। समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का 'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः' से लोप हो गया। 'अति' को 'प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्' सूत्र से उपसर्जनसंज्ञा तथा 'उपसर्जनं पूर्वम्' सूत्र से उसका पूर्वप्रयोग किया गया। निद्रा के आकार को ह्रस्व तथा प्रातिपदिकसंज्ञोपरान्त आयी हुई सुविभक्ति का 'अव्ययादाप्सुपः' से लोप प्राप्त हुआ, किन्तु 'नाऽव्ययीभावादतो-

ऽम्त्वपञ्चम्याः' सूत्र से उसका निषेध होने के साथ-साथ उसे अमादेश भी हो गया। 'अमि पूर्वः' से पूर्वरूप करने पर 'अतिनिद्रम्' प्रयोग सिद्ध हुआ।

(११) इतिहरि (प्रयोग)—'अव्ययं विभक्ति०' सूत्र में शब्दप्रादुर्भाव शब्द से शब्द का प्रकाशन ही विवक्षित है। इसलिए 'हरिशब्दस्य प्रकाशः' इस विग्रह में 'इति' यह अव्यय षष्ठ्यन्त हरि शब्द के साथ 'अव्ययं विभक्ति०' इस सूत्र से शब्दप्रादुर्भाव अर्थ में समस्त हुआ है। 'इति' अव्यय शब्दप्रकाश अर्थ में ही है। समासोपरान्त 'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः' से प्रातिपदिकावयव सुप् का लोप हुआ। 'इति' को 'प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्' से उपसर्जन संज्ञा तथा 'उपसर्जनं पूर्वम्' से उसका पूर्वप्रयोग किया गया। 'अव्ययीभावश्च' सूत्र से चूंकि 'इतिहरि' को नपुंसक संज्ञा हुई है, अतः प्रातिपदिकसंज्ञोपरान्त आयी हुई सु विभक्ति का 'स्वमोर्नपुंसकात्' से लुक् अर्थात् लोप हो जाने पर 'इतिहरि' प्रयोग सिद्ध होता है। अकारान्त न होने के कारण यहाँ 'नाव्ययीभावादतोऽम्त्वपञ्चम्याः' सूत्र की प्रवृत्ति नहीं होती है।

(१२) अनुविष्णु (प्रयोग)—'अनु' यह अव्यय 'पश्चात्' इस अर्थ में प्रयुक्त होता है। 'विष्णोः पश्चात्' इस विग्रह में विष्णु ङस् तथा अनु का 'अव्ययं विभक्ति०' सूत्र से पश्चात् अर्थ में अव्ययीभाव समास हुआ। 'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः' से प्रातिपदिकावयव ङस् विभक्ति का लोप हो गया। अनु को 'प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्' से उपसर्जन संज्ञा तथा 'उपसर्जनं पूर्वम्' से उसका पूर्वप्रयोग किया गया। 'अव्ययीभावश्च' से नपुंसकत्व का विधान करने पर 'स्वमोर्नपुंसकात्' से सु विभक्ति का लोप करने पर 'अनुविष्णु' प्रयोग सिद्ध होता है।

(१३) अनुरूपम् (प्रयोग)—'रूपस्य योग्यम्' इस विग्रह में रूप ङस् तथा अनु का 'अव्ययं विभक्ति०' सूत्र से योग्यतारूप यथार्थ में अव्ययीभाव समास हुआ। 'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः' से प्रातिपदिकावयव ङस् विभक्ति का लोप हो गया। 'प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्' से 'अनु' को उपसर्जन संज्ञा तथा 'उपसर्जनं पूर्वम्' से उसका पूर्वप्रयोग किया गया। 'अव्ययीभावश्च' सूत्र से अव्ययसंज्ञा होने के कारण प्रातिपदिकसंज्ञोपरान्त आयी हुई सु विभक्ति का 'अव्ययादाप्सुपः' से लोप प्राप्त हुआ, किन्तु 'नाव्ययीभावादतोऽम्त्वपञ्चम्याः' सूत्र से उसका निषेध होने के साथ-साथ उसे अमादेश किया गया तथा पूर्वरूप करने पर 'अनुरूपम्' प्रयोग सिद्ध हुआ।

(१४) **प्रत्यर्थम्** (**प्रयोग**)—'अर्थमर्थम्प्रति' इस लौकिक विग्रह में अर्थ अम् तथा प्रति का 'अव्ययं विभक्ति०' सूत्र से वीप्सा अर्थात् द्विरुक्ति रूप यथार्थ में अव्ययीभाव समास हुआ। 'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः' से अम् विभक्ति का लोप हो गया। 'प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्' से 'प्रति' को उपसर्जन संज्ञा तथा 'उपसर्जनं पूर्वम्' से उसका पूर्वप्रयोग किया गया। 'अव्ययीभावश्च' से अव्ययसंज्ञा होने के कारण सु विभक्ति का 'अव्ययादाप्सुपः' से लोप प्राप्त हुआ, किन्तु 'नाव्ययीभावादतोऽम्त्वपञ्चम्याः' से उसका निषेध तथा सु को अमादेश किया गया। पूर्वरूप करने पर 'प्रत्यर्थम्' प्रयोग सिद्ध हुआ।

(१५) **यथाशक्ति** (**प्रयोग**)—यथार्थ चार प्रकार के हैं—योग्यता, वीप्सा, पदार्थकी अनतिवृत्ति अर्थात् अनतिक्रमण तथा सादृश्य। यहाँ पर पदार्थानतिवृत्तिरूप यथार्थ में समास हुआ है। 'शक्तिमनतिक्रम्य' इस लौकिक विग्रह में शक्ति अम् तथा यथा का पदार्थानतिवृत्तिरूप यथार्थ में 'अव्ययं विभक्ति०' सूत्र से अव्ययीभाव समास हुआ। 'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः' से प्रातिपदिकावयव सुप् का लुक् अर्थात् लोप हो गया। 'यथा' को 'प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्' से उपसर्जन संज्ञा तथा 'उपसर्जनं पूर्वम्' से उसका पूर्वप्रयोग किया गया। 'अव्ययीभावश्च' से नपुंसकत्व का विधान होने से समुदाय से आयी हुई सु विभक्ति का 'स्वमोर्नपुंसकात्' सूत्र से लोप होने पर 'यथाशक्ति' प्रयोग सिद्ध हुआ।

(१६) **सहरि** (**प्रयोग**)—'हरेः सादृश्यम्' इस लौकिक विग्रह में हरि ङस् तथा सादृश्यार्थक 'सह' इस अव्यय का 'अव्ययं विभक्ति०' इस सूत्र से सादृश्य रूप यथार्थ में अव्ययीभाव समास हुआ। 'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः' से प्रातिपदिकावयव ङस् विभक्ति का लोप हो गया। 'अव्ययीभावे चाकाले' सूत्र से 'सह' इस अव्यय को 'स' आदेश हो गया। 'प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्' से 'स' को उपसर्जन संज्ञा तथा 'उपसर्जनं पूर्वम्' से उसका पूर्वप्रयोग किया गया। 'अव्ययीभावश्च' से नपुंसकत्व होने के कारण प्रातिपदिकसंज्ञोपरान्त आयी हुई सु विभक्ति का 'स्वमोर्नपुंसकात्' से लोप हो जाने पर 'सहरि' प्रयोग सिद्ध होता है।

(१७) **अव्ययीभावे चाकाले** (**सूत्र**)—इस सूत्र में 'सहस्य सः संज्ञायाम्' से 'सहस्य सः' इतने अंश की अनुवृत्ति होती है। 'कालवाचक से अतिरिक्त

समर्थ सुबन्त के साथ जहाँ अव्ययीभाव समास होता हो, वहाँ 'सह' रूप अव्यय को 'स' आदेश हो' यही सूत्रार्थ फलित होता है। उदाहरण हैं—सचक्रम्, ससखि, सक्षत्रम् आदि।

(१८) **सचक्रम् (प्रयोग)**—'चक्रेण युगपत्' इस विग्रह में चक्र टा तथा सह का 'अव्ययं विभक्ति०' सूत्र से अव्ययीभाव समास हुआ। 'सुपो धातु-प्रातिपदिकयोः' सूत्र से प्रातिपदिकावयव सुप् का लुक् हुआ। 'अव्ययीभावे चाकाले' सूत्र से 'सह' इस अव्यय को 'स' आदेश हुआ। 'प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्' से उसे उपसर्जन संज्ञा तथा 'उपसर्जनं पूर्वम्' से उसका पूर्वप्रयोग हुआ। 'अव्ययीभावश्च' से नपुंसकत्वात् 'स्वमोर्नपुंसकात्' सूत्र से प्रातिपदिकसंज्ञोपरान्त आई हुई सु विभक्ति का लोप प्राप्त था, किन्तु 'नाव्ययी-भावादतोऽम्त्वपञ्चम्याः' सूत्र से उसका निषेध तथा सु को अमादेश किया गया। पूर्वरूप करने पर 'सचक्रम्' प्रयोग सिद्ध हुआ।

कालवाचक समर्थ सुबन्त के साथ जहाँ अव्ययीभाव समास होगा, वहाँ पर 'सह' को 'स' आदेश नहीं होगा, इसलिए 'सह पूर्वाह्णम्' इत्यादि स्थल में 'सह' को 'स' आदेश नहीं हुआ। यहाँ पर पूर्वाह्ण शब्द कालवाचक है।

(१९) **सक्षत्रम् (प्रयोग)**—'क्षत्राणां सम्पत्तिः' इस विग्रह में क्षत्र आम् तथा सह का 'अव्ययं विभक्ति०' सूत्र से सम्पत्त्यर्थ में अव्ययीभाव समास हुआ। 'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः' से प्रातिपदिकावयव आम् विभक्ति का लोप हो गया। क्षत्र शब्द चूँकि कालवाचक नहीं है, अतः सम्पत्ति अर्थ में विद्यमान 'सह' इस अव्यय को 'अव्ययीभावे चाऽकाले' सूत्र से 'स' आदेश हो गया। 'प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्' से 'स' को उपसर्जन संज्ञा तथा 'उपसर्जनं पूर्वम्' से उसका पूर्वप्रयोग हुआ। सु विभक्ति, उसके लोप का निषेध, उसे अमादेश तथा पूर्वरूप करने पर 'सक्षत्रम्' प्रयोग सिद्ध हुआ।

(२०) **सतृणम् (प्रयोग)**—'तृणमप्यपरित्यज्य' इस विग्रह में तृण अम् तथा सह का 'अव्ययं विभक्ति०' सूत्र से साकल्य अर्थ में अव्ययीभाव समास हुआ। 'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः' से प्रातिपदिकावयव सुप् का लोप हो गया। तृण शब्द चूँकि कालवाचक नहीं है, इसलिए 'अव्ययीभावे चाऽकाले' सूत्र से 'सह' इस अव्यय को 'स' आदेश हो गया। 'प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्' सूत्र से 'स' को उपसर्जन संज्ञा तथा 'उपसर्जनं पूर्वम्' से उसका पूर्वप्रयोग

किया गया। सुविभक्ति, उसके लोप का निषेध, उसे अमादेश तथा पूर्वरूप करने पर 'सतृणम्' प्रयोग सिद्ध होता है। सतृणम् का अर्थ है—तिनके को भी (भोजनादि के समय) नहीं छोड़ता है।

(२१) **साग्नि (प्रयोग)**—अग्निचयन प्रतिपादक ग्रन्थ को अग्निग्रन्थ कहा जाता है, जो ज्योतिर्विद्या से सम्बद्ध है। 'अव्ययं विभक्ति०' सूत्र में अन्त शब्द से अन्तावयव साहित्य विवक्षित है। इस प्रकार 'अग्निग्रन्थपर्यन्तमधीते' इस अर्थ में अग्निग्रन्थ अम् तथा सह का अन्तार्थ में 'अव्ययं विभक्ति०' सूत्र से अव्ययीभाव समास हुआ। 'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः' से प्रातिपदिकावयव सुप् का लुक् हुआ। अग्नि शब्द चूंकि कालवाचक नहीं है, अतः 'सह' को 'अव्ययीभावे चाऽकाले' सूत्र से 'स' आदेश हुआ। 'प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्' से 'स' को उपसर्जन संज्ञा तथा 'उपसर्जनं पूर्वम्' से उसका पूर्वप्रयोग हुआ। 'अव्ययीभावश्च' से नपुंसकत्वात् सु विभक्ति का 'स्वमोर्नपुंसकात्' से लोप करने पर 'साग्नि' प्रयोग सिद्ध हुआ।

(२२) **यथाऽसादृश्ये (सूत्र)**—'सादृश्य से भिन्न अर्थ का 'यथा' शब्द ही समस्त होता है, अन्य नहीं अर्थात् सादृश्यार्थक 'यथा' शब्द समस्त नहीं होता है' यही सूत्राशय है। इसीलिए 'यथा हरिस्तथा हरः' यहाँ पर 'अव्ययं विभक्ति०' से यथार्थ में या सादृश्य अर्थ में समास नहीं हुआ है। यहाँ पर 'यथा' शब्द सादृश्यार्थक है, इसीलिए समास का निषेध किया गया है।

(२३) **यावदवधारणे (सूत्र)**—इस सूत्र में 'सह सुपा' से 'सुपा' की 'प्राक्कडारात् समासः' से समासः की अनुवृत्ति आती है। 'समर्थः पदविधिः' से 'समर्थः' पद की अनुवृत्ति तथा उसका तृतीयान्त में विपरिणाम होता है। इस प्रकार—'अवधारणार्थक अर्थात् निश्चयार्थक 'यावत्' यह अव्यय समर्थ सुबन्त के साथ समस्त हो' यही सूत्रार्थ फलित होता है। उदाहरण है—यावच्छ्लोकम्।

यहाँ पर 'यावन्तः श्लोकास्तावन्तोऽच्युतप्रणामाः' इस अर्थ में श्लोक जस् के साथ 'यावत्' का अव्ययीभाव समास हुआ है। प्रातिपदिकावयव सुप् का लुक्, 'यावत्' को उपसर्जन संज्ञा तथा उसका पूर्वप्रयोग, सन्धिकार्य, सु विभक्ति, उसके लोप का निषेध तथा उसे अमादेश एवं पूर्वरूप करने पर 'यावच्छ्लोकम्' सिद्ध होता है।

(२४) **शाकप्रति (प्रयोग)**—'शाकस्य लेशः' इस विग्रह में शाक ङस् तथा मात्र अर्थ के द्योतक प्रति का 'मात्र अर्थात् लेश अर्थ का वाचक या द्योतक 'प्रति' इस अव्यय के साथ समर्थ सुबन्त समस्त होता हुआ अव्ययीभाव संज्ञक हो' एतदर्थक 'सुप्प्रतिना मात्रार्थे' सूत्र से अव्ययीभाव समास हुआ। 'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः' से प्रातिपदिकावयव सुप् का लुक् हुआ। सूत्र में प्रथमान्तत्वेन निर्दिष्ट है सुप् अर्थात् सुबन्त पद, इसीलिए शाक शब्द को ही उपसर्जन संज्ञा तथा उसका पूर्वप्रयोग हुआ। सु विभक्ति तथा उसका लोप करने पर 'शाकप्रति' प्रयोग सिद्ध हुआ।

(२५) **अपपरिबहिरञ्चवः पञ्चम्या (सूत्र)**—'अप, परि, बहिस् तथा अञ्चूत्तरपदक—ये पञ्चम्यन्त समर्थ सुबन्त के साथ विकल्प से समस्त होते हुए अव्ययीभाव संज्ञक हों' यही सूत्रार्थ है। उदाहरण है—अपविष्णुसंसारः—अपविष्णोः। 'अप' यह अव्यय वर्जनार्थक है। अपविष्णु या अपविष्णोः संसारः का अर्थ है विष्णु को छोड़कर संसरण करना। अप को 'अपपरीवर्जने' सूत्र से कर्मप्रवचनीय संज्ञा होने के कारण विष्णु शब्द से 'पञ्चम्यपाङ्परिभिः' से पञ्चमी विभक्ति आयी है। इसी पञ्चम्यन्त विष्णु शब्द के साथ अप का प्रस्तुत सूत्र से अव्ययीभाव समास हुआ। समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लुक्, अप को उपसर्जन संज्ञा तथा उसका पूर्वप्रयोग हुआ। अव्ययत्वात् सुप् विभक्ति का लोप करने पर 'अपविष्णु' प्रयोग सिद्ध होता है।

समासाभावपक्ष में 'अपविष्णोः' रूप ही बनता है। इसी प्रकार 'परिविष्णु—परिविष्णोः' आदि सिद्ध होंगे।

(२६) **आङ्मर्यादाभिविध्योः (सूत्र)**—इस सूत्र में 'प्राक्कडारात् समासः', 'अव्ययीभावः' तथा 'विभाषा' इन तीनों पूर्ववर्त्ती अधिकारसूत्रों से क्रमशः 'समासः' 'अव्ययीभावः' तथा 'विभाषा' का अधिकार आता है। 'अपपरिबहिरञ्चवः पञ्चम्या' से 'पञ्चम्या' की अनुवृत्ति होती है। तदनुसार—'मर्यादा एवं अभिविधि अर्थों में आङ् पञ्चम्यन्त समर्थ सुबन्त के साथ समस्त हो तथा वह अव्ययीभाव हो' यह सूत्रार्थ फलित होता है।

मर्यादा या सीमा किसी अवधि को कहते हैं। अभिविधि भी मर्यादा ही होती है। दोनों के बीच केवल इतना-सा अन्तर है कि जहाँ से किसी बात की अवधि निर्धारित की जाय, उसको लेकर अभिविधि होती है तथा मर्यादा उस अवधि से पूर्व तक समझी जाती है। जैसे 'आपाटलिपुत्रात् वृष्टो देवः'। इस

वाक्य का मर्यादा अर्थ करने पर यह अभिव्यञ्जित होता है कि 'पाटलिपुत्र से पूर्व (पहले) वर्षा हुई।' इसे ही अभिविधिपरक मानने में यह अभिव्यञ्जित होगा कि 'पाटलिपुत्र को लेकर वर्षा हुई' अर्थात् पाटलिपुत्र में भी वर्षा हुई।

प्रस्तुत 'आङ्मर्यादाभिविध्योः' सूत्र के द्वारा जो समास होता है, उसका उदाहरण है—आमुक्ति संसारः—आमुक्तेः। इसका अर्थ है—मुक्ति तक, अर्थात् मुक्ति से पूर्व तक संसार है। यहाँ मर्यादा अर्थ अभिव्यञ्जित हो रहा है। इस अर्थ में आङ् यह अव्यय 'मुक्तेः' इस पञ्चम्यन्त के साथ प्रस्तुत सूत्र से समस्त हुआ। प्रातिपदिकावयव सुप् का लुक्, आ को उपसर्जन संज्ञा तथा उसका पूर्वप्रयोग, अव्ययत्वात् 'अव्ययादाप्सुपः' से सुप् विभक्ति का लोप होने पर 'आमुक्ति' प्रयोग सिद्ध हुआ। समासाभावपक्ष में आङ् को 'आङ्-मर्यादावचने' से कर्मप्रवचनीय संज्ञा होने के कारण उसके योग में 'पञ्चम्यपाङ्-परिभिः' सूत्र से मुक्ति शब्द से पञ्चमी विभक्ति का विधान होने से 'आमुक्तेः' प्रयोग निष्पन्न होता है।

इसी प्रकार अभिविधि का उदाहरण है—आबालं हरिभक्तिः—आबा-लेभ्यः। यहाँ बचपन से हरिभक्ति की मर्यादा या अवधि निर्धारित की गयी है, किन्तु इस अवधि में बचपन भी सम्मिलित है। तात्पर्य यह है कि बचपन से तो हरिभक्ति है ही, साथ ही बचपन में भी हरिभक्ति थी। यही अभिविधि है। यहाँ पर भी प्रस्तुत सूत्र से समास होगा तथा अन्य कार्य करने पर रूप सिद्ध होगा।

(२७) **लक्षणेनाभिप्रती आभिमुख्ये (सूत्र)**—इस सूत्र में 'अव्ययीभावः' 'समासः' तथा 'विभाषा' का अधिकार आता है। 'आभिमुख्यद्योतक अभि एवं प्रति चिह्नवाचक समर्थ सुबन्त के साथ विकल्प से समस्त होते हुए अव्ययी-भावसंज्ञक हों' यही सूत्रार्थ है। उदाहरण है—अभ्यग्नि शलभाः पतन्ति—अग्निमभि।

यहाँ पर शलभ का पतन अग्नि से ज्ञाप्य तथा तदभिमुख भी है, अतः अग्नि अम् इस चिह्नवाचक समर्थ सुबन्त के साथ आभिमुख्यद्योतक अभि समस्त हुआ। समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लुक्, अभि को, प्रथमान्त-त्वेन निर्दिष्ट होने के कारण उपसर्जन संज्ञा तथा उसका पूर्वप्रयोग हुआ। अव्ययत्वात् सुप् विभक्ति का लोप करने पर 'अभ्यग्नि' सिद्ध हुआ। समासा-

भावपक्ष में 'अभिरभागे' से अभि को कर्मप्रवचनीय संज्ञा होने के कारण 'कर्मप्रवचनीययुक्ते द्वितीया' सूत्र से उसके योग में अग्नि से द्वितीया विभक्ति आने पर 'अग्निमभि' ऐसा रूप बना रहता है।

इसी प्रकार 'अग्नि प्रति' इस विग्रह में प्रत्यग्नि तथा 'अग्नि प्रति' प्रयोग होंगे। समासाभावपक्ष में प्रति को 'लक्षणेत्थम्भूताख्यानभागवीप्सासु प्रतिपर्यनवः' से प्रति को कर्मप्रवचनीय संज्ञा तथा उसके योग में अग्नि शब्द से 'कर्मप्रवचनीययुक्ते द्वितीया' से द्वितीया विभक्ति आने पर 'अग्नि प्रति' रूप बना रहेगा।

(२८) **अनुर्यत्समया** (सूत्र)—इस सूत्र में 'अव्ययीभावः', 'समासः' तथा 'विभाषा' का अधिकार आता है। 'लक्षणेनाभिप्रती आभिमुख्ये' इस पूर्वसूत्र से 'लक्षणेन' पद की अनुवृत्ति होती है। 'जिस पदार्थ से किसी का सामीप्य द्योतित होता है, उस लक्षणभूत पदार्थ से सामीप्यसूचक अनु विकल्प से समस्त होता है तथा वह अव्ययीभाव कहलाता है' यही सूत्रार्थ है। उदाहरण है—'अनुवनमशनिर्गतः' अर्थात् वनस्य समीपं गतः। यहाँ पर वन शब्द वनसमीपस्थ देश के अर्थ में लाक्षणिक है। इस प्रकार वन पद से सामीप्य द्योतित होता है, अतः लक्षणभूत वन ङस् के साथ सामीप्यसूचक 'अनु' का इस सूत्र से अव्ययीभाव समास हुआ। समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लुक्, 'अनु' को उपसर्जन संज्ञा तथा उसका पूर्वप्रयोग हुआ। सु विभक्ति के लोप का निषेध तथा उसे अमादेश हुआ एवं पूर्वरूप करने पर 'अनुवनम्' सिद्ध हुआ। विकल्प पक्ष में 'वनस्य समीपम्' ऐसा वाक्य हीं रहेगा।

(२९) **यस्य चायामः** (सूत्र)—इस सूत्र में 'अव्ययीभावः' 'समासः' तथा 'विभाषा' का अधिकार आता है। 'लक्षणेनाभिप्रती आभिमुख्ये' सूत्र से 'लक्षणेन' की अनुवृत्ति होती है। 'अनुर्यत्समया' सूत्र से 'अनु' की अनुवृत्ति हुई है तथा पुनः अनु की अनुवृत्ति करके तृतीयान्त में उसका विपरिणाम हुआ है। सूत्रार्थ यह है कि 'जिसकी दीर्घता अर्थात् विशालता अनु के द्वारा द्योतित हो, उस लक्षणभूत पदार्थ के साथ 'अनु' विकल्प से समस्त हो तथा वह अव्ययीभाव हो।' जैसे—अनुगङ्गं वाराणसी। यहाँ पर गङ्गा की दीर्घता के सदृश दीर्घता से वाराणसी उपलक्षित है और यह कार्य अनु के द्वारा किया गया है, अतः लक्षणभूत अर्थात् चिह्नवाची गङ्गा के साथ 'अनु' समस्त हुआ है। 'गङ्गायाः अनु' इस विग्रह में गङ्गा ङस् अनु का प्रस्तुत सूत्र से अव्ययीभाव समास हुआ। समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लुक्, अनु को उपसर्जन संज्ञा तथा उसका

पूर्वप्रयोग हुआ। नपुंसकत्वात् 'ह्रस्वो नपुंसके प्रातिपदिकस्य' से गङ्गा के आकार को ह्रस्व। समुदाय से सु विभक्ति, उसके लोप का निषेध तथा उसे अमादेशादि करने पर 'अनुगङ्गम्' प्रयोग सिद्ध हुआ।

(३०) **पारेमध्ये षष्ठ्या वा** (सूत्र)—इस सूत्र में 'अव्ययीभावः' से 'अव्ययीभावः' तथा 'प्राक्कडारात्समासः' से 'समासः' का अधिकार आता है। 'पार एवं मध्य शब्द षष्ठ्यन्त के साथ विकल्प से समस्त हों तथा वह समास अव्ययीभाव हो' यही सूत्रार्थ है। इस सूत्र से पार एवं मध्य शब्द को एदन्तत्व का निपातन किया जाता है। प्रस्तुत सूत्र में 'विभाषा' इस पूर्वसूत्र से 'विभाषा' की अनुवृत्ति करने पर विकल्प अर्थ बोधित हो ही रहा था तो सूत्र में पुनः अलग से 'वा' का ग्रहण क्यों किया गया? इसका समाधान यही है कि प्रस्तुत सूत्र से दो बार वैकल्पिक विधान किया जाता है। इसे ही महाविभाषा कहते हैं।

'गङ्गायाः पारात्' इस विग्रह में गङ्गा ङस् के साथ पार शब्द का प्रस्तुत सूत्र से अव्ययीभाव समास हुआ। समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लुक्, पार शब्द का पूर्वप्रयोग तथा इसी सूत्र से उसे एदन्तत्व का निपातन भी होगा। नपुंसकत्वात् 'ह्रस्वो नपुंसके प्रातिपदिकस्य' से ह्रस्व करने पर पारेगङ्ग शब्द से ङसि यह पञ्चमी विभक्ति आती है तथा 'पारेगङ्गात्' प्रयोग सिद्ध होता है। यहाँ पर चूंकि पञ्चमी विभक्ति आयी है अतः उसे 'नाऽव्ययीभावादतोऽम्त्वपञ्चम्याः' से अम् आदेश नहीं हुआ है, केवल 'अव्ययादाप्सुपः' से प्राप्त ङसिलोप का उससे निषेध किया गया है, अतः 'पारेगङ्गात्' प्रयोग सिद्ध हुआ है। इसी प्रकार 'गङ्गायाः मध्यात्' इस विग्रह में 'मध्येगङ्गात्' ऐसा प्रयोग होगा। विकल्प पक्ष में जब इस सूत्र से अव्ययीभाव समास नहीं होगा तो षष्ठीतत्पुरुष समास होगा एवं 'गङ्गापारात्' या 'गङ्गामध्यात्' रूप ही सिद्ध होंगे। अव्ययीभावसमासन होने से पार एवं मध्य शब्दों का न तो पूर्वप्रयोग ही होगा और न उन्हें एदन्तत्व-निपातन ही होगा।

षष्ठीतत्पुरुष के भी विकल्प पक्ष में 'गङ्गायाः पारात्' या 'गङ्गायाः मध्यात्' ऐसा वाक्य रूप ही रहेगा।

(३१) **संख्या वंश्येन** (सूत्र)—इस सूत्र में भी समासादि का अधिकार आता है। 'विभाषा' सूत्र से 'विभाषा' पद की अनुवृत्ति होती है। वंश दो

प्रकार के होते हैं—विद्या से अर्थात् गुरुशिष्य परम्परा से तथा जन्म से। वंश में जो उत्पन्न हो, उसे वंश्य कहते हैं। "वंश्यवाचक समर्थ सुबन्त के साथ संख्यावाचक सुबन्त विकल्प से समस्त हो तथा वह समास अव्ययीभावसंज्ञक हो' यही सूत्रार्थ है। इसका उदाहरण है—द्विमुनि, त्रिमुनि आदि।

'द्वौ मुनी' इस विग्रह में 'विशेषणं विशेष्येण बहुलम्' सूत्र से प्राप्त कर्मधारय को बाधित कर 'संख्या वंश्येन' सूत्र से द्वि औ यह संख्यावाचक सुबन्त मुनि औ इस वंश्यवाचक समर्थ सुबन्त के साथ अव्ययीभाव के रूप में समस्त हुआ। समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लुक् हुआ। प्रथमान्तत्वेन निर्दिष्ट होने के कारण द्वि शब्द को ही उपसर्जन संज्ञा तथा उसी का पूर्वप्रयोग हुआ। अव्ययत्वात् सुप् विभक्ति का लोप करने पर 'द्विमुनि' प्रयोग सिद्ध होता है। इसी प्रकार 'त्रयो मुनयः' इस विग्रह में 'त्रिमुनि' प्रयोग सिद्ध होगा।

(३२) **नदीभिश्च (सूत्र)**—इस सूत्र में 'संख्या वंश्येन' इस पूर्वसूत्र से 'संख्या' पद की अनुवृत्ति होती है तथा 'विभाषा' सूत्र का भी अधिकार आता है। 'नदीवाचक समर्थ सुबन्त के साथ नदीवाचक सुबन्त विकल्प से समस्त हो तथा वह अव्ययीभावसंज्ञक हो' यही सूत्रार्थ फलित होता है। 'समाहारे चायमिष्यते' इस वार्तिक से समाहार में ही यह समास इष्ट है। उदाहरण है—सप्तगङ्गम्, द्वियमुनम्।

'सप्तानां गङ्गानां समाहारः' इस विग्रह में सप्त आम् तथा गङ्गा आम् का 'नदीभिश्च' सूत्र से अव्ययीभाव समास हुआ। समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लुक् हुआ। 'अव्ययीभावश्च' से नपुंसकत्व होने के कारण 'ह्रस्वो नपुंसके प्रातिपदिकस्य' से ह्रस्व हुआ। समुदाय से सु विभक्ति, उसके लोप का निषेध तथा उसे अम् आदेश एवं पूर्वरूप करने पर 'सप्तगङ्गम्' प्रयोग सिद्ध हुआ। इसी प्रकार 'द्वयोर्यमुनयोः समाहारः' इस विग्रह में द्वि ओस् यमुना ओस् का प्रस्तुत सूत्र से अव्ययीभाव समास करने पर 'द्वियमुनम्' रूप सिद्ध होगा।

(३३) **अन्यपदार्थे च संज्ञायाम् (सूत्र)**—इस सूत्र में 'नदीभिश्च' इस पूर्वसूत्र से 'नदीभिः' पद की अनुवृत्ति होती है। 'अन्य पदार्थ में विद्यमान सुबन्त नदीवाचक समर्थ सुबन्त के साथ अव्ययीभाव के रूप में समस्त हो' यही सूत्रार्थ है। विभाषाधिकार में होने पर भी वाक्य से संज्ञा का बोध नहीं होने से यह नित्य समास है। उदाहरण है—उन्मत्तगङ्गम्।

'उन्मत्ता गङ्गा यस्मिन्' इस विग्रह में अन्य पदार्थ में विद्यमान उन्मत्ता सु यह सुबन्त गङ्गा सु इस नदीवाचक समर्थ सुबन्त के साथ 'अन्यपदार्थे च संज्ञायाम्' सूत्र से अव्ययीभाव के रूप में नित्यरूप से समस्त हुआ। समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लुक् हुआ, नपुंसकह्रस्व एवं सु विभक्ति को अमादेश तथा पूर्वरूप करने पर 'उन्मत्तगङ्गम्' प्रयोग सिद्ध हुआ।

(३४) **अव्ययीभावे शरत्प्रभृतिभ्यः** (सूत्र)—इस सूत्र में 'समासान्ताः' इसका अधिकार आता है तथा 'राजाऽहःसखिभ्यष्टच्' सूत्र से टच् की अनुवृत्ति आती है। 'अव्ययीभाव में शरदादि से समासान्त टच् प्रत्यय हो' यही सूत्रार्थ है। उदाहरण है—उपशरदम् आदि।

'शरदः समीपम्' इस विग्रह में शरद् ङस् उप का 'अव्ययं विभक्ति०' सूत्र से समीपार्थ में अव्ययीभाव समास हुआ। समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का 'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः' सूत्र से लोप हो गया। 'प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्' से उप को उपसर्जन संज्ञा तथा 'उपसर्जनं पूर्वम्' से उसका पूर्वप्रयोग हुआ। 'अव्ययीभावे शरत्प्रभृतिभ्यः' से समासान्त टच् प्रत्यय हुआ। अनुबन्धलोप, समुदाय से सु विभक्ति तथा उसका लोप प्राप्त हुआ, किन्तु 'नाव्ययीभावादतोऽम्त्वपञ्चम्याः' से उसका निषेध तथा उसे अम् आदेश हुआ। 'अमि पूर्वः' से पूर्वरूप करने पर 'उपशरदम्' प्रयोग सिद्ध हुआ।

(३५) **प्रतिविपाशम् (प्रयोग)**—'विपाशाम् प्रति' इस विग्रह में 'लक्षणेनाऽभिप्रती आभिमुख्ये' सूत्र से अव्ययीभाव समास हुआ। समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लुक् हुआ। प्रथमान्तत्वेन निर्दिष्ट होने के कारण प्रति को उपसर्जन संज्ञा तथा उसका पूर्वप्रयोग हुआ। 'अव्ययीभावे शरत्प्रभृतिभ्यः' से समासान्त टच् प्रत्यय हुआ, अनुबन्धलोप प्रतिविपाशा के टि अर्थात् आकार का लोप हो गया। समुदाय से सु विभक्ति तथा उसे अमादेशादि करने पर 'प्रतिविपाशम्' सिद्ध हुआ।

(३६) **उपजरसम् (प्रयोग)**—'जरायाः समीपम्' इस विग्रह में जरा ङस् तथा उप का 'अव्ययं विभक्ति०' से अव्ययीभाव समास हुआ। समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लोप् हो गया। उप को उपसर्जन संज्ञा तथा उसका पूर्वनिपात हुआ। 'अव्ययीभावे शरत्प्रभृतिभ्यः' से समासान्त टच् प्रत्यय तथा 'जराया जरस् च' इस शरदादिगणसूत्र से जरा को जरस् आदेश भी हो गया। समुदाय से सु विभक्ति, 'नाव्ययीभावादतोऽम्त्वपञ्चम्याः' से उसके लोप का

निषेध तथा उसे अम् आदेश किया गया। पूर्वरूप करने पर 'उपजरसम्' रूप सिद्ध हुआ।

(३७) **प्रत्यक्षम् (प्रयोग)**—'अक्षिणी प्रति' इस विग्रह में अक्षि और प्रति का 'लक्षणेनाऽभिप्रती आभिमुख्ये' सूत्र से अव्ययीभाव समास हुआ। समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लोप हो गया। प्रति को उपसर्जन संज्ञा तथा उसका पूर्वप्रयोग हो गया। 'प्रतिपरसमनुभ्योऽक्ष्णः' इस शरदादिगणसूत्र से समासान्त टच् प्रत्यय हुआ। अनुबन्धलोप, 'यस्येति च' से अक्षि के इकार का लोप, यण्, सु विभक्ति, अमादेश, आदि करने पर 'प्रत्यक्षम्' रूप सिद्ध हुआ।

(३८) **परोक्षम् (प्रयोग)**—'अक्ष्णः परम्' इस विग्रह में पर शब्द का अक्षि शब्द के साथ अव्ययीभाव समास हुआ। पर शब्द यद्यपि अव्यय नहीं है, अतः अव्ययीभाव समास नहीं होना चाहिए था, किन्तु 'प्रतिपरसमनुभ्योऽक्ष्णः' इस शरदादिगणसूत्र से समासान्त टच् प्रत्यय का विधान करने के कारण अनव्यय पर शब्द का भी अक्षि शब्द के साथ अव्ययीभाव समास हुआ है। समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लुक्। पर शब्द का पूर्वनिपात, समासान्त टच्, अनुबन्धलोप, 'परोक्षे लिट्' इस निपातन से पर शब्द को ओकारान्तादेश, पररूप, 'परोक्षे लिट्' इस निपातन से पर शब्द को ओकारान्तादेश, पररूप, 'यस्येति च' से अक्षि के इकार का लोप, समुदाय से सु विभक्ति, उसका लोप प्राप्त, 'नाव्ययीभावादतोऽम्त्वपञ्चम्याः' से लोप का निषेध तथा सु को अम्भाव एवं पूर्वरूप करने पर 'परोक्षम्' प्रयोग सिद्ध होता है।

(३९) **समक्षम् (प्रयोग)**—'अक्ष्णोर्योग्यम्' इस अर्थ में अक्षि ओस् सम् का 'अव्ययं विभक्ति०' सूत्र से योग्यतारूप यथार्थ में अव्ययीभाव समास हुआ। समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लोप हो गया। सम् को उपसर्जन संज्ञा तथा उसका पूर्वप्रयोग हुआ। 'प्रतिपरसमनुभ्योऽक्ष्णः' इस शरदादिगणसूत्र से समासान्त टच् प्रत्यय हुआ। अनुबन्ध लोप तथा 'यस्येति च' से अक्षि के इकार का लोप हुआ। समुदाय से सु विभक्ति, उसके लोप का निषेध तथा उसे अमादेश एवं पूर्वरूप करने पर 'समक्षम्' प्रयोग सिद्ध हुआ।

इसी प्रकार 'अक्ष्णोः पश्चात्' इस अर्थ में 'अन्वक्षम्' रूप सिद्ध होगा।

(४०) उपराजम् (प्रयोग)—'राज्ञः समीपम्' इस विग्रह में राजन् ङस् उप का 'अव्ययं विभक्ति०' सूत्र से समीपार्थ में अव्ययीभाव समास हुआ। समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लोप हो गया। उप को उपसर्जन संज्ञा तथा उसका पूर्वप्रयोग हो गया। 'अन्नन्त अव्ययीभाव से समासान्त टच् हो' एतदर्थक 'अनश्च' इस सूत्र से समासान्त टच् प्रत्यय हुआ। अनुबन्ध लोप तथा 'नकारान्त भसंज्ञक अङ्ग के टि का लोप हो तद्धित के परे' एतदर्थक 'नस्तद्धिते' सूत्र से उपराजन् के टि अर्थात् अन् भाग का लोप हो गया। समुदाय से सु विभक्ति, उसका लोप प्राप्त हुआ, किन्तु 'नाव्ययीभावादतोऽम्त्वपञ्चम्याः' से उसे अम्भाव किया गया तथा पूर्वरूप करने पर 'उपराजम्' प्रयोग सिद्ध हुआ।

(४१) अध्यात्मम् (प्रयोग)—'आत्मनि' इस अर्थ में आत्मन् ङि अधि का 'अव्ययं विभक्ति०' से विभक्त्यर्थ में अव्ययीभाव समास हुआ। समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लोप हो गया। अधि को उपसर्जन संज्ञा तथा उसका पूर्वप्रयोग हुआ। यण् भी हो गया। 'अनश्च' सूत्र से समासान्त टच् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, 'नस्तद्धिते' से टिलोप तथा सु विभक्ति को अमादेश करने के बाद पूर्वरूप करने पर 'अध्यात्मम्' प्रयोग सिद्ध हुआ।

(४२) उपचर्मम्—उपचर्म (प्रयोग)—'चर्मणः समीपम्' इस विग्रह में चर्मन् ङस् उप का 'अव्ययं विभक्ति०' सूत्र से समीपार्थ में अव्ययीभाव समास हुआ। समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लुक् हो गया। उप को उपसर्जन संज्ञा तथा उसका पूर्वप्रयोग हुआ। 'अन्नन्त जो नपुंसक तदन्त अव्ययीभाव से समासान्त टच् प्रत्यय विकल्प से हो' एतदर्थक 'नपुंसकादन्यतरस्याम्' इस सूत्र से टच् प्रत्यय हुआ। अनुबन्ध लोप तथा 'नस्तद्धिते' सूत्र से उपचर्मन् के टि अर्थात् अन्-भाग का लोप हो गया। सु विभक्ति तथा उसे अमादेश आदि करने पर 'उपचर्मम्' रूप सिद्ध हुआ।

टजभावपक्ष में सु का लोप तथा उपचर्मन् के नकार का लोप करने पर 'उपचर्म' रूप सिद्ध होगा।

(४३) उपनदम्—उपनदि (प्रयोग)—'नद्याः समीपम्' इस विग्रह में नदी ङस् उप का 'अव्ययं विभक्ति०' सूत्र से समीपार्थ में अव्ययीभाव समास हुआ। समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लोप हो गया। उप को 'प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्' से उपसर्जन संज्ञा तथा 'उपसर्जनं पूर्वम्' से उसका

पूर्वनिपात हुआ। 'नदीशब्दान्त पौर्णमासीशब्दान्त तथा आग्रहायणीशब्दान्त अव्ययीभाव से वैकल्पिक समासान्त टच् प्रत्यय हो' एतदर्थक 'नदीपौर्णमास्याग्रहायणीभ्यः' इस सूत्र से समासान्त टच् प्रत्यय हुआ। अनुबन्धलोप करने के बाद 'यस्येति च' सूत्र से नदी के ईकार का लोप किया गया। समुदाय से सु विभक्ति, उसके लोप का 'नाव्ययीभावादतोऽम्त्वपञ्चम्याः' सूत्र से निषेध तथा इसी सूत्र से सु को अम् आदेश किया गया। पूर्वरूप करने पर 'उपनदम्' रूप सिद्ध हुआ।

टजभावपक्ष में 'अव्ययीभावश्च' से नपुंसकत्वात् 'ह्रस्वो नपुंसके प्रातिपदिकस्य' से नदी के ईकार को ह्रस्व हो गया तथा 'अव्ययीभावश्च' से अव्ययत्वात् 'अव्ययादाप्सुपः' सूत्र से सु का लोप करने पर 'उपनदि' ऐसा रूप सिद्ध हुआ।

इसी प्रकार 'पौर्णमास्याः समीपम्' इस विग्रह में समासादि करने पर तथा टच् आदि करने पर 'उपपौर्णमासम्' तथा टजभावपक्ष में 'उपपौर्णमासि' रूप बनेगा। 'आग्रहायण्याः समीपम्' इस विग्रह में समासोपरान्त टच् करने पर 'उपाग्रहायणम्' तथा टजभावपक्ष में 'उपाग्रहायणि' रूप बनेगा। उपनदम् एवं उपनदि के समान ही सारी प्रक्रिया इन दोनों की सिद्ध में भी चलेगी।

(४४) **उपसमिधम्—उपसमित् (प्रयोग)**—'समिधः समीपम्' इस विग्रह में 'अव्ययं विभक्ति०' सूत्र से समीपार्थ में अव्ययीभाव समास हुआ। समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लोप हो गया। उप को 'प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्' से उपसर्जन संज्ञा तथा 'उपसर्जनं पूर्वम्' मे उसका पूर्वप्रयोग हुआ। 'झयन्त अव्ययीभाव से समासान्त टच् प्रत्यय विकल्प से हो' इस अर्थवाले 'झयः' इस सूत्र से समासान्त टच् प्रत्यय हुआ। सु विभक्ति, उसका लोप प्राप्त हुआ, किन्तु 'नाऽव्ययीभावादतोऽम्त्वपञ्चम्याः' से सुलोप का निषेध तथा उसे अम्भाव किया गया। पूर्वरूप करने पर 'उपसमिधम्' रूप सिद्ध हुआ।

'झयः' सूत्र में 'नपुंसकादन्यतरस्याम्' सूत्र से चूंकि 'अन्यतरस्याम्' पद की अनुवृत्ति आती है, इसलिए टच् प्रत्यय का इस सूत्र से वैकल्पिक विधान होता है। टजभावपक्ष में सुलोप करने पर उपसमिध् के ध् को 'झलां जशोऽन्ते' से जश्त्व तथा 'वाऽवसाने' से चर्त्व करने पर 'उपसमित्' ऐसा रूप सिद्ध होगा।

(४५) **उपगिरम्—उपगिरि (प्रयोग)**—'गिरेः समीपम्' इस विग्रह में 'अव्ययं विभक्ति०' सूत्र से समीपार्थ में अव्ययीभाव समास हुआ। समासत्वात्

प्रातिपदिकावयव सुप् का 'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः' सूत्र से लोप हो गया। उप को 'प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्' सूत्र से उपसर्जनसंज्ञा तथा 'उपसर्जनं पूर्वम्' सूत्र से उसका पूर्वनिपात हुआ। 'गिरिशब्दान्त अव्ययीभाव से समासान्त टच् प्रत्यय विकल्प से हो सेनक के अनुसार' इस अर्थवाले 'गिरेश्च सेनकस्य' सूत्र से समासान्त टच् प्रत्यय हुआ। अनुबन्धलोप करने के बाद 'यस्येति च' से इकार का लोप किया गया। सु विभक्ति, उसका लोप प्राप्त हुआ, किन्तु 'नाऽव्ययीभावादतोऽम्त्वपञ्चम्याः' सूत्र से सुलोप का निषेध तथा उसे अम्भाव हुआ। पूर्वरूप करने पर 'उपगिरम्' प्रयोग सिद्ध हुआ। टजभावपक्ष में सुलोप करने पर 'उपगिरि' प्रयोग सिद्ध हुआ।

'गिरेश्च सेनकस्य' इस सूत्र में 'नपुंसकादन्यतरस्याम्' इस पूर्वसूत्र से 'अन्यतरस्याम्' की अनुवृत्ति करने पर विकल्प अर्थ सिद्ध है, अतः इस सूत्र में 'सेनक' शब्द का ग्रहण प्रशंसार्थ है।

इस प्रकार अव्ययीभावसमास-प्रकरण समाप्त हुआ।

तत्पुरुष-समास

(१) **द्वितीया श्रितातीतपतितगतात्यस्तप्राप्तापन्नैः** (सूत्र)—यह सूत्र 'तत्पुरुषः' सूत्र के अधिकार-क्षेत्र में पड़ता है। इस सूत्र में 'समर्थः पदविधिः' से 'समर्थः' पद की अनुवृत्ति तथा तृतीयान्त में उसका विपरिणाम होता है। 'सह सुपा' से 'सुपा' पद की भी अनुवृत्ति आती है। 'विभाषा' का भी अधिकार आता है। इस प्रकार—'द्वितीयान्त तदादि, श्रित, अतीत, पतित, गत, अत्यस्त, प्राप्त तथा आपन्न-प्रकृतिक समर्थ सुबन्त के साथ विकल्प से समस्त हो और वह तत्पुरुषसंज्ञक हो' यही सूत्रार्थ फलित होता है। उदाहरण है—कृष्ण-श्रितः आदि।

'कृष्णं श्रितः' इस विग्रह में कृष्ण अम् यह द्वितीयान्त तदादि श्रित सु इस श्रित-प्रकृतिक समर्थ सुबन्त के साथ प्रस्तुत सूत्र से समस्त हुआ है। समासत्वात् 'कृत्तद्धितसमासाश्च' सूत्र से प्रातिपदिक संज्ञा तथा 'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः' सूत्र से प्रातिपदिकावयव सुप् का लुक् हुआ। समुदाय से सु विभक्ति, रुत्व तथा विसर्ग करने पर 'कृष्णश्रितः' रूप सिद्ध होता है।

इसी प्रकार 'दुःखमतीतः' इस विग्रह में प्रस्तुत सूत्र से समास एवं अन्य कार्य करने पर 'दुःखातीतः' प्रयोग सिद्ध होता है।

(२) **ग्रामगमी** (**प्रयोग**) —'ग्रामं गमी' इस विग्रह में 'गमी आदि प्रकृतिक समर्थ सुबन्त के साथ भी द्वितीयान्त तदादि का तत्पुरुष समास हो' इस अर्थवाले 'गम्यादीनामुपसङ्ख्यानम्' इस वार्त्तिक से तत्पुरुष समास हुआ। समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लुक् तथा विभक्ति कार्य करने पर 'ग्रामगमी' प्रयोग सिद्ध हुआ इसी प्रकार 'अन्नं बुभुक्षुः' इस विग्रह में प्रस्तुत वार्त्तिक से ही द्वितीया तत्पुरुष करने पर 'अन्नबुभुक्षुः' प्रयोग सिद्ध होगा।

(३) **स्वायङ्कृतिः** (**प्रयोग**)—'स्वयंकृतस्यापत्यम्' इस अर्थ में 'अत इञ्' सूत्र से इञ् प्रत्यय आदि अच् को 'तद्धितेष्वचामादेः' से वृद्धि, 'यस्येति च' से अकार का लोप तथा विभक्तिकार्य करने पर 'स्वायङ्कृतिः' रूप बनता है। 'स्वयम्' 'यह अव्यय क्त-प्रत्ययान्त सुबन्त तदादि के साथ समस्त हो' एतदर्थक 'स्वयं क्तेन' सूत्र से स्वयम् का कृत के साथ समास करने पर स्वङ्कृत बनता

है। यदि समास नहीं किया जाता तो कृत शब्द से ही इञ् प्रत्यय आता तथा आदि अच् को वृद्धि करने पर स्वयङ्कार्ति ऐसा रूप बन जाता। इसलिए 'स्वायङ्कृतिः' की सिद्धि के लिए 'स्वयं क्तेन' सूत्र का विधान किया गया है।

(४) **खट्वा क्षेपे** (सूत्र)—इस सूत्र में 'द्वितीयाश्रितातीत०' सूत्र से 'द्वितीया' तथा 'स्वयं क्तेन' सूत्र से 'क्तेन' पदों की अनुवृत्ति आती है। 'खट्वा प्रकृतिक द्वितीयान्त तदादि क्तान्त प्रकृतिक सुबन्त-तदादि के साथ निन्दा अर्थ में नित्यरूप से समस्त हो' यही सूत्रार्थ फलित होता है। उदाहरण है—खट्वारूढो जाल्मः।

खट्वा अम् आरूढ सु का 'खट्वा क्षेपे' से समास हुआ। समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लुक् तथा विभक्तिकार्य करने पर 'खट्वारूढः' प्रयोग सिद्ध हुआ। 'खट्वामारूढः' इस वाक्य से निन्दा अर्थ नहीं बोधित होता है। अतः खट्वारूढः इस समास का लौकिक विग्रह नहीं किया जायेगा। खट्वारूढ शब्द रूढि से निन्दा अर्थ को सूचित करता है।

(५) कालाः (सूत्र)—इस सूत्र में 'द्वितीयाश्रितातीत०' सूत्र से 'द्वितीया' तथा 'स्वयं क्तेन' सूत्र से 'क्तेन' पद की अनुवृत्ति होती है। 'सुपा' की अनुवृत्ति तथा 'विभाषा' का भी अधिकार आता है। इस प्रकार 'कालवाचक प्रकृतिक द्वितीयान्त-तदादि क्त-प्रत्ययान्त प्रकृतिक समर्थ सुबन्त के साथ विकल्प से समस्त हो' यही सूत्रार्थ फलित होता है। उदाहरण है—मासप्रमितः

प्र-उपसर्गपूर्वक मा धातु से 'आदिकर्मणि क्तः कर्त्तरि च' सूत्र से क्त-प्रत्यय करने पर 'प्रमितः' बनता है। मासं प्रमितः' इस विग्रह में मास अम् यह कालवाचक प्रकृतिक द्वितीयान्त-तदादि प्रमित सु इस क्त-प्रत्ययान्त प्रकृतिक सुबन्त के साथ 'कालाः' सूत्र से समस्त हुआ है। समासत्वात् 'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः' से प्रातिपदिकावयव सुप् का लुक् किया गया तथा पुनः समुदाय से सु विभक्ति, रुत्व एवं विसर्ग करने पर 'मासप्रमितः' प्रयोग सिद्ध हुआ।

'अत्यन्तसंयोगे च' इस पर सूत्र से अत्यन्तसंयोग में ही कालवाचक का क्त-प्रत्ययान्त सुबन्त के साथ समास होता है। इसलिए जहाँ अत्यन्तसंयोग नहीं है वहाँ के लिए यह समास विहित है। 'मासप्रमितः प्रतिपच्चन्द्रः' यहाँ पर मास का प्रतिपच्चन्द्र के साथ अत्यन्तसंयोग नहीं है, इसलिए 'अत्यन्तसंयोगे च' से समास नहीं होता। इसीलिए अत्यन्तसंयोग के लिए यह सूत्र है।

(६) **अत्यन्तसंयोगे च (सूत्र)**—इस सूत्र में 'द्वितीया श्रितातीत०' से द्वितीया पद की तथा 'काला:' सूत्र से काला: पद की अनुवृत्ति होती है। 'सह सुपा' से 'सुपा' पद की अनुवृत्ति तथा 'विभाषा' का अधिकार भी आता है। 'अत्यन्तसंयोग रहने पर कालवाचक प्रकृतिक द्वितीयान्त-तदादि समर्थ सुबन्त के साथ विकल्प से समस्त हो तथा वह तत्पुरुषसंज्ञक हो' यही सूत्रार्थ फलित होता है। 'काला' सूत्र से क्त-प्रत्ययान्त सुबन्त के साथ ही कालवाचक द्वितीयान्त का समास होता था तथा वह भी अनत्यन्त संयोग में होता था, किन्तु इस सूत्र से होनेवाले समास में दो विशेषताएँ हैं। एक तो अत्यन्तसंयोग में समास का विधान किया जाता है तथा दूसरी विशेषता यह है कि सुबन्तमात्र के साथ समास होता है, क्त-प्रत्ययान्त प्रकृतिक सुबन्त के साथ नहीं। उदाहरण है—मूहूर्त्तसुखम्।

'मुहूर्त्तं सुखम्' इस विग्रह में मुहूर्त्त अम् तथा सुख सु का इसी सूत्र से तत्पुरुषसमास हुआ। समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लोप हो गया तथा पुन: विभक्तिकार्य करने पर 'मुहूर्त्तसुखम्' रूप सिद्ध हुआ। मुहूर्त्तसुखम् का अर्थ है मुहूर्त्तव्यापि सुखम् अर्थात् मुहूर्त्त भर रहने वाला सुख। इस प्रकार यहाँ पर अत्यन्तसंयोग है।

(७) **तृतीया तत्कृतार्थेन गुणवचनेन (सूत्र)**–इस सूत्र में 'तत्पुरुष:' का अधिकार आता है। 'सुपा' आदि की अनुवृत्ति होती है। सूत्रार्थ है—तृतीयान्त-तदादि स्वार्थकृत गुणवाचक प्रकृतिक समर्थ सुबन्त एवं अर्थशब्दप्रकृतिक सुबन्त-तदादि के साथ समस्त हो तथा वह समास तत्पुरुषसंज्ञक हो।' उदाहरण है—शङ्कुलाखण्ड:, धान्यार्थ:।

'शङ्कुलया खण्ड:' इस विग्रह में शङ्कुला टा खण्ड सु का इसी सूत्र से तत्पुरुष समास हुआ। समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लोप हो गया। समुदाय से सु विभक्ति, रुत्व एवं विसर्ग करने पर 'शङ्कुलाखण्ड:' सिद्ध होता है। यहाँ शङ्कुलया यह तृतीयान्त तदादि है तथा खण्ड: तृतीयान्तार्थकृत गुणवाचक प्रकृतिक सुबन्त-तदादि है, अत: समास हुआ है।

इसी प्रकार 'धान्येनार्थ:' यहाँ पर धान्य टा तथा अर्थ सु का समास होने पर 'धान्यार्थ:' रूप सिद्ध होता है।

सूत्र में तत्कृत कहने का आशय यह है कि जिस गुणवाचक शब्द के साथ तृतीयान्त का समास होता है, वह उसी तृतीयान्तार्थ द्वारा कृत अर्थात् किया

गया हो। जैसे—उपर्युक्त प्रयोग में खण्ड शङ्कुला से किया गया है। 'अक्षणा काणः' में इसलिए समास नहीं होगा, चूँकि काणत्व अक्षिकृत नहीं है।

(८) **पूर्वसदृशसमोनार्थकलहनिपुणमिश्रश्लक्ष्णैः** (सूत्र)—इस सूत्र में 'तृतीया तत्कृतार्थेन गुणवचनेन' इस पूर्वसूत्र से 'तृतीया' पद की अनुवृत्ति होती है। 'तत्पुरुषः' 'विभाषा' आदि का अधिकार तथा 'सुपा' आदि की अनुवृत्ति आती है। 'पूर्व, सदृश, सम, ऊनार्थ, कलह, निपुण, मिश्र और श्लक्ष्ण प्रकृतिक समर्थ सुबन्त के साथ तृतीयान्त तदादि विकल्प से समस्त होता हुआ तत्पुरुषसंज्ञक हो' यही सूत्रार्थ फलित होता है। उदाहरण है—मासपूर्वः आदि।

'मासेन पूर्वः' इस विग्रह में मास टा पूर्व सु का प्रस्तुत सूत्र से तत्पुरुष समास हुआ। समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लोप हो गया। समुदाय से सु विभक्ति, उसे रुत्व एवं विसर्ग करने पर 'मासपूर्वः' प्रयोग सिद्ध होता है। इसी प्रकार मात्रा सदृशः, पित्रा समः, माषेणोनम् आदि विग्रहों में तत्तत् तृतीयान्त क्रमशः सदृश, सम ऊनार्थ आदि शब्दों के साथ समस्त हुआ है।

'मिश्रग्रहणे सोपसर्गस्यापि ग्रहणम्' इस नियम के अनुसार 'गुडेन सम्मिश्राः' इस विग्रह में गुड टा यहाँ तृतीयान्त सम्मिश्र जस् इस सोपसर्ग मिश्रप्रकृतिक समर्थ सुबन्त के साथ समस्त हुआ है, इसलिए 'गुडसम्मिश्राः धानाः' प्रयोग होता है।

'पूर्वसदृशसमोनार्थ०' सूत्र में 'अवर' ऐसा भी कहना चाहिए, एतदर्थक 'अवरस्योपसङ्ख्यानम्' इस वार्तिक के कारण 'मासेन अवरः' इस विग्रह में समासादि करने पर 'मासावरः' प्रयोग सिद्ध होता है।

(९) **कर्तृकरणे कृता बहुलम्** (सूत्र)—इस सूत्र में 'तृतीया तत्कृतार्थेन गुणवचनेन' इस पूर्वसूत्र से 'तृतीया' पद की अनुवृत्ति होती है। 'कर्त्ता एवं करण में जो तृतीया हो तादृश तृतीयान्त-तदादि कृदन्त-तदादि प्रकृतिक समर्थ सुबन्त के साथ बहुल प्रकार से समस्त होता हुआ तत्पुरुषसंज्ञक हो' यही सूत्रार्थ है। उदाहरण है—हरित्रातः, नखभिन्नः।

'हरिणा त्रातः' इस विग्रह में हरि टा त्रात सु का प्रस्तुत सूत्र से तत्पुरुष समास हुआ। समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लोप हो गया तथा समुदाय से सु विभक्ति, रुत्व एवं विसर्ग करने पर 'हरित्रातः' सिद्ध हुआ। यहाँ पर हरि शब्द से अनुक्त कर्त्ता होने के कारण 'कर्तृकरणयोस्तृतीया' से तृतीया

विभक्ति आयी थी। इसी प्रकार 'नखैर्भिन्नः' इस विग्रह में नख भिस् भिन्न सु का समासादि होने पर 'नखभिन्नः' रूप सिद्ध होता है। नख शब्द से करण अर्थ में तृतीया विभक्ति के आने पर 'नखैः' बना था। 'कृद्ग्रहणे गतिकारकपूर्वस्यापि ग्रहणम्' इस परिभाषा के अनुसार 'नखैः निर्भिन्नः' इस विग्रह में समास करने पर 'नखनिर्भिन्नः' भी सिद्ध होता है।

(१०) **कृत्यैरधिकार्थवचने** (सूत्र)—इस सूत्र में भी 'तृतीया' पद की अनुवृत्ति आती है। स्तुति एवं निन्दापरक अर्थवाद वचन को अधिकार्थवचन कहते हैं। इस प्रकार 'अधिकार्थवचन के होने पर कर्त्ता एवं करण में जो तृतीया तादृश तृतीयान्त-तदादि कृत्यप्रत्ययान्त-तदादि प्रकृतिक समर्थ सुबन्त के साथ विकल्प से समस्त होता हुआ तत्पुरुषसंज्ञक हो, यही सूत्रार्थ फलित होता है। उदाहरण है—वातच्छेद्यं तृणम्, काकपेया नदी।

'वातेन छेद्यम्' इस विग्रह में वात टा छेद्य सु का प्रस्तुत सूत्र से समास हुआ। समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लुक् तथा विभक्तिकार्य करने पर वातच्छेद्यम् सिद्ध होता है। यहाँ पर स्तुति रूप अधिकार्थवचन है, क्योंकि तृण की कोमलता की प्रशंसा में वातच्छेद्य को तृण का विशेषण बनाया गया हैं। वात शब्द से करण अर्थ में तृतीया विभक्ति आयी है। इसी प्रकार निन्दा रूप अधिकार्थवचन का उदाहरण है—काकपेया नदी। यहाँ पर काक शब्द से अनुक्तकर्त्ता होने के कारण 'कर्तृकरणयोस्तृतीया' से तृतीया विभक्ति आयी है। 'काकेन पेया' इस विग्रह में काक टा पेया सु का प्रस्तुत सूत्र से समास हुआ। समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लुक् हुआ तथा विभक्ति कार्य करने पर 'काकपेया' रूप सिद्ध होता है।

(११) **अन्नेन व्यञ्जनम्** (सूत्र)—इस सूत्र में 'तृतीया' पद की अनुवृत्ति होती है। संस्कारक द्रव्यविशेष व्यञ्जन कहलाता है। इस प्रकार 'संस्कारक द्रव्यवाचक तृतीयान्ततदादि अन्नवाचक शब्द प्रकृतिक समर्थ सुबन्त के साथ समस्त हो' यही सूत्रार्थ है। उदाहरण है—दध्योदनः।

'दध्ना ओदनः' इस विग्रह में दधि टा चूँकि संस्कारक द्रव्यवाचक तथा तृतीयान्त है तथा ओदन सु चूँकि अन्नवाचक शब्द तथा समर्थ सुबन्त है, अतः 'अन्नेन व्यञ्जनम्' से समास हुआ। समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लुक् तथा विभक्तिकार्य करने पर 'दध्योदनः' सिद्ध होता है। प्रस्तुत प्रयोग में

वस्तुतः 'दध्ना उपसिक्तः ओदनः' यह अर्थ विवक्षित है। अतः यहाँ पर अन्तर्भूत उपसेक क्रिया द्वारा सामर्थ्य होती है।

(१२) **भक्ष्येण मिश्रीकरणम् (सूत्र)**—इस सूत्र में 'तृतीया तत्कृतार्थेन गुणवचनेन' से 'तृतीया' पद की अनुवृत्ति होती है। जिसके द्वारा खाद्य पदार्थ में मिलावट की जाती है, वह गुड आदि पदार्थ मिश्रीकरण कहलाता है। इस प्रकार—'मिश्रीकरणवाचक तृतीयान्त तदादि भक्ष्यवाचक समर्थ सुबन्त के साथ समस्त हो' यही सूत्रार्थ है। उदाहरण है—गुडधानाः। 'गुडेन धानाः' इस विग्रह में गुड टा धाना जस् का इसी सूत्र से समास हुआ। समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लुक् तथा विभक्ति कार्य करने पर 'गुडधानाः' रूप सिद्ध हुआ।

(१३) **चतुर्थी तदर्थार्थबलिहितसुखरक्षितैः (सूत्र)**—'चतुर्थ्यन्तार्थ के लिए जो हो तद्वाचक तथा अर्थ, बलि, हित, सुख एवं रक्षित प्रकृतिक समर्थ सुबन्त के साथ चतुर्थ्यन्त विकल्प से समस्त होता हुआ तत्पुरुषसंज्ञक हो' यही सूत्रार्थ है। सूत्र में तदर्थ शब्द से प्रकृतिविकृतिभाव ही समझना चाहिए। इसीलिए 'यूपाय दारु' इस विग्रह में यूप ङे दारु सु का प्रस्तुत सूत्र से समास, समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लुक् तथा विभक्तिकार्य करने पर 'यूपदारु' प्रयोग सिद्ध होता है। तदर्थ का प्रकृतिविकृतिभावरूप अभिप्राय होने से ही 'रन्धनाय स्थाली' यहाँ पर समास नहीं हुआ है। यूपदारु में दारुरूप प्रकृति की विकृति ही यूप है, किन्तु 'रन्धनाय स्थाली' में ऐसी बात नहीं है।

(१४) **अर्थेन नित्यसमासो विशेष्यलिङ्गता चेति वक्तव्यम् (वार्त्तिक)**—'अर्थप्रकृतिक समर्थ सुबन्त के साथ जहाँ चतुर्थ्यन्त समस्त हो, वहाँ नित्य समास हो तथा विशेष्यगत लिङ्गता हो' यही वार्तिकार्थ है। नित्यसमास में 'द्विजाय अयं सूपः द्विजार्थः सूपः, द्विजाय इयं यवागूः द्विजार्था यवागूः, द्विजायेदं पयः द्विजार्थं पयः' ऐसा अस्वपद विग्रह करके समास होगा।

(१५) **भूतबलिः (प्रयोग)**—'भूताय बलिः' इस विग्रह में 'चतुर्थी तदर्थार्थबलिहितसुखरक्षितैः' सूत्र से भूत ङे बलि सु का तत्पुरुष समास हुआ। समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लुक् तथा विभक्तिकार्य करने पर 'भूतबलिः' प्रयोग सिद्ध होगा। इसी प्रकार 'गवे हितम्' इस विग्रह में 'गोहितम्', 'गवे सुखम्' इस विग्रह में 'गोसुखम्' तथा 'गवे रक्षितम्' इस विग्रह से 'गोरक्षितम्' प्रयोग सिद्ध होंगे।

(१६) **पञ्चमी भयेन**—इस सूत्र में 'समर्थः' 'सुपा' आदि पदों की अनुवृत्ति आती है। 'पञ्चम्यन्त तदादि भयप्रकृतिक समर्थ सुबन्त के साथ विकल्प से समस्त हो तथा वह तत्पुरुषसंज्ञक हो' यही सूत्रार्थ है। उदाहरण है—चोरभयम्।

'चोराद् भयम्' इस विग्रह में चोर ङसि यह पञ्चम्यन्त तदादि भय सु इस भय प्रकृतिक समर्थ सुबन्त के साथ 'पञ्चमी भयेन' सूत्र से तत्पुरुष के रूप में समस्त हुआ। समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लुक् तथा विभक्ति कार्य करने पर 'चोरभयम्' रूप सिद्ध हुआ।

'पञ्चमी भयेन' सूत्र में न केवल 'भयेन' अपितु 'भयभीतभीतिभीभिः' ऐसा कहना चाहिए इस अर्थवाले 'भयभीतभीतिभीभिरिति वाच्यम्' इस वार्त्तिक से समास करने पर 'वृकाद् भीतः' इस विग्रह में वृकभीतः, 'वृकाद् भीतिः' इस विग्रह में वृकभीतिः, 'वृकाद् भीः' इस विग्रह में वृकभीः रूप सिद्ध होंगे।

(१७) **सुखापेतः (प्रयोग)**—'सुखात् अपेतः' इस विग्रह में 'अपेतापोढ-मुक्तपतितापत्रस्तैरल्पशः' इस सूत्र से सुख ङसि अपेत सु का पञ्चमीतत्पुरुष समास हुआ। प्रातिपदिकावयव सुप् का लुक् तथा विभक्तिकार्य करने पर 'सुखापेतः' प्रयोग सिद्ध हुआ। कल्पनापोढः, चक्रमुक्तः आदि में इसी सूत्र से पञ्चमीतत्पुरुष समास होता है।

(१८) **स्तोकान्तिकदूरार्थकृच्छ्राणि क्तेन (सूत्र)**—इस सूत्र में 'पञ्चमी भयेन' से 'पञ्चमी' पद की अनुवृत्ति आती है। 'स्तोकार्थक, अन्तिकार्थक, दूरार्थक शब्दप्रकृतिक और कृच्छ्रप्रकृतिक पञ्चम्यन्त-तदादि क्तान्त-तदादि-प्रकृतिक समर्थ सुबन्त के साथ विकल्प से समस्त हो तथा वह तत्पुरुषसंज्ञक हो' यही सूत्रार्थ है। उदाहरण है—स्तोकान्मुक्तः आदि।

'स्तोकात् मुक्तः' इस विग्रह में प्रस्तुत सूत्र से तत्पुरुष समास हुआ। समासत्वात् प्रातिपदिक संज्ञा तथा 'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः' से प्रातिपदिकावयव सुप् का लोप प्राप्त हुआ। किन्तु 'पञ्चम्याः स्तोकादिभ्यः' सूत्र से पञ्चमी विभक्ति का अलुक् होने के कारण समास तथा लौकिकविग्रह दोनों में ही 'स्तोकान्मुक्तः' ऐसा ही समान रूप रह गया। यहाँ पर स्तोक शब्द से 'करणे च स्तोकाल्पकृच्छ्रकतिपयस्यासत्त्ववचनस्य' सूत्र से पञ्चमी विभक्ति आयी है। इसी प्रकार अल्प शब्द से इसी कारक सूत्र से पञ्चमी विभक्ति आने पर

अल्पात् सिद्ध होता है तथा 'अल्पात् आगतः' इस विग्रह में 'स्तोकान्तिक दूरार्थ०' सूत्र से समास करने पर तथा 'पञ्चम्याः स्तोकादिभ्यः' से पञ्चमी का अलुक् करने पर 'अल्पादागतः' सिद्ध होता है।

अन्तिकादागतः, दूरादागतः आदि में 'दूरान्तिकार्थेभ्यो द्वितीया च' इस कारक सूत्र से क्रमशः अन्तिक तथा दूर शब्द से पञ्चमी आने पर अन्तिकात् तथा दूरात् सिद्ध होता है। आगतः के साथ उनका समास करने पर तथा पञ्चमी का अलुक् होने पर अन्तिकादागतः, दूरादागतः आदि प्रयोग सिद्ध होते हैं।

(१९) षष्ठी (सूत्र)—'षष्ठ्यन्त-तदादि समर्थ सुबन्त-तदादि के साथ विकल्प से समस्त हो तथा वह तत्पुरुष संज्ञक हो' यही सूत्रार्थ है। जैसे— राजपुरुषः।

'राज्ञः पुरुषः' इस विग्रह में राजन् ङस् का 'षष्ठी' सूत्र में तत्पुरुषसमास हुआ। समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लुक् तथा समुदाय से सु विभक्ति एवं उसे रुत्व तथा विसर्ग करने पर 'राजपुरुषः' रूप सिद्ध हुआ।

(२०) याजकादिभिश्च (सूत्र)—इस सूत्र में 'षष्ठी' सूत्र से षष्ठी पद की अनुवृत्ति आती है। 'याजकादिगण पठित शब्द प्रकृतिक समर्थ सुबन्त के साथ षष्ठ्यन्ततदादि तत्पुरुष के रूप में समस्त हो' यही सूत्रार्थ है। उदाहरण है—ब्राह्मणयाजकः, देवपूजकः आदि।

'ब्राह्मणस्य याजकः' इस विग्रह में ब्राह्मण ङस् याजक सु का प्रस्तुत सूत्र से समास हुआ। समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लुक् तथा समुदाय से सु विभक्ति एवं उसे रुत्व-विसर्ग करने पर 'ब्राह्मणयाजकः' प्रयोग सिद्ध होता है। इसी प्रकार 'देवानां पूजकः' इस विग्रह में देव आम् पूजक सु का इसी सूत्र से समास करने पर 'देवपूजकः' रूप सिद्ध होता है।

(२१) सर्वश्वेतः, सर्वमहान् (प्रयोग)—'सर्वेषां श्वेततरः' इस विग्रह में सर्व आम् तथा श्वेतर सु का 'तरबन्त जो गुणवाचक शब्दप्रकृतिक समर्थ सुबन्त उसके साथ षष्ठ्यन्ततदादि समस्त हो तथा तरप् का लोप हो, इस अर्थवाले 'गुणात्तरेण तरलोपश्चेति वक्तव्यम्' इस वार्त्तिक से समास हुआ तथा तरप् का लोप हो गया। प्रातिपदिकादि कार्य करने पर 'सर्वश्वेतः' प्रयोग सिद्ध हुआ। श्वेततर शब्द गुणवाचक तथा तरप् प्रत्ययान्त है, इसलिए उसके साथ 'सर्वेषाम्' यह षष्ठ्यन्त तदादि यहाँ समस्त हुआ है।

इसी प्रकार 'सर्वेषां महत्तरः' इस विग्रह में इसी वार्त्तिक से समास तथा तरप् का लोप करने पर 'सर्वमहान्' प्रयोग सिद्ध होगा।

(२२) **न निर्धारणे** (सूत्र)—इस सूत्र में 'षष्ठी' सूत्र से षष्ठी पद की अनुवृत्ति आती है। 'निर्धारण अर्थ में विहित जो षष्ठी तदन्ततदादि समर्थ सुबन्त के साथ समस्त नहीं हो' यही सूत्रार्थ है। इसका उदाहरण है—नृणां द्विजः श्रेष्ठः। यहाँ पर 'यतश्च निर्धारणम्' सूत्र से नृ शब्द से षष्ठी का विधान किया गया है। अतः नृणाम् यह षष्ठ्यन्त तदादि द्विजः इस समर्थ सुबन्त के साथ 'न निर्धारणे' सूत्र के कारण समस्त नहीं हुआ है।

(२३) **सर्पिषो ज्ञानम्** (प्रयोग)—यहाँ पर 'प्रतिपदविधाना जो षष्ठी, तदन्ततदादि समर्थ सुबन्त के साथ समस्त नहीं हो' इस अर्थवाले 'प्रतिपदविधाना षष्ठी न समस्यत इति वाच्यम्' इस वार्त्तिक से निषेध करने के कारण सर्पिषः यह षष्ठ्यन्ततदादि ज्ञानम् इस सुबन्त के साथ समस्त नहीं हुआ है। 'शेषे षष्ठी' सूत्र से विहित षष्ठी को छोड़कर सभी षष्ठी प्रतिपदविधाना षष्ठी कहलाती है, क्योंकि पद को आश्रित कर वह षष्ठी होती है। जैसे—यहाँ पर सर्पिष् शब्द से जो षष्ठी आयी है वह 'ज्ञोऽविदर्थस्य करणे' सूत्र से हुई है, जो पदाश्रित होने के कारण प्रतिपदविधाना है।

(२४) **पूरणगुणसुहितार्थसदव्ययतव्यसमानाधिकरणेन** (सूत्र)—इस सूत्र में 'षष्ठी' सूत्र से 'षष्ठी' तथा 'न निर्धारणे' से 'न' पद की अनुवृत्ति होती है। 'पूरणार्थक, गुणार्थक, सुहितार्थक, सत् अर्थात् शतृशानच् प्रत्ययान्त, अव्यय तव्यप्रत्ययान्त एवं समानाधिकरणार्थक सुबन्त तदादि के साथ षष्ठ्यन्त तदादि समस्त नहीं हो' यही सूत्रार्थ है। उदाहरण है—सतां षष्ठः।

'सतां षष्ठः' इस विग्रह में सताम् यह षष्ठ्यन्ततदादि षष्ठः इस पूरणार्थक सुबन्त के साथ प्रस्तुत सूत्र के साथ समस्त नहीं हुआ है। इसी प्रकार गुणार्थक सुबन्त के साथ षष्ठ्यन्त के समस्त नहीं होने का उदाहरण है—काकस्य कार्ष्ण्यम्।

(२५) **क्तेन च पूजायाम्** (सूत्र)—इस सूत्र में 'षष्ठी' सूत्र से 'षष्ठी' तथा 'न निर्धारणे' से 'न' की अनुवृत्ति आती है। 'मतिबुद्धिपूजार्थेभ्यश्च' सूत्र से विहित जो क्त प्रत्यय तदन्ततदादि समर्थ सुबन्त के साथ षष्ठ्यन्ततदादि समस्त नहीं हो' यही सूत्रार्थ है। उदाहरण है—राज्ञां मतो बुद्धः पूजितो वा।

यहाँ पर मत्यर्थक मन् धातु, बुद्धयर्थक बुध् धातु तथा पूजार्थक पूज धातु से 'मतिबुद्धिपूजार्थेभ्यश्च' सूत्र से क्त प्रत्यय करने पर क्रमशः मतः, बुद्धः तथा पूजितः निष्पन्न होता है, जिनके साथ राज्ञाम् यह षष्ठ्यन्ततदादि प्रस्तुत सूत्र से निषेध होने के कारण समस्त नहीं हुआ है। राजपूजितः इत्यादि स्थलों में चूँकि पूज धातु से भूतार्थ में क्त प्रत्यय आया है, इसलिए 'राजपूजितः' सिद्ध होगा। इसी प्रकार राजमतः, राजबुद्धः आदि में भी षष्ठीतत्पुरुष समास का निषेध नहीं होगा।

(२६) अधिकरणवाचिना च (सूत्र)—इस सूत्र में 'षष्ठी' सूत्र से षष्ठी तथा 'न निर्धारणे' से 'न' की अनुवृत्ति आती है। 'अधिकरणवाची जो क्त प्रत्यय तदन्ततदादि समर्थ सुबन्ततदादि के साथ षष्ठ्यन्ततदादि समस्त नहीं हो' यही सूत्रार्थ है। उदाहरण है— इदमेषामासितं गतं भुक्तं वा।

यहाँ पर आस्, गम् तथा भुज् धातुओं से 'क्तोऽधिकरणे च ध्रौव्यगति-प्रत्यवसानार्थेभ्यः' सूत्र से अधिकरण में क्त प्रत्यय करने पर क्रमशः 'आसितम्, गतम् तथा भुक्तम्' सिद्ध होता है। इनके साथ एषाम् यह षष्ठ्यन्ततदादि प्रस्तुत सूत्र द्वारा निषेध करने के कारण समस्त नहीं हुआ है।

(२७) तृजकाभ्यां कर्तरि (सूत्र)—इस सूत्र में 'षष्ठी' सूत्र से 'षष्ठी' तथा 'न निर्धारणे' से 'न' पद की अनुवृत्ति होती है। 'कर्त्रर्थक तृच् एवं अक प्रत्ययान्त तदादि समर्थ सुबन्ततदादि के साथ षष्ठ्यन्ततदादि समस्त नहीं हो' यही सूत्रार्थ है। उदाहरण है—अपां स्रष्टा, वज्रस्य भर्ता, ओदनस्य पाचकः आदि।

'अपां स्रष्टा' इस विग्रह में कर्त्रर्थक तृच्-प्रत्ययान्ततदादि समर्थ सुबन्ततदादि स्रष्टा के साथ अपाम् यह षष्ठयन्ततदादि प्रस्तुत सूत्र से समस्त नहीं हुआ है। दूसरा उदाहरण—व्रजस्य भर्त्ता है। अक-प्रत्ययान्त का उदाहरण है—ओदनस्य पाचकः। पच् धातु से कर्त्ता अर्थ में ण्वुल् तथा उसे अक आदेश करने पर 'पाचकः' सिद्ध होता है। पाचकः के साथ ओदनस्य का तत्पुरुष समास इसी सूत्र से निषेध करने के कारण नहीं हुआ है।

(२८) कर्तरि च (सूत्र)—इस सूत्र में 'षष्ठी' सूत्र से 'षष्ठी' पद की तथा 'न निर्धारणे' सूत्र से 'न' पद की अनुवृत्ति आती है। 'कर्त्रर्थ में विहित जो षष्ठी तदन्त तदादि अक-प्रत्ययान्त समर्थ सुबन्त के साथ समस्त न हो' यही सूत्रार्थ है। उदाहरण है—भवतः शायिका। यहाँ पर 'कर्तृकर्मणोः कृति' सूत्र

से षष्ठी विभक्ति कर्त्रर्थ में आने के कारण 'भवतः' बना है, जो अक-प्रत्ययान्त शायिका के साथ समस्त नहीं हुआ है।

(२६) अर्धं नपुंसकम् (सूत्र)—समांशवाची अर्धशब्द नित्य क्लीब अर्थात् नित्य नपुंसक में है। 'वह समर्थ सुबन्ततदादि षष्ठ्यन्त तदादि के साथ समस्त हो' यही सूत्रार्थ है। उदाहरण है—अर्धपिप्पली।

'अर्धं पिप्पल्याः' इस विग्रह में 'अर्धं नपुंसकम्' से तत्पुरुष समास हुआ तथा अन्य कार्य करने पर ,अर्धपिप्पली' प्रयोग सिद्ध हुआ।

(३०) प्राप्तापन्ने च द्वितीयया (सूत्र)—'प्राप्त एवं आपन्नप्रकृतिक समर्थ सुबन्त तदादि द्वितीयान्ततदादि के साथ विकल्प से समस्त हो' यही सूत्रार्थ है। उदाहरण है—प्राप्तजीविकः—जीविकाप्राप्तः आदि।

'प्राप्तो जीविकाम्' इस विग्रह में प्राप्त सु जीविका अम् का 'प्राप्तापन्ने च द्वितीयया' से समास हुआ। समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लुक् हो गया। सूत्र में प्रथमान्तत्वेन निर्दिष्ट होने के कारण प्राप्त शब्द को उपसर्जन संज्ञा तथा उसका पूर्वनिपात हुआ। आकार को ह्रस्व तथा विभक्ति कार्य करने पर 'प्राप्तजीविकः' प्रयोग सिद्ध हुआ। बिकल्प पक्ष में 'द्वितीया श्रितातीतपतित-गतात्यस्तप्राप्तापन्नैः' सूत्र से समास किया जाता है तथा इस सूत्र में प्रथमान्तत्वेन निर्दिष्ट है चूंकि 'द्वितीया' पद तथा तत्पदबोध्य समासघटक पद है जीविका इसलिए उसे ही उपसर्जनसंज्ञा एवं उसीका पूर्वनिपात होने से तथा ह्रस्व एवं विभक्तिकार्य होने से 'जीविकाप्राप्तः' भी रूप निष्पन्न होता है। इसी प्रकार 'आपन्नः जीविकाम्' इस विग्रह में 'प्राप्तापन्ने च द्वितीयया' से समास करने पर 'आपन्नजीविकः' तथा विकल्प पक्ष में 'द्वितीया श्रितातीत०' से समास करने पर 'जीविकापन्नः' रूप निष्पन्न होता है।

सूत्र में द्वितीयया अ ऐसा छेद करने के कारण 'जीविकां प्राप्ता स्त्री' इस विग्रह में समासादि करने पर अकारान्तादेश करने पर 'प्राप्तजीविका' आदि निष्पन्न होता है।

(३१) कालाः परिमाणिना (सूत्र)—'परिच्छेद्यवाचक सुबन्ततदादि के साथ कालवाचक प्रकृतिक सुबन्ततदादि विकल्प से समस्त हो' यही सूत्रार्थ है। उदाहरण है—मासजातः।

'मासो जातस्य' इस विग्रह में प्रस्तुत सूत्र से समास हुआ तथा अन्य कार्य करने पर 'मासजातः' प्रयोग सिद्ध हुआ। यहाँ पर अखण्ड काल का परिच्छेदक

(विभाजक) मास है, जिससे परिच्छेद्य जात (शिशु) है, अतः समास हुआ है।

(३२) **सप्तमी शौण्डैः** (सूत्र)—'सप्तम्यन्त तदादि शौण्डादिगणपठित-शब्दप्रकृतिक समर्थ सुबन्त के साथ विकल्प से समस्त होता हुआ तत्पुरुषसंज्ञक हो' यही सूत्रार्थ है। उदाहरण है—अक्षशौण्डः।

'अक्षेषु शौण्डः' इस विग्रह में अक्ष सुप् शौण्ड सु का इस सूत्र से समास हुआ। समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का 'सुपो धातुप्रातिपदिकयो.' से लोप हो गया। समुदाय से सु विभक्ति, उसे रुत्व एवं विसर्ग करने पर 'अक्ष-शौण्डः' प्रयोग सिद्ध हुआ।

(३३) **सिद्धशुष्कपक्वबन्धैश्च** (सूत्र)—इस सूत्र में 'सप्तमी शौण्डैः' सूत्र से 'सप्तमी' पद की अनुवृत्ति होती है। प्रत्ययग्रहणपरिभाषा से तदन्त-तदादि विधि करने पर—'सप्तम्यन्त तदादि सिद्ध, शुष्क, पक्व तथा बन्ध प्रकृतिक समर्थ सुबन्त के साथ विकल्प से समस्त होता हुआ तत्पुरुषसंज्ञक हो' यही सूत्रार्थ फलित होता है। उदाहरण है—साङ्काश्यसिद्धः आदि।

'साङ्काश्ये सिद्धः' इस विग्रह में साङ्काश्य ङि सिद्ध सु का प्रस्तुत सूत्र से तत्पुरुष समास हुआ। समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लोप तथा समुदाय से सु विभक्ति; उसे रुत्व एवं विसर्ग करने पर 'साङ्काश्यसिद्धः' रूप निष्पन्न होता है। इसी प्रकार 'आतपे शुष्कः' इस विग्रह में आतप ङि शुष्क सु का, 'स्थाल्यां पक्वः' इस विग्रह में स्थाली ङि पक्व सु का तथा 'चक्रे बन्धः' इस विग्रह में चक्र ङि बन्ध सु का प्रस्तुत सूत्र से समास करने पर एवं अन्य कार्य करने पर क्रमशः 'आतपशुष्कः, स्थालीपक्वः तथा चक्रबन्धः' रूप सिद्ध होंगे।

(३४) **ध्वाङ्क्षेण क्षेपे** (सूत्र)—इस सूत्र में 'सप्तमी शौण्डैः' सूत्र से 'सप्तमी' पद की अनुवृत्ति आती है। 'सप्तम्यन्त तदादि ध्वाङ्क्षवाचक शब्द प्रकृतिक समर्थ सुबन्त के साथ निन्दा अर्थ में समस्त हो' यही सूत्रार्थ है। उदाहरण है—तीर्थध्वाङ्क्षः।

'तीर्थे ध्वाङ्क्षः' इस विग्रह में तीर्थ ङि ध्वाङ्क्ष सु का इस सूत्र से समास हुआ। समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लुक् तथा विभक्तिकार्य करने पर 'तीर्थध्वाङ्क्षः' रूप सिद्ध हुआ। यहाँ निन्दा अर्थ प्रतीत हो रहा है। तीर्थ

में धर्मप्रिय यात्रियों को ठगने वाले या उनसे गलत ढंग से पैसे ऐंठने वाले पण्डे आदि तीर्थध्वाङ्क्ष या तीर्थकाक कहलाते हैं।

(३५) कृत्यैर्ऋणे (सूत्र)–महाभाष्य के 'ऋणपदमावश्यकोपलक्षणम्' इस वचन के अनुसार सूत्र में ऋण पद का अर्थ आवश्यक है। इस सूत्र में 'सप्तमी शौण्डैः' सूत्र से 'सप्तमी' पद की अनुवृत्ति आती है। 'सप्तम्यन्ततदादि कृत्य-प्रत्ययान्त तदादि समर्थ सुबन्ततदादि के साथ आवश्यक अर्थ में विकल्प से समस्त होता हुआ तत्पुरुषसंज्ञक हो' यही सूत्रार्थ है। उदाहरण है—मासे देयम् ऋणम्।

'मासे देयम्' इस विग्रह में मास ङि देय सु का प्रस्तुत सूत्र से समास हुआ। समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लुक् प्राप्त था, किन्तु 'तत्पुरुषे कृति बहुलम्' सूत्र से सप्तमी विभक्ति का अलुक् होने पर 'मासेदेयम्' सिद्ध होता है। इसी प्रकार 'पूर्वाह्णे गेयं साम' आदि प्रयोग भी सिद्ध होंगे।

(३६) संज्ञायाम् (सूत्र)—इस सूत्र में 'सप्तमी शौण्डैः' सूत्र से 'सप्तमी' पद की अनुवृत्ति होती है। 'सह सुपा' सूत्र से 'सुपा' की भी अनुवृत्ति होती है। दोनों ही स्थानों में तदन्तविधि होने पर—'सप्तम्यन्ततदादि सुबन्ततदादि के साथ संज्ञा अर्थ में विकल्प से समस्त होता हुआ तत्पुरुषसंज्ञक हो' यही सूत्रार्थ फलित होता है। उदाहरण है—अरण्ये तिलकाः।

'अरण्ये तिलकाः' इस विग्रह में अरण्य ङि तिलक जस् का 'संज्ञायाम्' सूत्र से तत्पुरुष समास हुआ। समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लुक् प्राप्त था, किन्तु 'हलदन्तात् सप्तम्याः संज्ञायाम्' सूत्र से सप्तमी का अलुक् होने के कारण 'अरण्ये तिलकाः' रूप सिद्ध होता है।

इसी प्रकार 'वने कसेरुकाः' इस विग्रह में 'वनेकसेरुकाः' सिद्ध होता है।

(३७) क्तेनाहोरात्रावयवाः (सूत्र)—इस सूत्र में 'सप्तमी शौण्डैः' सूत्र से 'सप्तमी' पद की अनुवृत्ति होती है। तदन्त-तदादिविधि करने पर—'अहन् तथा रात्रि का अवयवभूत जो सप्तम्यन्त तदादि है, वह क्त-प्रत्ययान्त-तदादि समर्थ सुबन्ततदादि के साथ विकल्प से समस्त होता हुआ तत्पुरुषसंज्ञक हो' यही सूत्रार्थ फलित होता है। उदाहरण है—पूर्वाह्णकृतम् आदि।

'पूर्वाह्णे कृतम्' इस विग्रह में पूर्वाह्ण ङि तथा कृत सु का प्रस्तुत सूत्र से समास हुआ। समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लुक् तथा विभक्ति कार्य करने पर 'पूर्वाह्णकृतम्' सिद्ध होता है। इसी प्रकार 'अपररात्रे कृतम्' इस

विग्रह में इसी सूत्र से अपररात्र ङि तथा कृत सु का समास करने पर 'अपररात्रकृतम्' सिद्ध होता है। दोनों ही प्रयोगों में क्रमशः पूर्वाह्णे तथा अपररात्रे अहन् एवं रात्रि का अवयवभूत सप्तम्यन्ततदादि है तथा कृतम् क्त-प्रत्ययान्ततदादि समर्थ सुबन्ततदादि है, इसलिए समास हुआ है।

(३८) **तत्र (सूत्र)**—इस सूत्र में 'सप्तमी शौण्डैः' सूत्र से 'सप्तमी' पद की तथा 'क्तेनाहोरात्रावयवाः' से 'क्तेन' पद की अनुवृत्ति आती है। 'तत्र' यह सप्तम्यन्त तदादि क्त-प्रत्ययान्त तदादि समर्थ सुबन्त तदादि के साथ समस्त हो' यही सूत्रार्थ है। उदाहरण है–तत्र भुक्तम्। 'तत्र भुक्तम्' इस विग्रह में तत्र इस सप्तम्यन्त तदादि शब्दस्वरूप का भुक्तम् इस क्त-प्रत्ययान्ततदादि समर्थ सुबन्त तदादि के साथ 'तत्र' सूत्र से समास होने पर तथा अन्य कार्य होने पर 'तत्रभुक्तम्' सिद्ध होता है।

(३९) **पात्रे समिताः, गेहे शूरः, गेहे नर्दी (प्रयोग)**—'पात्रे समिताः' इस विग्रह में पात्र ङि समित जस् का 'सप्तम्यन्ततदादि क्त-प्रत्ययान्ततदादि समर्थ सुबन्ततदादि के साथ निन्दा अर्थ में समस्त हो' एतदर्थक 'क्षेपे' इस सूत्र से समास हुआ। समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लुक् प्राप्त था, किन्तु 'पात्रे समितादयश्च' सूत्र से निपातन होने के कारण सप्तमी विभक्ति का अलुक् होने से 'पात्रेसमिताः' सिद्ध होता है। पात्रे समिताः का अर्थ है—भोजनकाल में ही सङ्गत अर्थात् ठीक न कि काम में। इस प्रकार यहाँ निन्दा अर्थ प्रतीत हो रहा है। इसी प्रकार 'गेहे शूरः' अर्थात् घर में ही बहादुर तथा 'गेहे नर्दी' अर्थात् घर में ही गरजने वाला। इन दोनों ही स्थलों में चूँकि निन्दा अर्थ प्रतीत हो रहा है, अतः गेह ङि शूर सु का तथा गेह ङि नर्दी सु का 'क्षेपे' से समास तथा 'पात्रे समितादयश्च' से निपातनात् सप्तमी का अलुक् होने के कारण क्रमशः 'गेहेशूरः' एवं 'गेहेनर्दी' प्रयोग भी सिद्ध होंगे।

(४०) **दिक्संख्ये संज्ञायाम् (सूत्र)**—इस सूत्र में 'पूर्वकालैकसर्वजरत्पुराणनवकेवलाः समानाधिकरणेन' सूत्र से 'समानाधिकरणेन' का अधिकार आता है। 'दिग्वाचक एवं संख्यावाचक सुबन्ततदादि समानाधिकरण समर्थ सुबन्ततदादि के साथ संज्ञा अर्थ की प्रतीति होने पर विकल्प से समस्त हो' यही सूत्रार्थ है। उदाहरण है—पूर्वेषुकामशमी आदि।

'पूर्वस्मिन् पूर्वे वा इषुकामशमी' इस विग्रह में पूर्व ङि इषुकामशमी सु का प्रस्तुत सूत्र से समास हुआ। समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लुक् एवं

विभक्ति कार्य करने पर 'पूर्वेषुकामशमी' सिद्ध होता है। यहाँ पर पूर्व शब्द संख्यावाचक है तथा पूर्वेषुकामशमी यह देशविशेष की संज्ञा है। इसी प्रकार 'सप्त च ते ऋषयः' इस विग्रह में सप्त इस कालवाचक सुबन्त का ऋषयः के साथ समास हुआ है। 'सप्तर्षि' संज्ञावाचक शब्द है।

'विशेषणं विशेष्येण बहुलम्' सूत्र से भी ऐसे स्थलों में समास सिद्ध था, किन्तु यह सूत्र इस नियम का विधान करता है कि 'संज्ञा में ही दिग्वाचक एवं संख्यावाचक शब्द समस्त हों' इसीलिए 'उत्तराश्च ते वृक्षाः, पञ्चब्राह्मणाः आदि स्थलों में संज्ञा की प्रतीति न होने से समास नहीं होता है।

(४१) तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च (सूत्र)—इस सूत्र में 'दिक्संख्ये संज्ञायाम्' सूत्र से 'दिक्संख्ये' पद की अनुवृत्ति आती है। 'तद्धितार्थ के विषय में, उत्तरपद के परे, समाहारवाच्य में दिग्वाचक तथा सङ्ख्यावाचक का विकल्प से समास हो' यही सूत्रार्थ है। उदाहरण है—पौर्वशालः।

'पूर्वस्यां शालायां भवः' इस विग्रह में पूर्वा ङि शाला ङि का तद्धित ञ-प्रत्यय के विषय में प्रस्तुत सूत्र से समास हुआ। समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लुक् हो गया। 'दिग्वाचक पूर्वपदक समास में भवादि अर्थ में ञ-प्रत्यय हो संज्ञाभिन्नार्थ में' एतदर्थक 'दिक्पूर्वपदादसंज्ञायां ञः' सूत्र से ञप्रत्यय हुआ। अनुबन्धलोप हुआ। 'सर्वनाम को वृत्तिमात्र (कृत्तद्धितसमासैकशेषादि) में पुंवद्भाव हो' इस अर्थवाले 'सर्वनाम्नो वृत्तिमात्रे पुंवद्भावः' इस वार्तिक से पूर्वा को पुंवद्भाव हो गया। शाला के आकार का 'यस्येति च' से लोप हो गया। 'तद्धित में ञित् तथा णित् प्रत्ययों के परे रहते अचों में आदि अच् को वृद्धि हो' एतदर्थक 'तद्धितेष्वचामादेः' सूत्र से पूर्वशाल के अन्तर्गत पू के ऊकार को वृद्धि हो गया। औकार तथा सु विभक्ति एवं रुत्व-विसर्ग करने पर 'पौर्वशालः' प्रयोग सिद्ध हो गया। यह पौर्वशालः तद्धितार्थ विषय का उदाहरण है। उत्तरपद के परे रहते समास का उदाहरण है—पूर्वशालाप्रियः।

'पूर्वा शाला प्रिया यस्य' इस त्रिपद बहुव्रीहि में प्रिया रूप शब्द के परे रहते पूर्वा तथा शाला का इसी सूत्र से तत्पुरुष समास हुआ, शाला के आकार को अन्तोदात्तत्व, 'सर्वनाम्नो वृत्तिमात्रे पुंवद्भावः' से पूर्वा को पुंवद्भाव तथा अन्य कार्य करने पर 'पूर्वशालाप्रियः' सिद्ध होता है।

(४२) षाण्मातुरः (प्रयोग)—'षण्णां मातृणामपत्यं षाण्मातुरः'। यहाँ पर षण् आम् मातृ आम् से अपत्यार्थ में अण् प्रत्यय हुआ। 'तद्धितार्थो-

तरपदसमाहारे च' सूत्र से तद्धितार्थ के विषय में तत्पुरुष समास हुआ। तद्धितान्तत्वात् प्रातिपदिक संज्ञा तथा 'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः' से सुप् विभक्ति का लोप हो गया। षष् मातृ अ इस स्थिति में अण्-प्रत्ययविधायक 'मातुरुत्संख्यासम्भद्रपूर्वायाः' इसी सूत्र से मातृ शब्द के ऋकार को उकार, रपरत्व, आदि अच् की 'तद्धितेष्वचामादेः' से वृद्धि, षकार को जश्त्व हो गया डकार, 'वा पदान्तस्य' से डकार को णकार तथा सु विभक्ति आने पर 'षाण्मातुरः' प्रयोग सिद्ध हुआ।

(४३) **पञ्चगवधनः (प्रयोग)**—'पञ्च गावो धनं यस्य' इस त्रिपद बहुव्रीहि में 'तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च' सूत्र से अवान्तरपदों को विकल्प से तत्पुरुष समास प्राप्त था, किन्तु 'द्वन्द्वतत्पुरुषयोरुत्तरपदे नित्यसमासवचनम्' से नित्य समास हुआ। समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लुक् हो गया। 'गोशब्दान्त तत्पुरुष से समासान्त टच् प्रत्यय हो तद्धित के लुक् नहीं होने पर' इस अर्थवाले 'गोरतद्धितलुकि' सूत्र से गोशब्दान्त तत्पुरुष को समासान्त टच् प्रत्यय हो गया। अनुबन्धलोप, अवादेश, समुदाय को समासत्वात् प्रातिपदिक संज्ञा, सु विभक्ति, रुत्व एवं विसर्ग करने पर 'पञ्चगवधनः' प्रयोग सिद्ध हुआ।

(४४) **पञ्चगवम् (प्रयोग)**—'पञ्चानां गवां समाहारः' इस विग्रह में 'तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च' सूत्र से समाहार में तत्पुरुषसमास हुआ। प्रातिपदिकावयव सुप् का लुक् हो गया। 'गोरतद्धितलुकि' से समासान्त टच् प्रत्यय हुआ, अनुबन्ध लोप तथा अवादेश हो गया। 'संख्यापूर्वो द्विगुः' सूत्र से द्विगु संज्ञा तथा 'द्विग्वर्थसमाहार एकवत् अर्थात् एकत्वसंख्याविशिष्टवत् हो' इस अर्थवाले 'द्विगुरेकवचनम्' सूत्र से एकवद्भाव हुआ। 'समाहार में द्विगु एवं द्वन्द्व नपुंसक हो' एतदर्थक 'स नपुंसकम्' सूत्र से नपुंसकत्व, सु विभक्ति, अमादेश तथा पूर्वरूप करने पर 'पञ्चगवम्' प्रयोग सिद्ध होता है।

(४५) **कुत्सितानि कुत्सनैः (सूत्र)**—'कुत्स्यमान अर्थात् निन्द्यमानवाचक सुबन्ततदादि कुत्सन अर्थात् निन्दावाचक समानाधिकरण समर्थ सुबन्ततदादि के साथ समस्त हो' यही सूत्रार्थ है। उदाहरण है—वैयाकरणखसूचिः, मीमांसकदुर्दुरूढः आदि।

'वैयाकरणश्चासौ खसूचिश्च' इस विग्रह में प्रकृत सूत्र से समास हुआ। समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लुक्। सु विभक्ति, रुत्व एवं विसर्ग करने पर 'वैयाकरणखसूचिः' रूप सिद्ध होता है। इसी प्रकार 'मीमांसकश्चासौ दुर्दु-

रुटश्च' इस विग्रह में 'मीमांसकदुर्दुरूढः' रूप बनता है। दोनों ही प्रयोगों में क्रमशः वैयाकरण तथा मीमांसक निन्द्यमान तथा खसूचि एवं दुर्दुरूढ कुत्सन अर्थात् निन्दावाचक हैं। प्रक्रिया को पूछने पर जो वैयाकरण आकाश की ओर दिखाने या देखने लगे, ऐसे वैयाकरणों के लिए वैयाकरणखसूचि का प्रयोग किया जाता है। इसी प्रकार मीमांसा को पढ़कर भी उसे नहीं समझने के कारण जो दुराक्षेप करता हो, ऐसे मीमांसकों को मीमांसकदुर्दुरूढ कहा जाता है।

(४६) **उपमानानि सामान्यवचनैः** (सूत्र)—'उपमानवाचक प्रकृतिक सुबन्त सामान्यवाचक प्रकृतिक समर्थ सुबन्त के साथ विकल्प से समस्त हो तथा वह तत्पुरुष हो' यही सूत्रार्थ है। जिससे उपमा दी जाती है, उसे 'उपमान' कहा जाता है तथा जिसकी उपमा दी जाती है, उसे 'उपमेय' या 'उपमित' कहा जाता है। उपमान तथा उपमेय में रहनेवाले साधारणधर्म से विशिष्ट को ही सूत्र में कहे गये सामान्यवचन शब्द से जानना चाहिए। उदाहरण है—घनश्यामः।

'घन इव श्यामः' इस विग्रह में घनः चूंकि उपमानवाचक सुबन्त है तथा श्यामः सामान्यवाचक अर्थात् उपमानोपमेय में रहनेवाले श्यामत्व रूप साधारण धर्म से विशिष्ट का वाचक सुबन्त है, अतः इस सूत्र से समास हुआ है। यहाँ पर घन शब्द घनसदृश में लाक्षणिक है, इसीलिए लौकिक विग्रहवाक्य में 'इव' का प्रयोग किया गया है। समासोपरान्त प्रातिपदिकावयव सुप् का लुक् तथा विभक्ति कार्य करने पर 'घनश्यामः' रूप निष्पन्न होता है। उपमानवाचक शब्द का पूर्वप्रयोग हो इसीलिए यह सूत्र है, चूंकि 'विशेष्यं विशेषेण बहुलम्' से भी यहाँ समास हो सकता था तथा वैसी स्थिति में घन एवं श्याम, इन दोनों के गुणवचन होने के कारण पूर्वप्रयोग अपनी इच्छा पर निर्भर करता, जैसे कि खञ्जकुब्जः, कुब्जखञ्जः' आदि में होता है। इसीलिए इस सूत्र का विधान किया गया।

(४७) **उपमितं व्याघ्रादिभिः सामान्याप्रयोगे** (सूत्र)—'उपमित अर्थात् उपमेयवाचक प्रकृतिक सुबन्त व्याघ्रादि प्रकृतिक समर्थ सुबन्त के साथ समस्त होकर तत्पुरुषसंज्ञक हो यदि सामान्यवाचक शब्द का प्रयोग नहीं होता हो' यही सूत्रार्थ है। उदाहरण है—पुरुषव्याघ्रः।

'व्याघ्र इव पुरुषः अर्थात् व्याघ्रसदृशः पुरुषः' इस अर्थ में चूंकि व्याघ्रशब्द उपमानवाचक है तथा पुरुषशब्द उपमित अर्थात् उपमेयवाचक है, अतः पुरुषः

व्याघ्रः के साथ प्रस्तुत सूत्र से समस्त हुआ है। यहाँ पर सामान्यवाचक शूरादि शब्द का प्रयोग नहीं है, इसलिए इससे समास हुआ है। पुरुष शब्द उपमित होने के साथ-साथ विशेष्यवाचक भी है। अतः उसी का पूर्वप्रयोग किया गया है। विभक्तिकार्य करने पर 'पुरुषव्याघ्रः' प्रयोग सिद्ध होता है।

जहाँ सामान्यधर्मविशिष्टवाचक शब्द का प्रयोग होता है, वहाँ समास नहीं होता है। जैसे—पुरुषो व्याघ्र इव शूरः। यहाँ पर शूरशब्द सामान्यधर्मविशिष्टवाचक शब्द के रूप में प्रयुक्त है। अतः यहाँ समास नहीं होगा।

(४८) **विशेषणं विशेष्येण बहुलम्** (सूत्र)—भेदन करनेवाले को 'भेदक' कहा जाता है। भेदक शब्द से विशेषण अभिप्रेत है। 'भेदक सुबन्ततदादि भेद्य समर्थ सुबन्ततदादि अर्थात् विशेष्यवाचक समर्थ सुबन्ततदादि समानाधिकरण के साथ विकल्प से समस्त होते हुए तत्पुरुषसंज्ञक हो' यही सूत्रार्थ है। जैसे—नीलोत्पलम्।

'नीलम् उत्पलम्' इस विग्रह में नील सु यह भेदक अर्थात् विशेषणवाचक शब्दप्रकृतिक सुबन्ततदादि उत्पल सु इस भेद्य अर्थात् विशेष्यवाचक शब्दप्रकृतिक समानाधिकरण सुबन्ततदादि के साथ प्रस्तुत सूत्र से समस्त हुआ। समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लुक् तथा समुदाय से विभक्ति, उसे नपुंसकत्वात् अमादेश एवं पूर्वरूप करने पर 'नीलोत्पलम्' सिद्ध होता है।

(४९) **क्तेन नञ्विशिष्टेनानञ्** (सूत्र)—'नञ्विशिष्ट क्त-प्रत्ययान्त तदादि समर्थ सुबन्त तदादि के साथ नञ्रहित क्त-प्रत्ययान्त तदादि सुबन्ततदादि समस्त होते हुए तत्पुरुषसंज्ञक हो' यही सूत्रार्थ है। उदाहरण है—कृताकृतम्।

'कृतं च तत् अकृतम्' इस विग्रह में नञ् रहित कृत सु यह क्त प्रत्ययान्त तदादि सुबन्त तदादि अकृत सु इस नञ्विशिष्ट क्त-प्रत्ययान्ततदादि समर्थ सुबन्ततदादि के साथ प्रस्तुत सूत्र से समस्त हुआ। समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लुक् हो गया। सूत्र में 'अनञ्' इस प्रकार प्रथमान्तत्वेन निर्दिष्ट होने के कारण कृत का पूर्वप्रयोग हुआ। विभक्ति कार्य करने पर 'कृताकृतम्' प्रयोग सिद्ध हुआ।

(५०) **शाकपार्थिवः, देवब्राह्मणः** (प्रयोग)—'शाकप्रियः पार्थिवः' इस विग्रह में 'विशेषणं विशेष्येण बहुलम्' से समानाधिकरण तत्पुरुष अर्थात् कर्मधारय समास हुआ। 'शाकपार्थिवादिगणपठित पदों के उत्तरपदों का लोप हो' इस अर्थवाले 'शाकपार्थिवादीनामुत्तरपदलोपश्च' इस वार्तिक से प्रिय

रूप उत्तरपद का लोप करने पर तथा विभक्ति कार्य करने पर 'शाकपार्थिवः' प्रयोग सिद्ध होता है। इसी प्रकार 'देवप्रियः ब्राह्मणः' इस विग्रह में कर्मधारय समास करने के बाद प्रिय शब्द का लोप एवं विभक्ति कार्य करने पर 'देव-ब्राह्मणः' प्रयोग सिद्ध होता है।

(५१) **सन्महत्परमोत्तमोत्कृष्टाः पूज्यमानैः (सूत्र)**—'सत्, महत्, परम, उत्तम, तथा उत्कृष्ट प्रकृतिक सुबन्त पूज्यमानबोधक प्रकृतिक समर्थ सुबन्त के साथ विकल्प से समस्त हो' यही सूत्रार्थ है। उदाहरण है—सद्वैद्यः। संश्चासौ वैद्यः' इस विग्रह से सद् सु वैद्य सु का प्रस्तुत सूत्र से समास हुआ। 'सन्' इस शब्द से ही वैद्य की पूज्यता स्वतः प्रतीत होती है समासोपरान्त प्रातिपदिकावयव सुप् का लुक् तथा विभक्तिकार्य करने पर 'सद्वैद्यः' प्रयोग सिद्ध हुआ।

(५२) **महावैयाकरणः (प्रयोग)**—'महांश्चासौ वैयाकरणः' इस विग्रह में 'सन्महत्परमोत्तमोत्कृष्टाः पूज्यमानैः' सूत्र से समास हुआ। समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लुक् हो गया। 'आन्महतः समानाधिकरणजातीययोः' सूत्र से महत् शब्द को आकारान्तादेश हुआ। प्रातिपदिकादि करने पर 'महावैयाकरणः' प्रयोग सिद्ध हुआ।

(५३) **किं क्षेपे (सूत्र)**—'क्षेप अर्थात् निन्दा अर्थ में 'किम्' यह अव्यय समानाधिकरण समर्थ सुबन्त के साथ समस्त हो तथा वह तत्पुरुष हो' यही सूत्रार्थ है। उदाहरण है—किंराजा। 'कुत्सितो राजा' इस अर्थ में कुत्सित अर्थ का सूचक किम् यह अव्यय राजा इस समानाधिकरण समर्थ सुबन्त के साथ निन्दा अर्थ में समस्त हुआ है। समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लुक् तथा पुनः विभक्ति कार्य करने पर 'किंराजा' प्रयोग सिद्ध होता है।

(५४) **युवखलतिः, युवजरती (प्रयोग)**—'युवा खलतिः' इस विग्रह में 'युवन् प्रकृतिक सुबन्त खलति, पलित वलिन एवं जरती प्रकृतिक समानाधिकरण समर्थ सुबन्त के साथ समस्त हो' एतदर्थक 'युवा खलतिपलितवलिनजरतीभिः' सूत्र से समानाधिकरण तत्पुरुष अर्थात् कर्मधारय समास हुआ। समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लुक् हो गया। अन्तर्वर्तिनी विभक्ति का आश्रय लेकर युवन् के नकार का लोप हो गया तथा विभक्तिकार्य करने पर 'युवखलतिः' प्रयोग सिद्ध हुआ। 'प्रातिपदिकग्रहणे लिङ्गविशिष्टस्यापि ग्रहणम्' इस परिभाषा के अनुसार प्रस्तुत सूत्र से युवति शब्द का खलतादि समानाधिकरण सुबन्त के साथ समास होने के कारण 'युवतिः खलतिः' इस

विग्रह में समास होगा। 'पुंवत्कर्मधारयजातीयदेशीयेषु' सूत्र से युवति को पुंवद्भाव होने पर तथा अन्य कार्य करने पर भी 'युवखलतिः' प्रयोग सिद्ध होगा। इसी प्रकार 'युवतिः जरती' इस विग्रह में युवजरती रूप निष्पन्न होगा।

(५५) कृष्णसारङ्गः (प्रयोग)—'कृष्णश्चासौ सारङ्गश्च' इस विग्रह में 'वर्णवाचक शब्द प्रकृतिक सुबन्त वर्णवाचक प्रकृतिक समानाधिकरण समर्थ सुबन्त के साथ विकल्प से समस्त होता हुआ तत्पुरुषसंज्ञक हो' इस अर्थवाले 'वर्णो वर्णेन' इस सूत्र से समानाधिकरण तत्पुरुष अर्थात् कर्मधारय समास हुआ। समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लुक्, सु विभक्ति, रुत्व एवं विसर्ग करने पर 'कृष्णसारङ्गः' प्रयोग सिद्ध हुआ।

(५६) कडाराः कर्मधारये (सूत्र)—'कडारादि शब्द कर्मधारय समास में विकल्प से पूर्वप्रयुक्त होने चाहिए' यही सूत्रार्थ है। 'कडाराश्चासौ जैमिनिः' इस विग्रह में 'विशेषणं विशेष्येण बहुलम्' सूत्र से समानाधिकरण तत्पुरुष अर्थात् कर्मधारय समास हुआ। समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लोप हो गया। 'कडाराः कर्मधारये' सूत्र में प्रथमान्तत्वेन निर्दिष्ट होने के कारण कडार शब्द का उपसर्जनत्वात् नित्य पूर्वप्रयोग प्राप्त था, किन्तु 'कडाराः कर्मधारये' सूत्र से उसके वैकल्पिक पूर्वप्रयोग का विधान होने से प्रातिपदिकादि कार्य करने पर 'कडारजैमिनिः' तथा 'जैमिनिकडारः' ये दोनों ही रूप निष्पन्न होते हैं।

(५७) मयूरव्यंसकादयश्च (सूत्र)—इस सूत्र से मयूरव्यंसक आदि शब्दों का निपातन किया जाता है। व्यंसक का अर्थ धूर्त होता है। 'मयूरो व्यंसकः' इस विग्रह में 'विशेषणं विशेष्येण बहुलम्' से कर्मधारय समास हुआ। समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लुक् हो गया। विशेषणत्वात् व्यंसक शब्द का पूर्वप्रयोग प्राप्त था, किन्तु इस सूत्र द्वारा मयूरव्यंसक ऐसा निपातन होने के कारण मयूर शब्द का ही पूर्वनिपात हुआ। विभक्तिकार्य करने पर 'मयूरव्यंसकः' प्रयोग सिद्ध हुआ।

(५८) आख्यातमाख्यातेन क्रियासातत्ये (गणसूत्र)—'क्रिया का सातत्य अर्थात् निरन्तर होना जहाँ प्रतीत हो, वहाँ आख्यात अर्थात् तिङन्त समर्थ आख्यात के साथ विकल्प से समस्त हो तथा वह समास तत्पुरुषसंज्ञक हो' यही इस गणसूत्र का अर्थ है। उदाहरण है—अश्नीतपिबता, पचतभृज्जता, खादतमोदता आदि।

'अश्नीत पिबत इत्येवं सततं यत्राभिधीयते सा अश्नीतपिबता क्रिया।' यहाँ पर प्रस्तुत गणसूत्र से समास हुआ। समासत्वात् प्रातिपदिकसंज्ञा, टाप्, अनुबन्ध लोप, सु विभक्ति एवं उसका लोप करने पर 'अश्नीतपिबता' प्रयोग सिद्ध होता है। इसी प्रकार 'पचतभृज्जता' आदि भी सिद्ध होंगे।

(५९) **ईषदकृता (सूत्र)**—'ईषत् शब्द अकृदन्त प्रकृतिक समर्थ सुबन्त के साथ समस्त हो तथा वह तत्पुरुषसंज्ञक हो' यही सूत्रार्थ है। उदाहरण है—ईषत्पिङ्गलः। यहाँ पर ईषत् शब्द पिङ्गलः इस अकृदन्त प्रकृतिक सुबन्त के साथ समस्त हुआ। अन्य कार्य करने पर 'ईषत्पिङ्गलः' यह सिद्ध हुआ।

'गुणवचन, अर्थात् गुणवाचक प्रकृतिक समर्थ सुबन्त के साथ भी ईषत् शब्द समस्त हो' इस अर्थवाले 'ईषद्गुणवचनेनेति वाच्यम्' इस वार्तिक के कारण 'ईषद् रक्तम्' इस विग्रह में ईषत् शब्द रक्त सु इस गुणवाचक प्रकृतिक समर्थ सुबन्त के साथ समस्त हुआ तथा अन्य कार्य करने पर 'ईषद्रक्तम्' प्रयोग सिद्ध हुआ है।

(६०) **अब्राह्मण (प्रयोग)**—'न ब्राह्मणः' इस विग्रह में 'नञ् सुबन्त-तदादि के साथ विकल्प से समस्त हो' एतदर्थक 'नञ्' इस सूत्र से समास हुआ। समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लुक् हो गया। 'उत्तरपद के परे नञ् के नकार का लोप हो' एतदर्थक 'नलोपो नञः' सूत्र से नञ् के नकार का लोप हो गया। समुदाय से सु विभक्ति, रुत्व एवं विसर्ग करने पर 'अब्राह्मणः' प्रयोग सिद्ध हुआ।

(६१) **अनश्वः (प्रयोग)**—'न अश्वः' इस विग्रह में 'नञ्' सूत्र से समास हुआ। समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लुक् हो गया। 'नलोपो नञः' सूत्र से नञ् के नकार का लोप हो गया। 'लुप्तनकारक नञ् से पर अजादि उत्तरपद को नुट् का आगम हो' 'एतदर्थक 'तस्मान्नुडचि' इस सूत्र से अश्व के अकार को नुट् का आगम हुआ, जो टित्वात् आद्यावयवरूप में व्यवस्थित हुआ। विभक्ति कार्य करने पर 'अनश्वः' प्रयोग सिद्ध हुआ।

'न एकधा' आदि स्थलों में निषेधार्थक न शब्द का 'सह सुपा' से समास करने पर 'नैकधा' प्रयोग सिद्ध होता है।

(६२) कुगतिप्रादयः (सूत्र)—इस सूत्र में 'सह सुपा' से 'सुपा' की अनुवृत्ति होती है। 'कु, गतिसंज्ञक तथा प्र आदि समर्थ सुबन्ततदादि के साथ समस्त होते हुए तत्पुरुषसंज्ञक हो' यही सूत्रार्थ है। उदाहरण है—कुपुरुषः।

'कुत्सितः पुरुषः' इस विग्रह में प्रस्तुत सूत्र से कुत्सितार्थ का सूचक कु पुरुष सु इस समर्थ सुबन्त के साथ समस्त हुआ। समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लोप तथा विभक्ति कार्य करने पर 'कुपुरुषः' प्रयोग सिद्ध हुआ।

(६३) ऊर्यादिच्विडाचश्च (सूत्र)—'ऊर्यादिगणपठितशब्द, च्वि-प्रत्ययान्त तदादि तथा डाच्-प्रत्ययान्त तदादि क्रियावाचक शब्द के योग में गति-संज्ञक हो' यही सूत्रार्थ है। ऊरी, उररी आदि ऊर्यादिगणपठित शब्द हैं। इस सूत्र से गतिसंज्ञा करने का फल है 'ऊरीकृत्य' आदि प्रयोगों की सिद्धि।

करणक्रियावाचक कृ-धात्वर्थ के योग में ऊरी को प्रकृत सूत्र से गतिसंज्ञा होने पर 'कुगतिप्रादयः' सूत्र से समास हुआ। 'समासेऽनञ्पूर्वे क्त्वो ल्यप्' से क्त्वा को ल्यप्, तुक् करने पर ऊरीकृत्य होता है। समुदाय से आये हुए सुप् का क्त्वातोसुन्कसुनः' से अव्ययत्वात् 'अव्ययादाप्सुपः' से लोप हो जाने पर 'ऊरीकृत्य' सिद्ध होता है। इसी प्रकार 'उररीकृत्य' भी सिद्ध होगा। ये दोनों शब्द स्वीकारार्थक हैं।

'अशुक्लं शुक्लं कृत्वा' इस विग्रह में शुक्ल शब्द से अभूततद्भाव अर्थ में च्वि प्रत्यय होता है। 'अस्य च्वौ' से शुक्ल के अकार को ईत्व, कृधात्वर्थ के योग में 'ऊर्यादिच्विडाचश्च' सूत्र से गतिसंज्ञा, 'कुगतिप्रादयः' से समास, क्त्वा को ल्यप्, तुक्, समुदाय को अव्ययत्व होने से 'अव्ययादाप्सुपः' से सु का लोप होने पर 'शुक्लीकृत्य' प्रयोग सिद्ध होता है। इसी प्रकार डाच्-प्रत्ययान्त का उदाहरण है—पटपटाकृत्य।

(६४) सत्कृत्य (प्रयोग)—'आदरं कृत्वा' इस अर्थ में कृधात्वर्थ के योग में सत् इस अव्यय को 'आदरानादरयोः सदसती' सूत्र से गतिसंज्ञा हुई। 'कुगतिप्रादयः' से समास हुआ। क्त्वा को ल्यप्, तुक् का आगम, 'क्त्वातोसुन्-कसुनः' से सत्कृत्य को अव्ययत्व होने से समुदाय से आयी हुई सु विभक्ति का 'अव्ययादाप्सुपः' से लोप होने पर 'सत्कृत्य' सिद्ध होता है।

इसी प्रकार 'अनादरं कृत्वा' इस अर्थ में 'असत्' इस अव्यय को गति-संज्ञा एवं समासादि होने पर 'असत्कृत्य' रूप सिद्ध होता है।

(६५) **अलङ्कृत्य (प्रयोग)**—'भूषण अर्थ में 'अलम्' यह अव्यय-क्रिया के योग में गतिसंज्ञक हो' एतदर्थक 'भूषणेऽलम्' सूत्र से अलम् को गतिसंज्ञा हुई। 'कुगतिप्रादयः' से समास हुआ। क्त्वा को ल्यप्, समुदाय को अव्ययत्व होने से 'अव्ययादाप्सुपः' से सु विभक्ति का लोप करने पर 'अलङ्कृत्य' प्रयोग सिद्ध होता है। 'कटकादिधारणेन परिष्कारं कृत्वा' यही 'अलङ्कृत्य का शब्दार्थ है। सूत्र में यदि 'भूषणे' ऐसा नहीं कहा जाता तो जहाँ भूषण से भिन्न अर्थ में अलम् अव्यय है, वहाँ भी समास हो जाता। जैसे—अलं कृत्वौदनं गतः। यहाँ पर प्रयुक्त अलम् यह अव्यय पर्याप्त अर्थ का सूचक है।

(६६) **पुरस्कृत्य (प्रयोग)**—'पुरस्' इस अव्यय को क्रियायोग में गतिसंज्ञा हो' एतदर्थक 'पुरोऽव्ययम्' सूत्र से कृ धात्वर्थ के योग में पुरस् को गतिसंज्ञा हुई। 'कुगतिप्रादयः' से समास हुआ। क्त्वा को ल्यप्, तुक् का आगम; समुदाय से आयी हुई सु विभक्ति का अव्ययत्वात् लोप होने पर 'पुरस्कृत्य' सिद्ध होता है।

(६७) **अस्तङ्गत्य (प्रयोग)**—'यहाँ पर 'अस्तम्' यह मकारान्त अव्यय गतिसंज्ञक हो क्रियायोग में' एतदर्थक 'अस्तं च' सूत्र से 'अस्तम्' इस अव्यय को गम्-धात्वर्थ के योग में गतिसंज्ञा हुई। 'कुगतिप्रादयः' से समास हुआ। क्त्वा को ल्यप्, तुक्, समुदाय से आयी हुई सु विभक्ति का 'अव्ययादाप्सुपः' से लोप करने पर अस्तङ्गत्य सिद्ध होता है।

(६८) **तिरोभूय, तिरस्कृत्य, तिरः कृत्वा (प्रयोग)**—'अन्तर्धान अर्थ में वर्तमान 'तिरस्' यह अव्यय क्रियायोग में गतिसंज्ञक हो' इस अर्थवाले 'तिरोऽन्तर्धौ' सूत्र से तिरस् को गतिसंज्ञा हुई। 'कुगतिप्रादयः' सूत्र से समास, क्त्वा को ल्यप्, समुदाय को अव्ययत्व तथा आयी हुई सु विभक्ति का 'अव्ययादाप्सुपः' से लोप करने पर 'तिरोभूय' प्रयोग सिद्ध होता है।

'कृञ् धात्वर्थ के योग में तिरस् को विकल्प से गतिसंज्ञा हो' एतदर्थक 'विभाषा कृञि' सूत्र से तिरस् को वैकल्पिक गतिसंज्ञा होने के कारण गतिसंज्ञापक्ष में समास होगा तथा क्त्वा को ल्यप्, तुक्, विभक्तिकार्य आदि होने पर 'तिरस्कृत्य' सिद्ध होगा। गतिसंज्ञाभाव पक्ष में 'तिरः कृत्वा' ऐसा ही रूप सिद्ध होगा।

(६९) **कुम्भकारः (प्रयोग)**—'कुम्भं करोति' इस विग्रह में कृ धातु से 'कर्मण्यण्' सूत्र से अण् प्रत्यय करने पर जब कार शब्द बन जायेगा तभी

सुबुत्पत्ति से पूर्व ही 'तत्रोपपदं सप्तमीस्थम्' सूत्र से कुम्भम् को उपपदसंज्ञा होने के कारण 'उपपद सुबन्त अतिङन्ततदादि समर्थ के साथ नित्यरूप से समस्त हो' एतदर्थक 'उपपदमतिङ्' सूत्र से उपपद समास होगा। समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लुक् तथा समुदाय से सु विभक्ति, रुत्व एवं विसर्ग करने पर 'कुम्भकारः' प्रयोग सिद्ध होगा।

(७०) द्व्यङ्गुलम्, निरङ्गुलम् (प्रयोग)—'द्वे अङ्गुली प्रमाणमस्य' इस विग्रह में 'प्रमाणे द्वयसज्दघ्नञ्मात्रचः' से कोई एक प्रत्यय हुआ। 'तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च' सूत्र से समास हुआ। 'संख्यापूर्वो द्विगुः' से द्विगुत्व होने के कारण 'द्विगोर्नित्यम्' से प्रमाणार्थ में आये हुए प्रत्यय का लुक् हो गया। यण् हो गया। 'संख्या और अव्यय आदि में हो तथा अङ्गुलिशब्द अन्त में हो, जिस तत्पुरुष का उस तत्पुरुष से समासान्त अच् प्रत्यय हो' इस अर्थवाले 'तत्पुरुषस्याङ्गुलेः सङ्ख्याव्ययादेः' सूत्र से समासान्तान्त अच् प्रत्यय हुआ। भत्वात् इकार का लोप हो गया। सु विभक्ति, अमादेश, पूर्वरूप करने पर 'द्व्यङ्गुलम्' प्रयोग सिद्ध हुआ।

इसी प्रकार 'निर्गतमङ्गुलिभ्यः' इस विग्रह में 'निरादयः क्रान्ताद्यर्थे पञ्चम्या' इस वार्त्तिक से समास करने पर तथा प्रस्तुत सूत्र से समासान्त अच् प्रत्यय करने पर एवं अन्य कार्य करने पर 'निरङ्गुलम्' प्रयोग सिद्ध होता है।

(७१) अहोरात्रः (प्रयोग)—'अहश्च रात्रिश्च' इस विग्रह में अहन् सु रात्रि सु का 'चार्थे द्वन्द्वः' से द्वन्द्वसमास हुआ। समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लुक् हो गया। अहन् के नकार को रुत्व, उसे उत्व तथा गुण हुआ। 'अहन् सर्व, एकदेश अर्थात् पूर्व पर आदि, संख्यात, पुण्य एतत्पूर्वक रात्रि-शब्दान्ततत्पुरुष को समासान्त अच् प्रत्यय हो, चकारात् संख्या एवं अव्ययपूर्वक रात्रिशब्दान्त तत्पुरुष से भी समासान्त अच् प्रत्यय हो' एतदर्थक 'अहःसर्वैक-देशसङ्ख्यातपुण्याच्च रात्रेः' सूत्र से समासान्त अच् प्रत्यय हुआ। भत्वात् 'यस्येति च' से इकार लोप तथा विभक्ति कार्य करने पर 'अहोरात्रः' प्रयोग सिद्ध होता है। यहाँ पर 'रात्राह्नाहाः पुंसि' से पुंस्त्व का विधान होने पर उक्त रूप की सिद्धि होती है।

(७२) द्विरात्रम् (प्रयोग)—'द्वयोः रात्र्योः समाहारः' इस विग्रह में 'तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च' सूत्र से समाहार में तत्पुरुष समास हुआ। समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लुक् हो गया। 'अहःसर्वैकदेशसङ्ख्या-

तपुण्याच्च रात्रेः' सूत्र से चकारात् संख्यावाचकादि रात्रिशब्दान्त तत्पुरुष से समासान्त अच् प्रत्यय हुआ। भत्वात् 'यस्येति च' से इकार का लोप तथा विभक्ति कार्य करने पर 'द्विरात्रम्' प्रयोग सिद्ध हुआ। यहाँ पर 'सङ्ख्यापूर्वो द्विगुः' से द्विगु संज्ञा 'द्विगुरेकवचनम्' से एकवद्भाव, 'संख्यापूर्वं रात्रं क्लीबम्' इस वार्त्तिक से नपुंसकत्व का विधान होने से 'द्विरात्रम्' ऐसा सिद्ध होता है।

(७३) **अतिरात्रः (प्रयोग)**—'अतिक्रान्तो रात्रिम्' इस विग्रह में 'अत्यादयः क्रान्ताद्यर्थे द्वितीयया' इस वार्तिक से समास हुआ। समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लुक् हुआ। 'अहःसर्वैकदेशसङ्ख्यातपुण्याच्च रात्रेः' सूत्र से समासान्त अच् प्रत्यय। इकार का भत्वात् लोप हो गया। 'रात्राह्नाहाः पुंसि' से पुंस्त्व का विधान होने के कारण सु विभक्ति आने पर 'अतिरात्रः' प्रयोग सिद्ध होता है।

(७४) **परमराजः (प्रयोग)**—'परमश्चासौ राजा च' इस विग्रह में 'विशेषणं विशेष्येण बहुलम्' सूत्र से समानाधिकरण तत्पुरुष अर्थात् कर्मधारय समास हुआ। समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लोप हो गया। 'राजन्, अहन् एवं सखिशब्दान्त तत्पुरुष से समासान्त टच् हो' एतदर्थक 'राजाहः-सखिभ्यष्टच्' इस सूत्र से समासान्त टच् प्रत्यय हुआ। अनुबन्ध लोप, 'नस्त-द्धिते' से टिलोप, सु विभक्ति, रुत्व एवं विसर्ग करने पर 'परमराजः' प्रयोग सिद्ध हुआ।

(७५) **अतिराजः, कृष्णसखः (प्रयोग)**—'अतिक्रान्तो राजानम्' इस विग्रह में 'अत्यादयः क्रान्ताद्यर्थे द्वितीयया' इस वार्तिक से समास हुआ। समास-त्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लुक् हो गया। 'राजाहःसखिभ्यष्टच्' से समासान्त टच्, अनुबन्ध लोप, राजन् के टि का लोप तथा विभक्तिकार्य करने पर 'अतिराजः' सिद्ध होता है।

'कृष्णस्य सखा' इस विग्रह में षष्ठीतत्पुरुष समास, प्रातिपदिकावयव सुप् का लुक्, 'राजाहःसखिभ्यष्टच्' से समासान्त टच्, अनुबन्धलोप 'यस्येति च' से सखि के इकार का लोप तथा विभक्ति कार्य करने पर 'कृष्णसखः' सिद्ध होता है।

(७६) **सर्वाह्णः, पूर्वाह्णः (प्रयोग)**—'सर्वश्च तदहः' इस विग्रह में समानाधिकरण तत्पुरुष अर्थात् कर्मधारय समास हुआ। समासत्वात् प्राति-पदिकावयव सुप् का लुक् हो गया। 'राजाहःसखिभ्यष्टच्' सूत्र से समासा-

न्त टच् प्रत्यय हुआ। सर्व आदि अर्थात् 'अहःसर्वैकदेशसङ्ख्यातपुण्याच्च रात्रेः' सूत्र में उक्त सर्व, एकदेश, सङ्ख्यात तथा पुण्य से पर अहन् को अ आदेश हो' एतदर्थक 'अह्नोऽह्न एतेभ्यः' सूत्र से अहन् को अह्न आदेश गया। भत्वात् टि का लोप, तथा 'अह्नोऽदन्तात्' सूत्र से णत्व करने पर 'रात्राह्नाहाः पुंसि' से पुंस्त्व का विधान होने पर सु विभक्ति को रुत्व-विस होने से 'सर्वाह्णः' प्रयोग सिद्ध होता है।

इसी प्रकार 'पूर्वञ्च तदहः' या 'अह्नः पूर्वम्' इस विग्रह में क्रमशः समानाधिकरणतत्पुरुष या षष्ठीतत्पुरुष समास करने पर, 'राजाहःसखिभ्यष्टच्' से समासान्त टच्, अनुबन्धलोप, 'अह्नोऽह्न एतेभ्यः' से अहन् को अह्न आदेश टिलोप, 'अह्नोऽदन्तात्' से णत्व, 'रात्राह्नाहाः पुंसि' से पुंस्त्व का विधान, विभक्ति, रुत्व-विसर्ग करने पर 'पूर्वाह्णः' प्रयोग सिद्ध होगा।

(७७) **द्व्यहः, त्र्यहः (प्रयोग)**—'द्वयोरह्नोः समाहारः' इस विग्रह में 'तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च' सूत्र से समाहार अर्थ में तत्पुरुष समा हुआ, जिसे 'सङ्ख्यापूर्वो द्विगुः' से द्विगुसंज्ञा हुई। समासत्वात् प्रातिपदिका वयव सुप् का लुक् हो गया। 'राजाहःसखिभ्यष्टच्' से समासान्त ट प्रत्यय हुआ। अनुबन्धलोप हो गया 'समाहार में वर्त्तमान सङ्ख्यादि अह को अह्न आदेश न हो' एतदर्थक 'न सङ्ख्यादेः समाहारे' सूत्र से 'अह्नोऽ एतेभ्यः' सूत्र से प्राप्त अह्नादेश का निषेध किया गया। यण् तथा 'रात्राह्नाह पुंसि से पुंस्त्व, टिलोप, विभक्त्यादि कार्य करने पर 'द्व्यहः' प्रयोग सिद्ध होत है। इसी प्रकार 'त्रयाणामह्नां समाहारः' इस विग्रह में 'त्र्यहः' सिद्ध होता है

(७८) **अश्वोरसम् (प्रयोग)**—'अश्वानामुर इव' इस विग्रह में षष्ठी तत्पुरुष समास हुआ। समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लुक् हो गया। 'अग्रवाचक अर्थात् प्रधानवाचक जो उरस् शब्द है, तदन्ततत्पुरुष से समा सान्त टच् प्रत्यय हो' एतदर्थक 'अग्राख्यायामुरसः' सूत्र से समासान्त टच् हुआ। अनुबन्धलोप हुआ। 'परवल्लिङ्गं द्वन्द्वतत्पुरुषयोः' सूत्र से परवल्लिङ्ग का विधान होने से उरस् शब्द के अनुसार नपुंसकत्व होने के कारण सु विभक्ति को अमादेश हुआ। पूर्वरूप करने पर 'अश्वोरसम्' प्रयोग सिद्ध हुआ।

(७९) **ग्रामतक्षः, कौटतक्षः (प्रयोग)**—'ग्रामस्य तक्षा' इस विग्रह में ग्राम ङस् तक्षन् सु का 'षष्ठी' सूत्र से तत्पुरुष समास हुआ। समासत्वात् प्राति पदिकावयव सुप् का लोप हो गया। 'ग्राम एवं कौट शब्द से पर जो तक्ष

शब्द तदन्त तत्पुरुष से समासान्त टच् प्रत्यय हो' एतदर्थक 'ग्रामकौटाभ्यां च तक्ष्णः' सूत्र से समासान्त टच् प्रत्यय हुआ। अनुबन्ध लोप, भत्वात् तक्षन् टि अर्थात् अन् भाग का लोप हो गया। विभक्ति कार्य करने पर 'ग्रामतक्षः' सिद्ध हुआ। इसी प्रकार 'कुट्यां भवः कौटः, स चासौ तक्षा च' इस विग्रह में 'कौटतक्षः' प्रयोग सिद्ध होगा।

(८०) अतिश्वो वराहः (प्रयोग)—'अत्यन्तं श्वा अथवा श्वानमतिक्रान्तः' इस विग्रह में 'अत्यादयः क्रान्ताद्यर्थे द्वितीयया' इस वार्त्तिक से अति श्वन् अम् का समास हुआ। समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लोप हो गया। 'अति शब्द से पर जो श्वन् शब्द तदन्त तत्पुरुष से समासान्त टच् प्रत्यय हो' इस अर्थवाले 'अतेः शुनः' सूत्र से समासान्त टच् प्रत्यय हुआ। अनुबन्धलोप हुआ। टिलोप, सु विभक्ति रुत्व एवं विसर्ग करने पर 'अतिश्वः' प्रयोग सिद्ध हुआ। स्त्रीत्वविवक्षा में टित्वात् ङीप् करने पर 'अतिश्वी' रूप भी सिद्ध होता है।

(८१) आकर्षश्वः (प्रयोग)–'आकर्षः श्वा इव' इस विग्रह में 'उपमितं व्याघ्रादिभिः सामान्याप्रयोगे' से समास हुआ। समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लोप हो गया। 'अप्राणिविषयक उपमानवाची से पर जो श्वन्शब्द तदन्त तत्पुरुष से समासान्त टच् प्रत्यय हो' एतदर्थक 'उपमानादप्राणिषु' सूत्र से समासान्त टच् प्रत्यय हुआ। अनुबन्ध लोप, टिलोप सुविभक्ति, रुत्व एवं विसर्ग करने पर 'आकर्षश्वः' प्रयोग सिद्ध हुआ। सूत्र में 'अप्राणिषु' कहने के कारण 'वानरः श्वा इव' इस विग्रह में समास करने पर समासान्त टच् प्रत्यय नहीं होने से 'वानरश्वा' ऐसा प्रयोग होता है, क्योंकि वानरशब्द प्राणिविषयक उपमानवाची शब्द के रूप में यहाँ पर प्रयुक्त हुआ है।

(८२) द्विनावम्, त्रिनावम् (प्रयोग)—'द्वयोर्नावोः समाहारः' इस विग्रह में 'तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च' से तत्पुरुष समास हुआ, जिसे 'संख्यापूर्वो द्विगुः' से द्विगुसंज्ञा हुई। समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लोप हो गया। 'नौ शब्दान्त द्विगु से समासान्त टच् प्रत्यय हो तद्धित का लुक् न होने पर' एतदर्थक 'नावो द्विगोः' सूत्र से समासान्त टच् प्रत्यय हुआ। अनुबन्धलोप, आवादेश, सु विभक्ति, अमादेश तथा पूर्वरूप करने पर 'द्विनावम्' सिद्ध हुआ। 'स नपुंसकम्' से नपुंसकत्व होने के कारण ही नपुंसक में 'द्विनावम्' ऐसा रूप

सिद्ध होता है। इसी प्रकार 'तिसृणां नावां समाहारः' इस विग्रह में 'त्रिनाव
प्रयोग सिद्ध होगा।

(८३) **द्व्यञ्जलम्, द्व्यञ्जलि (प्रयोग)**—'द्वयोरञ्जलयोः समाहारः' इ
विग्रह में 'तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च' सूत्र से तत्पुरुष समास हुआ, जि
'सङ्ख्यापूर्वो द्विगुः' से द्विगुसंज्ञा हुई। समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् क
लुक् हो गया। यण् हो गया। 'द्वि तथा त्रिशब्द से पर जो अञ्जलि शब्द तदन
तत्पुरुष से समासान्त टच् प्रत्यय हो' एतदर्थक 'द्वित्रिभ्यामञ्जलेः' सूत्र से सम
सान्त टच् प्रत्यय हुआ। अनुबन्ध लोप, 'यस्येति च' से इकार का लोप
नपुंसकम्' से नपुंसकत्वात् सु को अमादेशादि करने पर 'द्व्यञ्जलम्' प्रयो
सिद्ध हुआ। टच् के अभावपक्ष मे 'द्व्यञ्जलि सिद्ध होता है।

(८४) **महाब्रह्मः, महाब्रह्मा (प्रयोग)**—'महांश्चासौ ब्रह्मा च' इ
विग्रह में महत् सु ब्रह्मन् सु का 'सन्महत्परमोत्तमोत्कृष्टाः पूज्यमानैः' सूत्र
समानाधिकरण तत्पुरुष अर्थात् कर्मधारय समास हुआ। समासत्वात् प्राति
पदिकावयव सुप् का लुक् हुआ। 'कु' एवं 'महत्' शब्द से पर जो ब्रह्मन्शब
तदन्त तत्पुरुष से समासान्त टच् प्रत्यय हो विकल्प से' एतदर्थक 'कुमहद्भ्या
मन्यतरस्याम्' इस सूत्र से समासान्त टच् प्रत्यय हुआ। अनुबन्ध लोप हो गया
'आन्महतः समानाधिकरणजातीययोः' सूत्र से महत् शब्द को आकारान्तादे
हो गया। टि लोप, सु विभक्ति, रुत्व एवं विसर्ग करने पर 'महाब्रह्मः' प्रयो
सिद्ध हुआ। टच् के अभावपक्ष में 'महाब्रह्मा' प्रयोग होता है। इसी प्रका
'महादेवः, महाजातीयः' आदि प्रयोग सिद्ध होंगे। 10893

(८५) **द्वादश (प्रयोग)**—'द्वौ च दश च' इस विग्रह में द्वन्द्वसमा
हुआ अथवा 'द्व्यधिका दश' इस विग्रह से शाकपार्थिवादित्वात् अधिक शब्द क
लोप हुआ। समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लुक् हो गया। 'द्वि ए
अष्टन् शब्द को सङ्ख्यावाचक शब्द के परे आत्व हो बहुव्रीहि में तथा 'अशीति
पद के परे छोड़ कर' एतदर्थक 'द्व्यष्टनः संख्यायामबहुव्रीह्यशीत्योः' सूत्र से
शब्द को आकारान्तादेश हो गया तथा विभक्तिकार्य करने पर 'द्वादश' प्रयो
सिद्ध हुआ।

इसी प्रकार 'द्वाविंशतिः, अष्टादश, अष्टाविंशतिः' आदि प्रयोग सि
होंगे। सूत्र में अबहुव्रीहि तथा अशीति शब्दों का ग्रहण करने के कारण ह

द्वित्राः इस बहुव्रीहि में तथा द्व्यशीतिः यहाँ पर अशीतिशब्द के परे द्विशब्द को आत्व नहीं होता है।

(८६) त्रयोदश (प्रयोग)—'त्रयश्च दश च' इस विग्रह में द्वन्द्व समास हुआ अथवा 'त्र्यधिका दश' इस विग्रह में शाकपार्थिवादित्वात् अधिक शब्द का लोप होते हुए समास हुआ। समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लुक् हो गया।। 'संख्यावाचक शब्द के परे त्रि शब्द को त्रयस् आदेश हो बहुव्रीहि में तथा अशीति पद के परे को छोड़कर' एतदर्थक 'त्रेस्त्रयः' सूत्र से त्रि को त्रयस् आदेश हो गया। सकार को रुत्व; 'हशि च' से उत्व, गुण तथा विभक्तिकार्य करने पर 'त्रयोदश' रूप सिद्ध हुआ। इसी प्रकार 'त्रयोविंशतिः' आदि सिद्ध होगा। बहुव्रीहि में त्रिदशः तथा अशीति शब्द के परे रहते 'त्र्यशीतिः' रूप ही बनेंगे, जहाँ त्रि को त्रयस् आदेश नहीं होगा।

(८७) विभाषा चत्वारिंशत्प्रभृतौ सर्वेषाम् (सूत्र)—इस सूत्र में 'द्व्यष्टनः' तथा 'त्रेः' की अनुवृत्ति आती है। 'द्वि, अष्टन् एवं त्रिशब्द को पूर्वोक्त आदेश चत्वारिंशत् प्रभृति सङ्ख्यावाचक शब्दों के परे विकल्प से हो' यही सूत्रार्थ है। प्रभृति पद से पञ्चाशत्, षष्टि, सप्तति तथा नवति समझना चाहिए। पूर्वोक्त आदेश से अभिप्राय है कि 'द्व्यष्टनः सङ्ख्यायामबहुव्रीह्यशीत्योः' से द्वि तथा अष्टन् शब्द को आत्व तथा 'त्रेस्त्रयः' से त्रि शब्द को त्रयसादेश होता है वही।

उदाहरण है—द्विचत्वारिंशत्—द्वाचत्वारिंशत्। 'द्वौ च चत्वारिंशच्च' इस विग्रह में द्वन्द्व समास, समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लुक्, प्रस्तुत सूत्र से द्विशब्द को चत्वारिंशत् शब्द के परे रहते वैकल्पिक आत्व का विधान तथा विभक्तिकार्य करने पर क्रमशः 'द्विचत्वारिंशत्' तथा 'द्वाचत्वारिंशत्' ये दोनों ही रूप सिद्ध होंगे। इसी प्रकार 'अष्टचत्वारिंशत्' तथा 'अष्टाचत्वारिंशत्' भी सिद्ध होंगे। त्रि शब्द को वैकल्पिक त्रयसादेश होने के कारण 'त्रिचत्वारिंशत्' तथा 'त्रयश्चत्वारिंशत्' ये दोनों रूप बनेंगे।

(८८) परवल्लिङ्गं द्वन्द्वतत्पुरुषयोः (सूत्र)—'द्वन्द्व एवं तत्पुरुष समास में परपद के लिङ्ग के समान लिङ्ग हो' यही सूत्रार्थ है। उदाहरण है—कुक्कुटमयूर्याविमे तथा मयूरीकुक्कुटाविमौ। प्रथम प्रयोग में 'कुक्कुटश्च मयूरी च' इस विग्रह में द्वन्द्व समास करने पर तथा समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लुक् करने पर विभक्ति कार्य करने के समय प्रस्तुत सूत्र से मयूरी इस परपद के लिङ्ग के समान ही लिङ्ग का विधान किया गया है अर्थात्

स्त्रीलिङ्ग का विधान किया गया है। तद्बोधक 'इदम्' इस सर्वनाम का प्रयोग भी 'इमे' इस रूप में स्त्रीलिङ्ग में ही किया गया है। दूसरे प्रयोग में 'मयूरी च कुक्कुटश्च' ऐसा विग्रह करने पर तथा समासादि करने के बाद परपद के रूप में स्थित कुक्कुट के लिङ्ग के अनुसार लिङ्ग का विधान होने से अर्थात् पुंल्लिङ्ग का विधान होने से 'मयूरी कुक्कुटाविमौ' रूप निष्पन्न होता है।

(८९) छाया बाहुल्ये (सूत्र)—'छाया शब्दान्त तत्पुरुष नपुंसक हो पूर्वपदार्थगतबाहुल्य यदि प्रतीत हो रहा हो तो' यही सूत्रार्थ है। उदाहरण है—इक्षुच्छायम्। 'इक्षूणां छाया' इस विग्रह में इक्षु ङस् छाया सु का 'षष्ठी' सूत्र से तत्पुरुष समास हुआ। समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लुक् हो गया। 'छाया बाहुल्ये' सूत्र से इक्षुच्छाया को नपुंसकत्व होने के कारण 'ह्रस्वो नपुंसके प्रातिपदिकस्य' से ह्रस्व, सु विभक्ति, अमादेश तथा पूर्वरूप करने पर 'इक्षुच्छायम्' सिद्ध होता है। 'छे च' से तुक्, श्चुत्व आदि भी किया जाता है। यहाँ पर इक्षु रूप पूर्वपदार्थ का बाहुल्य प्रतीत हो रहा है। इक्षु की बहुलता के कारण ही छाया है। इस सूत्र में 'स नपुंसकम्' से नपुंसकम् की अनुवृत्ति होती है।

(९०) सभाराजाऽमनुष्यपूर्वा (सूत्र)—इस सूत्र में 'स नपुंसकम्' सूत्र से 'नपुंसकम्' की अनुवृत्ति होती है। 'राजपर्यायपूर्वक अमनुष्यवाचकपूर्वक सभाशब्दान्त तत्पुरुष नपुंसक हो' यही सूत्रार्थ है। उदाहरण है—इनसभम्, ईश्वरसभम् आदि। 'इनस्य सभा' इस विग्रह से इन ङस् सभा सु का 'षष्ठी' सूत्र से तत्पुरुष समास हुआ। समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लुक् हो गया। इन सभा शब्द का इन शब्द चूंकि राजपर्यायवाची है, अतः सभा-शब्दान्त तथा राजपर्यायवाची एवं अमनुष्यपूर्वक इस तत्पुरुष को नपुंसकत्व हो गया। नपुंसकह्रस्व, सु को अम्, पूर्वरूप करने पर 'इनसभम्' प्रयोग सिद्ध हुआ। इसी प्रकार 'ईश्वरसभम्' भी होगा। सूत्र में अमनुष्य शब्द रक्षः, पिशाचादि में रूढ है, अतः 'रक्षःसभम्, पिशाचसभम्' भी सिद्ध होगा।

(९१) अशाला च (सूत्र)—इस सूत्र में 'स नपुंसकम्' से 'नपुंसकम्' की अनुवृत्ति आती है। 'गृहरूप अर्थ से भिन्न समूह अर्थ जहाँ प्रतीत हो, ऐसा जो शाला शब्द तदन्ततत्पुरुष नपुंसक हो' यही सूत्रार्थ है। जैसे—स्त्रीसभम्। 'स्त्रीणां सभा अर्थात् समूहः' इस विग्रह में समासादि करने पर प्रस्तुत सूत्र से नपुंसकत्व, ह्रस्व एवं विभक्तिकार्य करने पर 'स्त्रीसभम्' रूप सिद्ध होगा।

जहाँ गृहरूप अर्थ प्रतीत हो, वहाँ 'स्त्रीसभा' ही होगा। इसीलिए 'धर्मसभा, धर्मशाला' आदि स्थलों में नपुंसकत्व नहीं होगा।

(९२) **विभाषा सेनासुराच्छायाशालानिशानाम्** (सूत्र)—इस सूत्र में भी 'स नपुंसकम्' से नपुंसकम् का अनुवर्त्तन होता है। 'सेना, सुरा, छाया, शाला तथा निशा, ये शब्द है जिस तत्पुरुष के अन्त में वह विकल्प से नपुंसक हो' यही सूत्रार्थ है। जैसे—ब्राह्मणसेनम्—ब्राह्मणसेना।

'ब्राह्मणानां सेना' इस विग्रह में ब्राह्मण आम् सेना सु का 'षष्ठी' सूत्र से तत्पुरुष समास हुआ। समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लुक् हो गया। प्रस्तुत सूत्र से नपुंसकत्व होने के कारण 'ह्रस्वो नपुंसके प्रातिपदिकस्य' से ह्रस्व, सु विभक्ति, उसे अमादेश तथा पूर्वरूप करने पर 'ब्राह्मणसेनम्' रूप सिद्ध हुआ। नपुंसकत्व के अभाव पक्ष में 'ब्राह्मणसेना' रूप सिद्ध होता है। इसी प्रकार 'यवसुरम्—यवसुरा, कुड्यच्छायम्—कुड्यच्छाया, गोशालम्—गोशाला, श्वनिशम्—श्वनिशा' आदि प्रयोग सिद्ध होंगे।

इस प्रकार तत्पुरुषसमास-प्रकरण समाप्त हुआ।

बहुव्रीहिसमास-प्रकरण

(१) **अनेकमन्यपदार्थे (सूत्र)**—इस सूत्र में 'शेषो बहुव्रीहिः' सूत्र से 'बहुव्रीहिः' पद की अनुवृत्ति आती है। 'अनेक प्रथमान्त, समासघटक पद से भिन्न अर्थ में वर्त्तमान हों तो विकल्प से समस्त होते हुए वह बहुव्रीहिसंज्ञक हो' यही सूत्रार्थ है। उदाहरण है—प्राप्तोदको ग्रामः आदि।

'प्राप्तम् उदकं यं सः प्राप्तोदको ग्रामः'। यहाँ पर प्राप्तम् एवं उदकम् का प्रस्तुत सूत्र से बहुव्रीहि समास हुआ है, चूंकि वे भिन्न अर्थ में वर्त्तमान हैं। समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लुक् तथा समुदाय से सु विभक्ति, रुत्व-विसर्ग करने पर 'प्राप्तोदकः' सिद्ध होता है। इसी प्रकार 'ऊढो रथो येन' इस विग्रह में ऊढरथः, 'उपहृतः पशुः यस्मै' इस विग्रह में उपहृतपशुः, 'उद्धृतः ओदनः यस्याः' इस विग्रह में उद्धृतौदना, 'पीतम् अम्बरं यस्य' इस विग्रह में पीताम्बरः तथा 'वीराः पुरुषाः यस्मिन्' इस विग्रह में वीरपुरुषकः ऐसा प्रयोग सिद्ध होता है। वीरपुरुषकः में 'शेषाद्विभाषा' से कप् प्रत्यय हुआ है।

(२) **प्रपतितपर्णः, प्रपर्णः (प्रयोग)**—'प्रकृष्टं पतितम्' इस विग्रह में 'प्रादयो गताद्यर्थे प्रथमया' इस वार्त्तिक से समास करने पर 'प्रपतितम्' सिद्ध होगा। पुनः 'प्रपतितं पर्णं यस्मात्' इस विग्रह में 'प्र आदि से पर जो धातुज-प्रकृतिक प्रथमान्त उसका अन्य प्रथमान्त के साथ बहुव्रीहि समास हो तथा प्रादि से पर धातुज उत्तरपद का विकल्प से लोप हो' एतदर्थक 'प्रादिभ्यो धातुजस्य वाच्यो वा चोत्तरपदलोपः' इस वार्त्तिक से प्रपतित सु पर्ण सु का बहुव्रीहि समास हुआ। समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लोप हो गया तथा इसी वार्तिक से 'पतित' का लोप हो गया। समुदाय से सु विभक्ति, रुत्व एवं विसर्ग करने पर 'प्रपर्णः' प्रयोग सिद्ध होगा। धातुज उत्तरपद के लोपाभावपक्ष में 'प्रपतितपर्णः' रूप सिद्ध होगा।

(३) **अविद्यमानपुत्रः—अपुत्रः (प्रयोग)**—'न विद्यमानः' इस विग्रह में 'नञ्' सूत्र से समास तथा 'नलोपो नञः' से नञ् के नकार का लोप करने पर 'अविद्यमानः' रूप सिद्ध होगा। 'अविद्यमानः पुत्रो यस्य' इस विग्रह में 'नञ् से पर अस्त्यर्थक सुबन्तों का अन्य प्रथमान्त के साथ बहुव्रीहि हो तथा

अस्त्यर्थवाची उत्तरपद का विकल्प से लोप हो' एतदर्थक 'नञोऽस्त्यर्थानां वाच्यो वा चोत्तरपदलोपः' इस वार्त्तिक से अविद्यमान सु पुत्र सु का बहुव्रीहि समास हुआ। तथा अस्त्यर्थक विद्यमान शब्द का लोप हो गया। समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लुक् एवं समुदाय से सु विभक्ति, उसे रुत्व तथा विसर्ग करने पर 'अपुत्रः' प्रयोग सिद्ध हुआ। लोपाभावपक्ष में 'अविद्यमान-पुत्रः' होगा।

(४) **कण्ठेकालः (प्रयोग)**—'कण्ठे तिष्ठति' इस विग्रह में कण्ठ-उपपदपूर्वक स्था धातु से 'सुपिस्थः' से क प्रत्यय करने पर तथा उपपदसमास करने पर 'कण्ठेस्थः' सिद्ध होता है। 'कण्ठेस्थः कालो यस्य' इस विग्रह में सप्तम्यन्त तथा उपमानवाचक पद हो पूर्वपद जिसका उसका अन्य पद के साथ बहुव्रीहि समास हो तथा उत्तरपद का लोप हो' एतदर्थक 'सप्तम्युपमानपूर्वपदस्योत्तरपदलोपश्च' से कण्ठेस्थ सु तथा काल सु का बहुव्रीहि समास एवं स्थ इस उत्तरपद का लोप हो गया। समासत्वात्प्रातिपदिकावयव सुप् का लुक् 'अमूर्धमस्तकात्स्वाङ्गादकामे' से कण्ठशब्द से विहित सप्तमी विभक्ति का अलुक् होने से तथा विभक्ति कार्य करने से 'कण्ठेकालः' सिद्ध हुआ।

(५) **उष्ट्रमुखः (प्रयोग)**—'उष्ट्रस्य मुखमिव' इस विग्रह में उष्ट्र ङस् मुख सु का 'षष्ठी' सूत्र से तत्पुरुष समास हुआ। यहाँ पर मुख शब्द मुखसदृश में चूँकि लाक्षणिक है, इसीलिए विग्रह में इव शब्द का प्रयोग किया गया है। 'उष्ट्रमुखमिव मुखं यस्य' इस विग्रह में 'सप्तम्यन्त तथा उपमानवाचक पद हो पूर्वपद जिसका उसका अन्य पद के साथ बहुव्रीहि समास हो तथा उत्तरपद का लोप हो' एतदर्थक 'सप्तम्युपमानपूर्वपदस्योत्तरपदलोपश्च' से उष्ट्रमुख सु तथा मुख सु का बहुव्रीहि समास हुआ तथा मुख शब्द का लोप हो गया। उष्ट्रमुख शब्द का पूर्वपद उष्ट्रशब्द चूँकि उपमानवाचक है, इसलिए उष्ट्रमुख शब्द का मुख शब्द के साथ समास हुआ तथा उष्ट्रमुख के मुखशब्दरूप उत्तरपद का लोप हुआ। प्रातिपदिकावयव सुप् का लुक् तथा समुदाय से सु विभक्ति, उसे रुत्व एवं विसर्ग करने पर 'उष्ट्रमुखः' प्रयोग सिद्ध होता है।

(६) **केशचूडः, सुवर्णालङ्कारः (प्रयोग)**—'केशानां सङ्घातश्चूडा यस्य' इस विग्रह में 'सङ्घातविकारषष्ठ्याश्चोत्तरपदलोपश्च' से बहुव्रीहि समास हुआ तथा सङ्घात रूप उत्तरपद का लोप हो गया। समासत्वात् प्रातिपदिका-

वयव सुप् का लुक्, चूडा के आकार को ह्रस्व तथा विभक्तिकार्य करने पर 'केशचूड:' रूप सिद्ध होगा।

इसी प्रकार 'सुवर्णस्य विकार: अलङ्कारो यस्य' इस विग्रह में 'सङ्घात-विकारषष्ठ्याश्चोत्तरपदलोपश्च' से बहुव्रीहि समास तथा विकार शब्द का लोप हो गया। प्रातिपदिकावयव सुप् का लुक् तथा विभक्ति कार्य करने पर 'सुवर्णालङ्कार:' प्रयोग सिद्ध होता है।

(७) अस्तिक्षीरा गौ: (प्रयोग)—'अस्ति क्षीरं यस्याम्' इस विग्रह में चूँकि अस्ति तिङन्त है, अत: प्रथमान्तत्व के अभाव में उसका क्षीर सु के साथ समास संभव नहीं था, इसीलिए 'अस्तिक्षीरादयश्च' ऐसा कहा गया है अर्थात् अस्तिक्षीरा आदि को बहुव्रीहि में गिना जाना चाहिए। इस नियम के अनुसार अस्ति इस तिङन्त का भी क्षीर सु के साथ बहुव्रीहि समास करने पर तथा गौ का विशेषण होने के कारण टाप् एवं विभक्ति कार्य करने पर 'अस्तिक्षीरा गौ:' सिद्ध होता है।

वस्तुतस्तु 'अस्तिक्षीरा' को सिद्ध करने के लिए 'अस्तिक्षीरादयश्च' यह अलग से नियम करना व्यर्थ है, क्योंकि अस्ति स्वयं विद्यमानार्थक अव्यय है, जिससे प्रथमा में सु विभक्ति लाकर उसका अव्ययत्वात् 'अव्ययादाप्सुप:' से लुक् हो जाता है। समास करते समय प्रत्ययलक्षण परिभाषा से उसका प्रथमान्तत्व उपपादित कर क्षीरम् के साथ उसका समास किया जा सकता है। अत: इसके लिए 'अस्तिक्षीरादयश्च' अलग से कहना आवश्यक नहीं है। इसी अभिप्राय से भाष्यकार ने भी कहा है—'अस्तिक्षीरादिवचनं न वाव्ययत्वात्'।

(८) **स्त्रिया: पुंवद्भाषितपुंस्कादनूङ् समानाधिकरणे स्त्रियामपूरणी-प्रियादिषु (सूत्र)**—'भाषितपुंस्क से पर ऊङ् का अभाव हो जिसमें, उस प्रकार के स्त्रीवाचक शब्द को पुंवाचक शब्द के समान रूप हो, समानाधिकरण स्त्रीलिङ्ग उत्तरपद के परे, पूरणी तथा प्रियादि के परे नहीं हो' यही सूत्रार्थ है। उदाहरण है—चित्रगु: आदि।

(९) **चित्रगु: (प्रयोग)**—'चित्रा गावो यस्य' इस विग्रह में चित्रा जस् गो जस् का 'अनेकमन्यपदार्थे' सूत्र से बहुव्रीहि समास हुआ। समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लोप हो गया। चित्रा शब्द को गोरूप समानाधि-करण स्त्रीलिङ्ग उत्तरपद के परे 'स्त्रिया: पुंवद्भाषित०' सूत्र से पुंवद्भाव

हुआ। पुंवद्भाव होने के कारण चित्रा के आकार को ह्रस्वरूप हो जाने से चित्र ऐसा रूप स्थिर हो गया। 'अनेकमन्यपदार्थे' सूत्र में 'अनेकम्' इस प्रथमान्तत्वेन निर्दिष्ट होने के कारण अथवा 'एकविभक्ति चापूर्वनिपाते' से विग्रह में नियतविभक्तिक होने के कारण गो शब्द को उपसर्जनत्व होने से 'गोस्त्रियोरुपसर्जनस्य' से ह्रस्व हो गया, उकार तथा समुदाय से सु विभक्ति, रुत्व एवं विसर्ग करने पर 'चित्रगुः' रूप सिद्ध हुआ।

(१०) **रूपवद्भार्यः (प्रयोग)**—'रूपवती भार्या यस्य' इस विग्रह में 'अनेकमन्यपदार्थे' सूत्र से रूपवती सु भार्या सु का बहुव्रीहि समास हुआ। समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लोप हो गया। 'स्त्रियाः पुंवत्०' सूत्र से रूपवती शब्द को पुंवद्भाव तथा भार्या के आकार को 'गोस्त्रियोरुपसर्जनस्य' से ह्रस्व हो गया। समुदाय से सु विभक्ति, उसे रुत्व तथा विसर्ग करने पर 'रूपवद्भार्यः' प्रयोग सिद्ध होता है।

(११) **चित्राजरद्गुः, जरच्चित्रगुः (प्रयोग)**—'चित्रा जरती गौर्यस्य' इस विग्रह में 'अनेकमन्यपदार्थे' सूत्र से बहुव्रीहि समास हुआ। समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लोप हो गया। 'स्त्रियाः पुंवत्०' सूत्र से गोरूप समानाधिकरण स्त्रीलिङ्ग उत्तरपद के परे रहते जरती शब्द को पुंवद्भाव हुआ। गो शब्द को उपसर्जनह्रस्व तथा विभक्तिकार्य करने पर 'चित्राजरद्गुः' रूप सिद्ध हुआ।

'चित्रा च जरती च चित्राजरत्यौ; चित्राजरत्यौ गावौ यस्य' इस प्रकार द्वन्द्वगर्भक बहुव्रीहि करने पर भी गो शब्द के परे रहते जरती शब्द को पुंवद्भाव करने पर 'चित्राजरद्गुः' रूप ही सिद्ध होगा।

'जरती चासौ चित्रा च' इस विग्रह में कर्मधारय करने के बाद 'जरच्चित्रा' रूप निष्पन्न होता है। यहाँ पर 'पुंवत्कर्मधारयजातीयदेशीयेषु' से जरती शब्द को पुंवद्भाव होने के कारण ङीप् प्रत्यय की निवृत्ति हो जाती है। पुनः 'जरच्चित्रा गौर्यस्य' ऐसा विग्रह करने पर गो शब्द के परे पुंवद्भाव का विधान होने पर 'जरच्चित्रगुः' ऐसा रूप सिद्ध होता है।

मतान्तर के अनुसार 'चित्रा जरती गौर्यस्य' इस विग्रह में 'अनेकमन्यपदार्थे' से बहुव्रीहि समास करने के बाद इस त्रिपद बहुव्रीहि में 'स्त्रियाः पुंवत्०' सूत्र से न तो जरती शब्द को पुंवद्भाव होगा और नही चित्रा शब्द को ही। चित्रा शब्द को इसलिए पुंवद्भाव नहीं होगा चूँकि जरती शब्द बीच

में उपस्थित है तथा जरती शब्द को इसलिए पुंवद्भाव नहीं होगा चूंकि चित्रा शब्द के बाद उपस्थित होने के कारण उसमें पूर्वपदत्व का अभाव है। 'स्त्रियाः पुंवत्०' सूत्र में उत्तरपद शब्द समास के अन्तिमावयव में तथा पूर्वपद शब्द समास के प्रथमावयव में चूंकि रूढ है, इसलिए इस त्रिपद बहुव्रीहि में न तो चित्रा शब्द को ही पुंवद्भाव होगा और न ही जरती शब्द को ही।

वस्तुतस्तु पूर्वपद से यहाँ समास का प्रथमावयव नहीं समझना चाहिए। पूर्वपद से तात्पर्य है उस पद का जो समास के अन्तिम पद से पूर्व का पद हो। 'आनङ्ऋतो द्वन्द्वे' सूत्र के उदाहरण—'होतृपोतृनेष्टोद्गातारः' में यह स्पष्ट हो जाता है। उक्त सूत्र का अर्थ है कि 'द्वन्द्व समास में ऋदन्तों अर्थात् ऋकारान्त शब्दों को उत्तरपद के परे रहते आनङ् आदेश हो।' वहाँ पर 'होता च पोता च नेष्टा च उद्गाता च' ऐसा विग्रह करके द्वन्द्व समास किया गया है। वहाँ पर उद्गातृ शब्द के परे रहते जिस प्रकार होतृ तथा पोतृ शब्दों को छोड़ कर केवल नेष्टृ शब्द को ही पूर्वपद मानकर आनङ् आदेश हुआ है, उसी प्रकार 'चित्रा जरती गौर्यस्य' इस विग्रह में बहुव्रीहिसमासानन्तर गो शब्द के परे रहते जरती शब्द को ही पूर्वपद मानकर उसे पुंवद्भाव होगा तथा 'चित्रजरद्गुः' ऐसा रूप सिद्ध होगा; यही उचित है।

(१२) **कल्याणीपञ्चमा रात्रयः, स्त्रीप्रमाणः (प्रयोग)**—'कल्याणी पञ्चमी यासां रात्रीणाम्' इस विग्रह में कल्याणी सु पञ्चमी सु का 'अनेकमन्यपदार्थे' सूत्र से बहुव्रीहि समास हुआ। समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लुक् हो गया। पञ्च शब्द से पूरणार्थक डट् तथा उसे मट् करने पर एवं टित्वात् ङीप् प्रत्यय आने पर पञ्चमी शब्द बनता है, इसलिए पूरणार्थक प्रत्ययान्त होने के कारण उसके परे कल्याणी शब्द को 'स्त्रियाः पुंवत्०' सूत्र से पुंवद्भाव नहीं हुआ। 'पूरणार्थप्रत्ययान्त जो स्त्रीलिङ्ग तदन्त तथा प्रमाण्यन्त बहुव्रीहि से अप् प्रत्यय हो' एतदर्थक 'अप्पूरणीप्रमाण्योः' सूत्र से समासान्त अप् प्रत्यय हुआ, 'यस्येति च' सूत्र से पञ्चमी के ईकार का लोप हो गया, समुदाय से जस् विभक्ति, सवर्णदीर्घ, स् को रुत्व-विसर्ग करने पर 'कल्याणपञ्चमाः' प्रयोग सिद्ध हुआ।

इसी प्रकार 'स्त्री प्रमाणी यस्य' इस विग्रह में 'अनेकमन्यपदार्थे' से बहुव्रीहि समास हुआ। समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लुक् हो गया। स्त्रीशब्द चूंकि नित्यस्त्रीलिङ्ग होने के कारण अभाषितपुंस्क है, अतः 'स्त्रियाः पुंवत्०'

से उसे पुंवद्भाव नहीं होगा। 'अप्पूरणीप्रमाण्योः' सूत्र से समासान्त अप् प्रत्यय, 'यस्येति च' से ईकार का लोप तथा विभक्तिकार्य करने पर 'स्त्रीप्रमाणः' प्रयोग सिद्ध होगा।

(१३) **कल्याणपञ्चमीकः, बहुकर्तृकः (प्रयोग)**— 'कल्याणी पञ्चमी यस्य पक्षस्य' इस विग्रह में कल्याणी सु का पञ्चमी सु के साथ 'अनेकमन्य-पदार्थे' से बहुव्रीहि समास हुआ। समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लुक् हो गया। 'नद्यन्त एवं ऋदन्त बहुव्रीहि से कप् प्रत्यय हो' एतदर्थक 'नद्यृतश्च' सूत्र से समासान्त कप् प्रत्यय हुआ। अनुबन्धलोप हो गया। 'स्त्रियाः पुंवत्०' सूत्र से कल्याणी शब्द को पुंवद्भाव हो गया। 'क प्रत्यय के परे अण् को ह्रस्व हो' एतदर्थक 'केऽणः' सूत्र से पञ्चमी के ईकार को ह्रस्व प्राप्त हुआ किन्तु 'कप् के परे अण् को ह्रस्व नहीं हो' एतदर्थक 'न कपि' सूत्र से निषेध होने से एवं विभक्ति कार्य करने से 'कल्याणपञ्चमीकः' प्रयोग सिद्ध हुआ। इस प्रयोग में पञ्चमी शब्द चूँकि पूरणार्थक प्रत्ययान्त है, अतः उसके परे रहते कल्याणी शब्द को 'स्त्रियाः पुंवत्०' सूत्र से पुंवद्भाव नहीं होना चाहिए; यदि ऐसा कहा जाय तो उसका समाधान यही है कि तिरोहितावयव भेद वाले पक्ष के अन्य पदार्थ होने से रात्रि अप्रधान है, अतः पञ्चमी के परे रहते भी कल्याणी को पुंवद्भाव हुआ है।

इसी प्रकार 'बहवः कर्तारो यस्य' इस विग्रह में बहु जस् कर्तृ जस् का 'अनेकमन्यपदार्थे' से बहुव्रीहि समास हुआ। समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लोप हो गया। ऋदन्तोत्तरपदक बहुकर्तृ इस बहुव्रीहि से 'नद्यृतश्च' सूत्र से कप् प्रत्यय हुआ। अनुबन्धलोप तथा विभक्तिकार्य करने पर 'बहु-कर्तृकः' प्रयोग सिद्ध हुआ।

'स्त्रियाः पुंवद् भाषित०' सूत्र में 'अप्रियादिषु' कहने का अभिप्राय यह है कि प्रियादिगणपठित–प्रिया, मनोज्ञा, कल्याणी, सुभगा, दुर्भगा, भक्तिः, सचिवा, स्वसा, कान्ता, क्षान्ता, सभा, चपला, दुहिता, वामा, अबला तथा तनया— इतने शब्दों के उत्तरपद के रूप में रहने पर भाषितपुंस्क पूर्वपद को पुंवद्भाव नहीं होगा। अत एव 'कल्याणी प्रिया यस्य' इस विग्रह में 'कल्याणीप्रियः' ऐसा ही प्रयोग होगा।

(१४) **सर्वकभार्यः, सर्वप्रियः (प्रयोग)**—'सर्विका भार्या यस्य' इस विग्रह में सर्विका सु भार्या सु का 'अनेकमन्यपदार्थे' से बहुव्रीहि समास हुआ।

समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लोप हो गया। 'सर्वनाम को वृत्तिमात्र (कृत्तद्धितसमासैकशेषादि) में पुंवद्भाव हो' एतदर्थक 'सर्वनाम्नो वृत्तिमात्रे पुंवद्भावः' इस वार्त्तिक से सर्विका को पुंवद्भाव हुआ। भार्या शब्द को उपसर्जन ह्रस्व तथा विभक्ति कार्य करने पर 'सर्वकभार्यः' प्रयोग सिद्ध होता है।

इसी प्रकार 'सर्वा प्रिया यस्य' इस विग्रह में बहुव्रीहि समास, सर्वा को पुंवद्भाव, भार्या के आकार को ह्रस्व तथा विभक्तिकार्य करने पर 'सर्वप्रियः' सिद्ध होता है।

(१५) **कुक्कुटाण्डम्, मृगपदम् (प्रयोग)**—'कुक्कुट्याः अण्डम्' इस विग्रह में कुक्कुटी ङस् तथा अण्ड सु का षष्ठीतत्पुरुष समास हुआ। समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लोप हो गया। 'अण्ड आदि शब्दों के परे कुक्कुटी आदि शब्दों को पुंवद्भाव हो' एतदर्थक 'कुक्कुट्यादीनामण्डादिषु' इस वार्त्तिक से कुक्कुटी शब्द को पुंवद्भाव होने के कारण उससे स्त्रीत्वविवक्षा में विहित जातिलक्षण-ङीष् की निवृत्ति हो गई। विभक्तिकार्य करने पर 'कुक्कुटाण्डम्' प्रयोग सिद्ध होता है।

इसी प्रकार 'मृग्याः पदम्' इस विग्रह में समासोपरान्त मृगी शब्द को पुंवद्भाव होने पर 'मृगपदम्' प्रयोग सिद्ध होता है। 'मृग्याः क्षीरम्' इस विग्रह में मृगक्षीरम्, 'काक्याः शावः' इस विग्रह में काकशावः आदि प्रयोग भी इसी प्रकार सिद्ध होते हैं।

(१६) **एतायते, श्येतायते, दर्शनीयमानिनी (प्रयोग)**—'एनी इव आचरति' इस विग्रह में एनी शब्द से 'कर्त्तुः क्यङ्सलोपश्च' सूत्र से क्यङ् प्रत्यय हुआ। अनुबन्धलोप, 'क्यङ् प्रत्यय तथा मानिन् शब्द के परे स्त्रीवाचक शब्द को पुंवद्भाव हो' एतदर्थक 'क्यङ्मानिनोश्च' सूत्र से एनी को पुंवद्भाव हुआ, 'अकृतसार्वधातुकयोः' से एत को दीर्घ करने पर 'एतायते' रूप सिद्ध होता है।

इसी प्रकार 'श्येनी इव आचरति' इस विग्रह में 'श्येतायते' रूप सिद्ध होगा। 'स्वभिन्नां काञ्चिद् दर्शनीयां स्त्रियं मन्यते' इस अर्थ में 'दर्शनीयमानिनी' रूप निष्पन्न होता है। 'मन्' धातु से 'मनः' सूत्र से णिनि प्रत्यय तथा प्रस्तुत सूत्र से दर्शनीया को ह्रस्व करने पर 'दर्शनीयमानिनी' रूप सिद्ध होता है।

(१७) **पाचिकाभार्यः, रसिकाभार्यः आदि (प्रयोग)**—'पचतीति पाचिका'। पच् धातु से कर्त्रर्थ में ण्वुल्, अनुबन्धलोप, टाप्, इत्व आदि करने पर 'पाचिका' सिद्ध होता है। 'पाचिका भार्या यस्य' इस विग्रह में पाचिका सु भार्या सु का 'अनेकमन्यपदार्थे' से बहुव्रीहि समास हुआ। समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लोप हो गया। 'स्त्रियाः पुंवत्०' सूत्र से पाचिका को पुंवद्भाव प्राप्त था, किन्तु 'ककार' जिसकी उपधा में हो ऐसा स्त्रीवाचक शब्द पुंवत् नहीं हो एतदर्थक 'न कोपधायाः' से पुंवत्व का निषेध किया गया। भार्या के आकार को उपसर्जन-ह्रस्व हुआ। समुदाय से सु विभक्ति, रुत्व एवं विसर्ग करने पर 'पाचिकाभार्यः' प्रयोग सिद्ध होगा। इसी प्रकार 'रसिका भार्या यस्य' इस विग्रह में समासोपरान्त कोपध होने के कारण रसिका को पुंवत्व न होने से 'रसिकाभार्यः' प्रयोग सिद्ध होगा।

'मद्रिकायते' एवं 'मद्रिकामानिनी' आदि स्थानों में भी पुंवत्व का निषेध होने के कारण ये प्रयोग सिद्ध होंगे।

(१८) **सञ्ज्ञापूरण्योश्च (सूत्र)**—इस सूत्र में 'स्त्रियाः पुंवत्०' सूत्र से 'पुंवत्' तथा 'न कोपधायाः' सूत्र से 'न' की अनुवृत्ति आती है। 'संज्ञा में तथा पूरणीप्रत्ययान्त को पुंवद्भाव नहीं हो' यही सूत्रार्थ है। उदाहरण है—दत्ताभार्यः आदि।

'दत्ता भार्या यस्य' इस विग्रह में 'अनेकमन्यपदार्थे' से दत्ता सु भार्या सु का बहुव्रीहि समास हुआ। समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लोप हो गया। 'स्त्रियाः पुंवत्०' सूत्र से दत्ता शब्द को पुंवद्भाव प्राप्त था, किन्तु यहाँ संज्ञा अर्थ में 'संज्ञापूरण्योश्च' सूत्र से उसका निषेध हुआ। भार्या के आकार को उपसर्जन ह्रस्व तथा समुदाय से सु विभक्ति, रुत्व एवं विसर्ग करने पर 'दत्ताभार्यः' प्रयोग सिद्ध होता है। इसी प्रकार 'दत्तामानिनी' में 'क्यङ्मानिनोश्च' सूत्र से दत्ता शब्द को जो पुंवद्भाव प्राप्त था, उसका संज्ञा अर्थ में प्रस्तुत सूत्र से निषेध होने के कारण 'दत्तामानिनी' प्रयोग ही सिद्ध होता है।

पूरणप्रत्ययान्त का उदाहरण है—पञ्चमीभार्यः। 'पञ्चमी भार्या यस्य' इस विग्रह में बहुव्रीहि समास, प्रातिपदिकावयव सुप् का लुक् 'स्त्रियाः पुंवत्०' से पञ्चमी शब्द को पुंवद्भाव प्राप्त हुआ, किन्तु पूरणप्रत्ययान्त होने के कारण 'संज्ञापूरण्योश्च' सूत्र से उसका निषेध होने के कारण तथा भार्या के आकार को उपसर्जन-ह्रस्व विभक्तिकार्य करने पर 'पञ्चमीभार्यः' प्रयोग सिद्ध होता है।

(१९) वृद्धिनिमित्तस्य च तद्धितस्यारक्तविकारे (सूत्र)—इस सूत्र में 'स्त्रियाः पुंवत्०' से 'पुंवत्' तथा 'न कोपधायाः' से 'न' की अनुवृत्ति आती है। 'वृद्धि शब्द से विहित जो वृद्धि उसका हेतु जो रक्त एवं विकारार्थं तद्धितभिन्न तद्धित तदन्त स्त्रीवाचक शब्द को पुंवद्भाव नहीं हो' यही सूत्रार्थं है। उदाहरण है—स्रौघ्नीभार्यः आदि।

'स्रुघ्ने भवा' इस अर्थं में 'तत्र भवः' इस सूत्र से अण् प्रत्यय तथा 'टिड्ढाणञ्०' से ङीप् करके 'स्रौघ्नी' शब्द बनता है। 'स्रौघ्नी भार्या यस्य' इस विग्रह में स्रौघ्नी सु भार्या सु का 'अनेकमन्यपदार्थे' सूत्र से बहुव्रीहि समास हुआ। समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लुक् हो गया। 'स्त्रियाः पुंवत्०' सूत्र से स्रौघ्नी शब्द को पुंवद्भाव प्राप्त था, किन्तु स्रौघ्नी शब्द में जो 'तद्धितेष्वचामादेः' से आदि अच् को वृद्धि हुई है, उसका हेतु अण् प्रत्यय है, जो रक्तार्थंक या विकारार्थक तद्धित प्रत्यय से भिन्न तद्धित प्रत्यय है तथा स्रौघ्नी शब्द तदन्त है, अतः 'वृद्धिर्निमित्तस्य च तद्धितस्यारक्तविकारे' सूत्र से स्रौघ्नी शब्द को पुंवद्भाव नहीं होगा। भार्या के आकार को उपसर्जन-ह्रस्व तथा विभक्त्यादि कार्य करने पर 'स्रौघ्नीभार्यः' सिद्ध होगा।

'कषायेण रक्ता' इस अर्थं में कषाय शब्द से 'तेन रक्तं रागात्' से अण् करने पर 'काषायी' शब्द बनता है। 'काषायी कन्था यस्य' इस विग्रह में 'काषायकन्थः' ही होगा, चूंकि रक्तार्थंक अण् रूप तद्धित प्रत्यय के कारण यहाँ वृद्धि हुई है तथा तादृश तद्धितप्रत्ययान्त स्त्रीवाचक शब्द काषायी है, अतः यहाँ पर पुंवद्भाव का निषेध प्रस्तुत सूत्र से नहीं होगा।

इसी प्रकार 'हेम्नो विकारः' इस अर्थं में 'अनुदात्तादेश्च' से विकारार्थं में अञ् तथा स्त्रीत्वविवक्षा में ङीप् करने पर 'हैमी' शब्द बनता है। 'हैमी मुद्रिका यस्य' इस विग्रह में समासादि करने पर प्रस्तुत सूत्र से पुंवद्भाव का निषेध न करने के कारण 'हैममुद्रिकः' प्रयोग ही सिद्ध होगा।

(२०) स्वाङ्गाच्चेतः (सूत्र)—इस सूत्र में 'स्त्रियाः पुंवत्' सूत्र से 'पुंवत्' तथा 'न कोपधायाः' से 'न' की अनुवृत्ति होती है। 'स्वाङ्गवाचक शब्द से जो ईकार प्रत्यय हो तदन्त स्त्रीवाचक शब्द को पुंवद्भाव नहीं हो' यही सूत्रार्थं है। उदाहरण है—सुकेशीभार्यः। 'सु शोभना केशाः यस्याः' इस अर्थं में 'स्वाङ्गाच्चोपसर्जनादसंयोगोपधात्' सूत्र से ङीष् प्रत्यय करने पर 'सुकेशी' रूप बनता है। 'सुकेशी भार्या यस्य' इस विग्रह में सुकेशी सु भार्या सु का

'अनेकमन्यपदार्थे' सूत्र से बहुव्रीहि समास हुआ। समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लुक् हो गया। 'स्त्रियाः पुंवत्०' सूत्र से सुकेशी शब्द को पुंवद्भाव प्राप्त था, किन्तु 'स्वाङ्गाच्चेतः' सूत्र से उस का निषेध किया गया। भार्या के आकार को उपसर्जन-ह्रस्व, सु विभक्ति, रुत्व एवं विसर्ग करने पर 'सुकेशी-भार्यः' रूप सिद्ध होता है।

सूत्र में स्वाङ्गात् ऐसा कहने के कारण ही 'पट्वी भार्या यस्य' इस विग्रह में समासादि करने के बाद 'स्त्रियाः पुंवत्०' सूत्र से पट्वी शब्द को पुंवद्भाव हो जाता है, चूँकि पटु शब्द गुणवाचक है, स्वाङ्गवाचक नहीं तथा उसी से 'वोतोगुणवचनात्' सूत्र से ङीष् प्रत्यय लाने पर पट्वी शब्द बनता है।

सूत्र में यदि ईतः नहीं कहा जाय तो 'अकेशभार्यः' आदि में भी पुंवद्भाव का निषेध होने लगेगा। वहाँ पर 'अविद्यमानाः केशाः यस्याः' इस विग्रह में 'नञोऽस्त्यर्थानां वाच्यो वा चोत्तरपदलोपश्च' इस वार्तिक से समास तथा विद्यमान शब्द का लोप हो जाता है। स्वाङ्गवाचक होने पर भी 'सहनञ्विद्य-मानपूर्वाच्च' सूत्र से ङीष् का निषेध होने के कारण अकेश शब्द से टाप् ही किया जाता है तथा 'अकेशा' यह रूप बनता है। 'अकेशा भार्या यस्य' इस विग्रह में बहुव्रीहि समास करने पर 'स्त्रियाः पुंवत्०' से अकेशा शब्द को पुंवद्भाव होने से, एवं भार्या शब्द को उपसर्जन-ह्रस्व तथा विभक्त्यादि कार्य करने पर 'अकेशभार्यः' रूप सिद्ध होता है।

यदि सूत्र में 'ईतः' न कहा जाय तो आकारान्त अकेशा शब्द को भी स्वाङ्गवाचकत्वात् पुंवद्भाव का निषेध हो जायगा।

(२१) जातेश्च (सूत्र)—इस सूत्र में भी 'स्त्रियाः पुंवत्०' से पुंवत् तथा 'न कोपधायाः' से न पद की अनुवृत्ति आती है। 'जातिवाचक शब्द से पर जो स्त्रीप्रत्यय है, तदन्त स्त्रीवाचक शब्द को पुंवद्भाव नहीं हो' यही सूत्रार्थ है। इसका उदाहरण है—शूद्राभार्यः, ब्राह्मणीभार्यः।

'शूद्रा भार्या यस्य' तथा 'ब्राह्मणी भार्या यस्य' इस विग्रह में 'अनेकमन्य-पदार्थे' से समास, समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लुक्, शूद्रत्वजाति-विशिष्टा शूद्रा तथा ब्राह्मणत्वजातिविशिष्टा ब्राह्मणी को 'स्त्रियाः पुंवत्०' सूत्र से प्राप्त पुंवद्भाव का 'जातेश्च' सूत्र से निषेध किया गया। दोनों ही प्रयोगों में भार्या शब्द को उपसर्जन-ह्रस्व, सु विभक्ति रुत्व तथा विसर्ग करने पर क्रमशः 'शूद्राभार्यः' तथा 'ब्राह्मणीभार्यः' प्रयोग सिद्ध होते हैं। शूद्र शब्द

से 'शूद्रा चामहत्पूर्वाजातिः' सूत्र से टाप् रूप स्त्रीप्रत्यय आया है, जबकि ब्राह्मण शब्द से 'शाङ्र्गरवाद्यञो ङीन्' से ङीन् रूप स्त्रीप्रत्यय आया है।

(२२) **आसन्नविंशाः (प्रयोग)**—'विंशतेः आसन्ना' इस विग्रह में विंशति ङस् आसन्न जस् का 'सङ्ख्येयार्थक सङ्ख्यावाचक सुबन्त के साथ अव्यय, आसन्न, अदूर, अधिक और सङ्ख्यावाचक समर्थ सुबन्त समस्त होते हुए बहुव्रीहिसंज्ञक हो' एतदर्थक 'सङ्ख्ययाव्ययासन्नादूराधिकसङ्ख्याः सङ्ख्येये' सूत्र से बहुव्रीहि समास हुआ। यहाँ पर 'अनेकमन्यपदार्थे' से 'विंशतेः' का प्रथमान्त न होने के कारण समास न होने से बहुव्रीहि समास करने के लिए इस सूत्र का विधान किया गया है। समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लुक् हो गया। सूत्र में अव्यय, आसन्न आदि प्रथमान्तत्वेन निर्दिष्ट है, अतः आसन्न शब्द को उपसर्जनसंज्ञा तथा उसका पूर्वप्रयोग किया गया। 'सङ्ख्येय अर्थ में सङ्ख्यावाचक को जो बहुव्रीहि हो, उससे समासान्त डच् प्रत्यय हो, बहु और गण शब्दान्त को छोड़कर' एतदर्थक 'बहुव्रीहौ संख्येये डजबहुगणात्' सूत्र से समासान्त डच् प्रत्यय हुआ, अनुबन्धलोप करने से डच् में अ बचा रहा। भसंज्ञक विंशतिशब्द के ति का लोप हो डित्प्रत्यय के परे रहते' एतदर्थक तिविंशतेर्डिति' सूत्र से विंशति के ति का डित्वात् भसंज्ञा होने के कारण लोप हो गया। 'अतो गुणे' से पररूप करने के बाद समुदाय से जस् विभक्ति आने पर 'आसन्नविंशाः' प्रयोग सिद्ध होता है। इसी प्रकार 'अदूरत्रिंशाः, अधिकचत्वारिंशाः' आदि सिद्ध होंगे। इन प्रयोगों में डच् प्रत्यय करने के बाद डित्वात् भसंज्ञा एवं टिलोप करने पर ये प्रयोग सिद्ध होंगे।

(२३) **केशाकेशि, दण्डादण्डि, मुष्टामुष्टि (प्रयोग)**—'केशेषु केशेषु गृहीत्वेदं युद्धं प्रवृत्तम्' इस अर्थ में केश सुप् केश सुप् का 'तत्र तेनेदमिति सरूपे' सूत्र से बहुव्रीहि समास हुआ। सूत्र का अर्थ है—'ग्रहणरूप अर्थ द्योत्य रहने पर सप्तम्यन्त सरूप पदों को, प्रहरणरूप अर्थ द्योत्य रहने से तृतीयान्त सरूप पदों को 'इदं युद्धं प्रवृत्तम्' इस अर्थ में कर्मव्यतिहार की प्रतीति होने पर विकल्प से बहुव्रीहि समास हो'। सूत्र में इति शब्द से यह विषय-विशेष उपलब्ध होता है। समासोपरान्त समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लुक् हो गया। 'कर्मव्यतिहार में जो बहुव्रीहि हो उससे समासान्त इच् प्रत्यय हो' एतदर्थक 'इच्कर्मव्यतिहारे' सूत्र से समासान्त इच् प्रत्यय हुआ। 'अन्येषामपि

दृश्यते' सूत्र से प्रथम केश शब्द को दीर्घ हो गया, भसंज्ञा, द्वितीयकेश शब्द के अकार का लोप, इच् प्रत्यय का तिष्ठद्गुप्रभृति में पाठ होने से केशाकेशि को अव्ययत्व तथा समुदाय से आयी हुई सु विभक्ति का 'अव्ययादाप्सुपः' से लोप करने पर 'केशाकेशि' प्रयोग सिद्ध होता है।

'दण्डैः दण्डैः प्रहृत्येदं युद्धं प्रवृत्तम्' इस अर्थ में दण्ड भिस् दण्ड भिस् का 'तत्र तेनेदमिति सरूपे' से बहुव्रीहि समास, समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लुक्। 'इच्कर्मव्यतिहारे' से समासान्त इच् 'अन्येषामपि दृश्यते' से पूर्वपद को दीर्घ, भत्वात् अकार का लोप, अव्ययत्वात् सु विभक्ति का लोप करने पर 'दण्डादण्डि' प्रयोग सिद्ध होता है। इसी प्रकार 'मुष्टिभिः मुष्टिभिः, अथवा 'मुष्ट्या मुष्ट्या प्रहृत्येदं युद्धं प्रवृत्तम्' इस विग्रह में 'मुष्टीमुष्टि' रूप सिद्ध होगा।

(२४) सपुत्रः, सहपुत्रो वा आगतः (प्रयोग)—'पुत्रेण सह आगतः' इस अर्थ में 'तुल्ययोग अर्थात् सादृश्य अर्थ में विद्यमान सह शब्द तृतीयान्त के साथ समस्त हो तथा वह बहुव्रीहिसंज्ञक हो' एतदर्थक 'तेन सहेति तुल्ययोगे' से बहुव्रीहि समास हुआ। समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लुक् हो गया। सह को प्रथमान्तत्वात् उपसर्जनत्व एवं उसका पूर्वप्रयोग हुआ। 'बहुव्रीहि का अवयव उपसर्जन 'सह' को विकल्प से 'स' आदेश हो' एतदर्थक 'वोपसर्जनस्य' सूत्र से सह को स आदेश हो गया। समासत्वात् प्रातिपदिकावयव कार्य करने पर 'सपुत्रः' प्रयोग सिद्ध हुआ। स के आदेशाभाव पक्ष में 'सहपुत्रः' रूप सिद्ध हुआ।

(२५) स्वस्ति राज्ञे सहपुत्राय, सहामात्याय (प्रयोग)—यहाँ पर 'सहपुत्राय, सहामात्याय' आदि में 'तेन सहेति तुल्ययोगे' से बहुव्रीहि समास तो होगा, किन्तु 'वोपसर्जनस्य' सूत्र से सह को स आदेश नहीं होगा, क्योंकि "आशीर्वाद अर्थ में सहशब्द प्रकृत्या अर्थात् जैसे का तैसा रहे' एतदर्थक 'प्रकृत्याशिषि' सूत्र से उसका निषेध किया जाता है। यहाँ पर पुत्र सहित राजा को या अमात्य सहित राजा को 'स्वस्ति' के द्वारा आशीर्वाद दिया जा रहा है।

(२६) उपदशाः (प्रयोग)—'दशानां समीपे सन्ति' इस विग्रह में दश आम् उप सु का 'सङ्ख्ययाव्ययासन्नादूराधिकसङ्ख्याः संख्येये' सूत्र से बहुव्रीहि समास हुआ। समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लुक् हो गया। उप इस अव्यय का उपसर्जनत्वात् पूर्वप्रयोग हुआ। 'बहुव्रीहौ संख्येये डजबहु-

गणात्' सूत्र से समासान्त डच् प्रत्यय हुआ। अनुबन्धलोप, डित्वात् टि का लोप समुदाय से जस् विभक्ति आने पर 'उपदशाः' प्रयोग सिद्ध होता है।

(२७) **दीर्घसक्थः, जलजाक्षी (प्रयोग)**—'दीर्घे सक्थिनी यस्य' इस विग्रह में दीर्घ औ सक्थिन् औ का 'अनेकमन्यपदार्थे' से बहुव्रीहि समास हुआ। समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लोप हो गया। 'स्वाङ्गवाची जो सक्थि तथा अक्षिशब्द तदन्त बहुव्रीहि से षच् प्रत्यय हो' एतदर्थक 'बहुव्रीहौ सक्थ्यक्ष्णोः स्वाङ्गात् षच्' इस सूत्र से समासान्त षच् प्रत्यय हुआ। अनुबन्ध-लोप, 'नस्तद्धिते' सूत्र से टिलोप, सु विभक्ति, रुत्व एवं विसर्ग करने पर 'दीर्घसक्थः' प्रयोग सिद्ध होता है।

इसी प्रकार 'जलजे इव अक्षिणी यस्याः' इस विग्रह में जलज औ अक्षिन् औ का 'अनेकमन्यपदार्थे' से बहुव्रीहि समास हुआ। समासत्वात् प्राति-पदिकावयव सुप् का लोप हो गया। 'बहुव्रीहौ सक्थ्यक्ष्णोः स्वाङ्गात्षच्' सूत्र से समासान्त षच् प्रत्यय हो गया, अनुबन्धलोप, 'नस्तद्धिते' से टिलोप, षित्वात् 'षिद्गौरादिभ्यश्च' से ङीष् तथा सु विभक्ति आने पर 'जलजाक्षी' रूप सिद्ध होता है।

(२८) **पञ्चाङ्गुलं दारु (प्रयोग)**—'पञ्च अङ्गुलयो यस्य' इस विग्रह में पञ्च जस् अङ्गुलि जस् का 'अनेकमन्यपदार्थे' से बहुव्रीहि समास, समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लुक् 'दारु अर्थ में अङ्गुल्यन्त बहुव्रीहि से षच् हो' एतदर्थक 'अङ्गुलेर्दारुणि' सूत्र से समासान्त षच् हुआ, अनुबन्धलोप, 'यस्येति च' से इकार का लोप, सु विभक्ति अमादेश, पूर्वरूप करने पर 'पञ्चाङ्गुलम्' रूप सिद्ध होता है।

(२९) **द्विमूर्धः, त्रिमूर्धः (प्रयोग)**—'द्वौ मूर्धानौ यस्य' इस विग्रह में द्वि औ मूर्धन् औ का 'अनेकमन्यपदार्थे' से बहुव्रीहि समास हुआ। समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लोप हो गया। 'द्वि एवं त्रि शब्द से पर मूर्धन् शब्द को ष प्रत्यय हो बहुव्रीहि में' एतदर्थक 'द्वित्रिभ्यां षो मूर्ध्नः' इस सूत्र से ष प्रत्यय हुआ। अनुबन्धलोप, 'नस्तद्धिते' से टिलोप, सु विभक्ति, रुत्व एवं विसर्ग करने पर 'द्विमूर्धः' प्रयोग सिद्ध होगा।

इसी प्रकार 'त्रयो मूर्धानो यस्य' इस विग्रह में त्रि जस् मूर्धन् जस् का बहुव्रीहि समास, प्रातिपदिकावयव सुप् का लुक्, प्रस्तुत सूत्र से ष प्रत्यय,

'नस्तद्धिते' से टिलोप, सु विभक्ति, रुत्व एवं विसर्ग करने पर 'त्रिमूर्धः' सिद्ध होगा।

(३०) अन्तर्लोमः, बहिर्लोमः (प्रयोग)—'अन्तः (अन्तःस्थानि), लोमानि यस्य' इस विग्रह में बहुव्रीहि समास, समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लुक्, 'अन्तर् तथा बहिस् शब्द से पर लोमन् शब्द से बहुव्रीहि में समासान्त अप् प्रत्यय हो' एतदर्थक 'अन्तर्बहिर्भ्यां च लोम्नः' सूत्र से समासान्त अप् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, टिलोप तथा विभक्तिकार्य करने पर 'अन्तर्लोमः' प्रयोग सिद्ध हुआ। इसी प्रकार 'बहिः (बहिःस्थानि) लोमानि यस्य' इस विग्रह में समासादि, प्रस्तुत सूत्र से समासान्त अप्, 'नस्तद्धिते' से टिलोप एवं विभक्तिकार्य करने पर 'बहिर्लोमः' रूप सिद्ध होता है।

(३१) द्रुणसः खरणसः (प्रयोग)—'द्रुरिव नासिका यस्य' इस विग्रह में द्रु सु नासिका सु का 'अनेकमन्यपदार्थे' से बहुव्रीहि समास हुआ। समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लुक् हो गया। 'नासिकाशब्दान्त बहुव्रीहि से अच् प्रत्यय हो तथा नासिका शब्द को नस् आदेश हो, यदि स्थूल शब्द पूर्व में न हो तो' इस अर्थवाले 'अञ्नासिकायाः संज्ञायां नसं चास्थूलात्' सूत्र से समासान्त अच् प्रत्यय तथा नासिका शब्द को नस् आदेश हो गया। 'पूर्वपदस्थ निमित्त से पर नकार को णकार हो संज्ञा में गकार के व्यवधान में न हो' एतदर्थक 'पूर्वपदात्संज्ञायामगः' सूत्र से नकार को णत्व हो गया, विभक्तिकार्य करने पर 'द्रुणसः' प्रयोग सिद्ध हुआ। इसी प्रकार 'खर इव नासिका यस्य' इस विग्रह में 'खरणसः' प्रयोग सिद्ध होगा।

(३२) उन्नसः (प्रयोग)—'उन्नता नासिका यस्य' इस विग्रह में 'प्रादिभ्यो धातुजस्य वाच्यो वा चोत्तरपदलोपः' इस वार्तिक से बहुव्रीहि समास तथा नता शब्द का लोप हो गया। 'प्र आदि उपसर्ग से पर जो नासिका शब्द तदन्त बहुव्रीहि से अच् प्रत्यय हो तथा नासिका शब्द को नस् आदेश हो' एतदर्थक 'उपसर्गाच्च' सूत्र से समासान्त अच् प्रत्यय तथा नासिका शब्द को नस् आदेश हुआ। सु विभक्ति रुत्व एवं विसर्ग करने पर 'उन्नसः' प्रयोग सिद्ध हुआ।

(३३) प्रणसः (प्रयोग)—'प्रगता नासिका यस्य' इस विग्रह में 'प्रादिभ्यो धातुजस्य वाच्यो वा चोत्तरपदलोपः' इस वार्तिक से बहुव्रीहि समास तथा गता शब्द का लोप हो गया। 'प्रादि उपसर्ग से पर जो नासिका

शब्द तदन्त बहुव्रीहि से अच् प्रत्यय हो तथा नासिका शब्द को नस् आदेश हो' एतदर्थक 'उपसर्गाच्च' इस सूत्र से समासान्त अच् प्रत्यय हुआ तथा नासिका शब्द को नस् आदेश हो गया। 'उपसर्गस्थ निमित्त से पर नकार को बहुल प्रकार से णकार हो' एतदर्थक 'उपसर्गाद् बहुलम्' सूत्र से णत्व होने पर तथा विभक्तिकार्य करने पर 'प्रणसः' प्रयोग सिद्ध होता है।

(३४) विग्रः (प्रयोग)—'विगता नासिका यस्य' इस विग्रह में 'प्रादिभ्यो धातुजस्य वाच्यो वा चोत्तरपदलोपः' से बहुव्रीहि समास तथा गतारूप उत्तरपद का लोप हो गया। समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लोप हो गया। 'वि उपसर्ग से पर जो नासिका शब्द तदन्त बहुव्रीहि से समासान्त अच् प्रत्यय हो तथा नासिका शब्द ग्रादेश को प्राप्त करे' एतदर्थक 'वेर्ग्रो वक्तव्यः' इस वार्त्तिक से समासान्त अच् प्रत्यय तथा नासिका शब्द को ग्र आदेश हुआ। भत्वात् 'यस्येति च' से अकार का लोप, सु विभक्ति, रुत्व एवं विसर्ग करने पर 'विग्रः' प्रयोग सिद्ध हुआ।

(३५) विख्यः (प्रयोग)—'विगता नासिका यस्य' इस विग्रह में विगता सु नासिका सु का 'प्रादिभ्यो धातुजस्य वाच्यो वा चोत्तरपदलोपः' इस वार्तिक से बहुव्रीहि समास तथा गतारूप धातुज उत्तरपद का लोप हो गया। समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लोप हुआ। 'वि उपसर्ग से पर जो नासिका शब्द तदन्त बहुव्रीहि से समासान्त अच् प्रत्यय हो तथा नासिका शब्द ख्य आदेश को प्राप्त करे' एतदर्थक 'ख्यश्च' इस वार्तिक से समासान्त अच् प्रत्यय तथा नासिका शब्द को ख्य आदेश हुआ। 'यस्येति च' से अकार का लोप, सु विभक्ति, रुत्व एवं विसर्ग करने पर 'विख्यः' प्रयोग सिद्ध हुआ।

(३६) सुप्रातः, सुश्वः, सुदिवः आदि (प्रयोग)—'शोभनं प्रातरस्य' इस विग्रह में 'अनेकमन्यपदार्थे' से बहुव्रीहि समास हुआ। प्रातिपदिकावयव सुप् का लुक् हो गया। 'सुप्रातसुश्वसुदिवशारिकुक्षचतुरश्रैणीपदाजपदप्रोष्ठपदाः' सूत्र से निपातनात् समासान्त अच् प्रत्यय हुआ। 'अव्ययानां भमात्रे टिलोपः' से टिलोप तथा विभक्तिकार्य करने पर 'सुप्रातः' प्रयोग सिद्ध हुआ।

इसी प्रकार 'शोभनं श्वोऽस्य' इस विग्रह में सुश्वः, 'शोभनं दिवा अस्य' इस विग्रह में सुदिवः आदि प्रयोग सिद्ध होंगे।

(३७) अप्रजाः (प्रयोग)—'अविद्यमाना प्रजा यस्य' इस विग्रह में 'नञोऽस्त्यर्थानां वाच्यो वा चोत्तरपदलोपः' इस वार्त्तिक से बहुव्रीहि समास तथा

अस्त्यर्थक विद्यमानरूप उत्तरपद का लोप हो गया। प्रातिपदिकावयव सुप् का लुक् हो गया। 'नञ् दुस् तथा सु से पर जो प्रजा तथा मेधस् शब्द तदन्त बहुव्रीहि से नित्यरूप से असिच् प्रत्यय हो' एतदर्थक 'नित्यमसिच्प्रजामेधयोः' सूत्र से असिच् प्रत्यय हुआ। अनुबन्धलोप तथा 'यस्येति च' से आकार का लोप हो गया। निष्पन्न प्रजस् शब्द से सु विभक्ति, 'अत्वसन्तस्य चाधातोः' से दीर्घ, हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल्' से सु का लोप हो गया, सकार को रुत्व-विसर्ग करने पर 'अप्रजाः' प्रयोग सिद्ध हुआ।

इसी प्रकार 'अविद्यमाना मेधा यस्य' इस विग्रह में 'अमेधाः' प्रयोग सिद्ध होगा। 'दुष्टा प्रजा यस्य' इस विग्रह में दुष्प्रजाः, 'शोभना प्रजा यस्य' इस विग्रह में सुप्रजाः, 'दुष्टा मेधा यस्य' इस विग्रह में दुर्मेधाः तथा 'शोभना मेधा यस्य' इस विग्रह में सुमेधाः प्रयोग सिद्ध होगा।

(३८) **धर्मादनिच्केवलात् (सूत्र)**—'केवल पूर्वपद से पर जो धर्मशब्द तदन्त बहुव्रीहि से समासान्त अनिच प्रत्यय हो' यही सूत्रार्थ है। उदाहरण है—कल्याणधर्मा। 'कल्याणः धर्मो यस्य' इस विग्रह में 'अनेकमन्यपदार्थे' से बहुव्रीहि समास हुआ। समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लोप हो गया। 'धर्मादनिच्केवलात्' सूत्र से समासान्त अनिच् प्रत्यय हुआ। अनुबन्धलोप हुआ। समुदाय से सु विभक्ति. नान्त कल्याणधर्मन् की उपधा को 'सर्वनामस्थाने चाऽसम्बुद्धौ' से दीर्घ, सु का 'हल्ङ्याब्भ्यो०' सूत्र से लोप तथा नकार का 'नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य' से लोप करने पर 'कल्याणधर्मा' प्रयोग सिद्ध हुआ।

सूत्र में केवल शब्द के ग्रहण के कारण ही 'परमः स्वधर्मो यस्य' इस त्रिपद बहुव्रीहि में धर्म शब्द से अनिच् प्रत्यय नहीं आता है, क्योंकि स्व शब्द यहाँ पर केवल पूर्वपद नहीं है, उससे पूर्व परम शब्द भी पूर्वपद है।

(३९) **प्रज्ञुः, संज्ञुः (प्रयोग)**—'प्रगते जानुनी यस्य' इस विग्रह मे 'प्रादिभ्यो धातुजस्य वाच्यो वा चोत्तरपदलोपः' इस वार्तिक से बहुव्रीहि समास तथा धातुज उत्तरपद का लोप हो गया। समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लोप हुआ। 'प्र एवं सम् से पर जो जानु शब्द तदन्त बहुव्रीहि में जानुशब्द को ज्ञु आदेश हो' एतदर्थक 'प्रसंभ्यां जानुनोर्ज्ञुः' सूत्र से जानु शब्द को ज्ञु आदेश हो गया। सु विभक्ति, रुत्व एवं विसर्ग करने पर 'प्रज्ञुः' प्रयोग सिद्ध हुआ। इसी प्रकार 'सङ्गते जानुनी यस्य' इस विग्रह में 'संज्ञुः' प्रयोग सिद्ध होगा।

(४०) ऊर्ध्वज्ञुः—ऊर्ध्वजानुः (प्रयोग)—'ऊर्ध्वे जानुनी यस्य' इस विग्रह में 'अनेकमन्यपदार्थे' से बहुव्रीहि समास हुआ। समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लोप हो गया। 'ऊर्ध्व शब्द से पर जो जानु शब्द तदन्त बहुव्रीहि में जानु शब्द को विकल्प से ज्ञु आदेश हो' एतदर्थक 'ऊर्ध्वाद्विभाषा' सूत्र से जानु शब्द को वैकल्पिक ज्ञु आदेश हुआ। आदेशपक्ष में विभक्तिकार्य करने पर 'ऊर्ध्वज्ञुः' तथा ज्ञ आदेश के अभाव पक्ष में 'ऊर्ध्वजानुः' प्रयोग सिद्ध होता है।

(४१) द्विधन्वा, शाङ्र्गधन्वा (प्रयोग) 'द्वे धनुषी यस्य' इस विग्रह में 'अनेकमन्यपदार्थे' से द्वि औ धनुष् औ का बहुव्रीहि समास हुआ। समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लोप हो गया। 'धनुष् शब्दान्त बहुव्रीहि को अनङ् आदेश हो' एतदर्थक 'धनुषश्च' सूत्र से अनङ् आदेश हुआ, जो ङित्व होने के कारण अन्त्यावयव के रूप में हुआ। यण् हो गया। सु विभक्ति आने पर नान्त की उपधा को दीर्घ, सु का लोप तथा नकार का लोप होने से 'द्विधन्वा' प्रयोग सिद्ध हुआ। इसी प्रकार 'शाङ्र्गं धनुर्यस्य' इस विग्रह में 'शाङ्र्गधन्वा' प्रयोग सिद्ध होगा।

संज्ञा अर्थ में धनुष् शब्दान्त बहुव्रीहि को विकल्प से अनङ् आदेश का विधान 'वा सञ्ज्ञायाम्' सूत्र करता है, इसीलिए 'शतं धनूंषि यस्य' इस विग्रह में 'शतधन्वा' तथा 'शतधनुः' दोनों ही रूप सिद्ध होते हैं। स्यमन्तक उपाख्यान में शतधन्वा नामक राजा का वर्णन आया है, इस प्रकार शतधन्वा संज्ञा अर्थ में विवक्षित है।

(४२) युवजानिः (प्रयोग)—'युवतिर्जाया यस्य' इस विग्रह में युवति सु जाया सु का 'अनेकमन्यपदार्थे' से बहुव्रीहि समास हुआ। समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लोप हो गया। 'जाया शब्दान्त बहुव्रीहि को निङ् आदेश हो' एतदर्थक 'जायाया निङ्' सूत्र से जायाशब्दस्थ या के आकार को निङ् आदेश हुआ। अनुबन्धलोप हो गया। 'स्त्रियाः पुंवत्०' सूत्र से युवति शब्द को पुंवद्भाव होने से 'ति' की भी निवृत्ति हो गई। 'वल् के परे रहते वकार एवं यकार का लोप हो' एतदर्थक 'लोपो व्योर्वलि' सूत्र से यकार का लोप हो गया। समुदाय से सु विभक्ति, रुत्व एवं विसर्ग करने पर 'युवजानिः' प्रयोग सिद्ध हुआ।

(४३) उद्गन्धिः, पूतिगन्धिः, सुगन्धिः, सुरभिगन्धिः (प्रयोग)–'उद्गतो गन्धो यस्य' इस विग्रह में 'प्रादिभ्यो धातुजस्य वाच्यो वा चोत्तरपदलोपः' से

बहुव्रीहि समास तथा धातुज उत्तरपद का लोप हो गया। समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का भी लोप हो गया। 'उत्, पूति, सु तथा सुरभि शब्द से पर जो गन्धशब्द तदन्त बहुव्रीहि को इकारान्तादेश हो' एतदर्थक 'गन्धस्येदुत्पूतिसुसुरभिभ्यः' सूत्र से इकारान्तादेश हो गया। सु विभक्ति, रुत्व-विसर्ग करने पर 'उद्गन्धिः' रूप सिद्ध हुआ। इसी प्रकार 'पूतिर्गन्धो यस्य' इस विग्रह में 'अनेकमन्यपदार्थे' से बहुव्रीहि समास तथा प्रस्तुत सूत्र से इकारान्तादेश करने पर 'पूतिगन्धिः' रूप सिद्ध होगा। 'शोभनो गन्धो यस्य' इस विग्रह में 'सुगन्धिः' तथा 'सुरभिर्गन्धो यस्य' इस विग्रह में 'सुरभिगन्धिः' प्रयोग सिद्ध होंगे।

(४४) **अल्पाख्यायाम् (सूत्र)**—'जहाँ अल्पार्थ द्योतित हो वहाँ गन्ध शब्दान्त बहुव्रीहि को इकारान्त आदेश हो' यही सूत्रार्थ है। इसीलिए 'सूपस्य गन्धः अर्थात् लेशः यस्मिन् तत् सूपगन्धि भोजनम्' अथवा 'घृतगन्धि' आदि प्रयोग सिद्ध होते हैं। यहाँ पर गन्ध शब्द लेशार्थक है, जिससे अल्पार्थ द्योतित हो रहा है।

(४५) **उपमानाच्च (सूत्र)**—'उपमानवाचक से पर जो गन्धशब्द तदन्त बहुव्रीहि को इकारान्तादेश हो' यही सूत्रार्थ है। जैसे—पद्मगन्धिः। 'पद्मस्य इव गन्धिर्यस्य' इस विग्रह में बहुव्रीहि समास करने पर प्रस्तुत सूत्र से इकारान्तादेश किया गया है, क्योंकि पद्मशब्द उपमानवाची है

(४६) **व्याघ्रपात् (प्रयोग)**—'व्याघ्रस्येव पादावस्य' इस विग्रह में बहुव्रीहि समास करने के बाद 'हस्त्यादिवर्जित उपमानवाचक से पर पादशब्द के अन्त्य का लोप हो' एतदर्थक 'पादस्य लोपोऽहस्त्यादिभ्यः' सूत्र से पाद शब्द के अन्त्य अकार का लोप हो गया। सु विभक्ति में 'व्याघ्रपात्' प्रयोग निष्पन्न हुआ।

(४७) **वयसि दन्तस्य दतृ (सूत्र)**—इस सूत्र में 'संख्यासुपूर्वस्य' सूत्र की अनुवृत्ति आती है, तदनुसार 'सङ्ख्यावाचकपूर्वक तथा सुपूर्वक वयःसूचक जो दन्त शब्द उसे दतृ आदेश हो' यह सूत्रार्थ फलित होता है। उदाहरण है—द्विदन्, चतुर्दन् आदि।

'द्वौ दन्तौ अस्य' इस विग्रह में द्वि औ दन्त औ का 'अनेकमन्यपदार्थे' से बहुव्रीहि समास हुआ। समासत्वात प्रातिपदिकावयव सुप् का लोप हो गया। 'वयसि दन्तस्य दतृ' सूत्र से दन्त शब्द को दतृ आदेश हो गया। ऋकार की

इत्संज्ञा तथा उसका लोप होने से उगित्वात् नुम् हो गया। सुलोप तथा संयोगान्त लोप करने पर 'द्विदन्' प्रयोग सिद्ध हुआ। इसी प्रकार 'चत्वारो दन्ता यस्य' इस विग्रह में 'चतुर्दन्' प्रयोग सिद्ध होगा।

(४८) **उत्काकुत्, विकाकुत् (प्रयोग)**—'उन्नतं काकुदं यस्य' इस विग्रह में 'प्रादिभ्यो धातुजस्य वाच्यो वा चोत्तरपदलोपः' इस वार्त्तिक से बहुव्रीहि समास तथा धातुज उत्तरपद का लोप हो गया। समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का भी लोप हो गया। 'उत् एवं वि के पर जो काकुद शब्द उसके अन्त्य का लोप हो' एतदर्थक 'उद्विभ्यां काकुदस्य' सूत्र से काकुद शब्द के अन्त्य अकार का लोप हो गया। सु विभक्ति लाने पर 'उत्काकुत्' प्रयोग सिद्ध हुआ। इसी प्रकार 'विगतं काकुदं यस्य' इस विग्रह में 'विकाकुत्' प्रयोग सिद्ध होता है। काकुद तालु को कहते हैं।

यदि काकुद से पहले पूर्ण शब्द रहेगा तो 'पूर्णाद्विभाषा' सूत्र से काकुद शब्द के अन्त्य अर्थात् अकार का वैकल्पिक लोप होने से 'पूर्णकाकुत्' तथा 'पूर्णकाकुदः' दोनों ही रूप बनेंगे।

(४९) **सुहृन्मित्रम्, दुर्हृदमित्रः (प्रयोग)**—'शोभनं हृदयं यस्य' इस विग्रह में 'अनेकमन्यपदार्थे' से बहुव्रीहि समास, समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लुक् तथा 'क्रमशः मित्र एवं अमित्र अर्थ में सु तथा दुर् शब्द से पर हृदय शब्द को हृद् आदेश हो' एतदर्थक 'सुहृद्दुर्हृदौ मित्रामित्रयोः' सूत्र से सुहृद् तथा दुर्हृद् ऐसा निपातन करने के कारण मित्र अर्थ में 'सुहृद्' ऐसा प्रयोग सिद्ध होता है। अमित्र अर्थ में 'दुष्टं हृदयं यस्य' इस विग्रह में 'दुर्हृद्' ऐसा प्रयोग होता है। जहाँ मित्र या अमित्र अर्थ नहीं विवक्षित रहता है वहाँ 'सुहृदयः', 'दुर्हृदयः' ऐसा ही प्रयोग होता है।

(५०) **व्यूढोरस्कः (प्रयोग)**—'व्यूढम् अर्थात् विशालम् उरः अर्थात् वक्षो यस्य' इस विग्रह में व्यूढ सु उरस् सु का 'अनेकमन्यपदार्थे' से बहुव्रीहि समास हुआ। समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लुक् हो गया। 'उरः आदि से बहुव्रीहि में समासान्त कप् प्रत्यय हो' एतदर्थक 'उरः प्रभृतिभ्यः कप्' सूत्र से समासान्त कप् प्रत्यय हुआ। अनुबन्धलोप, 'सोऽपदादौ' से विसर्ग को सत्व तथा विभक्तिकार्य करने पर 'व्यूढोरस्कः' प्रयोग सिद्ध हुआ।

(५१) **प्रियसर्पिष्कः (प्रयोग)**—'प्रियं सर्पिर्यस्य' इस विग्रह में प्रिय सु सर्पिष् सु का 'अनेकमन्यपदार्थे' से बहुव्रीहि समास हुआ। समासत्वात्

प्रातिपदिकावयव सुप् का लोप हो गया। 'उरःप्रभृतिभ्यः कप्' से समासान्त कप् प्रत्यय हुआ। अनुबन्धलोप, 'सोऽपदादौ' से विसर्ग को सत्व तथा 'इणः षः' से स को षत्व हुआ। सु विभक्ति, रुत्व एवं विसर्ग करने पर 'प्रियसर्पिष्कः' प्रयोग सिद्ध हुआ।

(५२) **बहुदण्डिका नगरी (प्रयोग)**—'दण्डः अस्ति अस्य' इस अर्थ में दण्ड शब्द से 'अत इनिठनौ' सूत्र से इनि प्रत्यय करने पर 'दण्डिन्' शब्द बनता है। 'बहवः दण्डिनः (सन्ति) यस्याम् (नगर्य्याम्)' इस विग्रह में बहु जस् दण्डिन् जस् का 'अनेकमन्यपदार्थे' से बहुव्रीहि समास हुआ। समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लोप हो गया। 'इन्नन्त बहुव्रीहि से स्त्रीत्व-विवक्षा में समासान्त कप् हो' एतदर्थक 'इन स्त्रियाम्' सूत्र से समासान्त कप् प्रत्यय हुआ। समुदाय से टाप् तथा सु विभक्ति में 'बहुदण्डिका' प्रयोग सिद्ध हुआ, जो नगरी का विशेषण है।

(५३) **महायशस्कः—महायशाः (प्रयोग)**—'महत् यशो यस्य' इस विग्रह में महत् सु यशस् सु का 'अनेकमन्यपदार्थे' से बहुव्रीहि समास हुआ। समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लोप हो गया। 'अनुक्त समासान्त शेषा-धिकारस्थ बहुव्रीहि से वैकल्पिक कप् प्रत्यय हो' एतदर्थक 'शेषाद्विभाषा' सूत्र से कप् प्रत्यय हुआ। अनुबन्धलोप, 'आन्महतः समानाधिकरणजातीययोः' से महत् शब्द को आकारान्तादेश हुआ, 'सोऽपदादौ' से विसर्ग को सत्व तथा विभक्तिकार्य करने पर 'महायशस्कः' प्रयोग सिद्ध हुआ। कप् के अभाव पक्ष मे 'अत्वसन्तस्य चाधातोः' से दीर्घ, सुलोप, सकार को रुत्व एवं विसर्ग करने पर 'महायशाः' प्रयोग सिद्ध होता है।

(५४) **बहुमालाकः, बहुमालकः, बहुमालः (प्रयोग)**—'बह्व्यः मालाः यस्य' इस विग्रह में बह्वी जस् का 'अनेकमन्यपदार्थे' से बहुव्रीहि समास हुआ। समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लोप हो गया। 'स्त्रियाः पुंवत्०' सूत्र से बह्वी शब्द को पुंवद्भाव हो जाने के कारण 'बह्वादिभ्यश्च' से विहित ङीष् की निवृत्ति हो गई। 'शेषाद्विभाषा' सूत्र से कप् प्रत्यय हो गया। 'गोस्त्रियोरुपसर्जनस्य' से प्राप्त ह्रस्व का 'न कपि' सूत्र से नित्यनिषेध प्राप्त हुआ, किन्तु 'आबन्त को कप् के परे विकल्प से ह्रस्व हो' एतदर्थक 'आपोऽन्य-तरस्याम्' सूत्र से वैकल्पिक ह्रस्व का विधान करने के कारण ह्रस्वाभावपक्ष

में 'बहुमालाकः' ह्रस्व होने पर 'बहुमालकः' प्रयोग सिद्ध हुआ। कप के अभाव में 'गोस्त्रियोरुपसर्जनस्य' से ह्रस्व होने के कारण 'बहुमालः' प्रयोग सिद्ध हुआ।

(५५) **बहुश्रेयान्, बहुश्रेयसी** (प्रयोग)— 'बहवः श्रेयांसः अस्य' इस विग्रह में बहु जस् श्रेयस् जस् का 'अनेकमन्यपदार्थे' से बहुव्रीहि समास हुआ। समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लोप हो गया। 'शेषाद्विभाषा' सूत्र से समासान्त कप् प्राप्त था, किन्तु 'ईयसन्तोत्तरपदक बहुव्रीहि से कप् नहीं हो' एतदर्थक 'ईयसश्च' सूत्र से कप् का निषेध होने से तथा सु विभक्ति लाने से 'बहुश्रेयान्' प्रयोग सिद्ध होता है। 'अतिशयेन प्रशस्यः या प्रशस्तः' इस अर्थ में 'द्विवचनविभज्योपपदे तरबीयसुनौ' से ईयसुन् तथा 'प्रशस्यस्य श्रः' से प्रशस्य को श्र आदेश, 'प्रकृत्यैकाच्' से श्र को प्रकृतिभाव होने के कारण भत्वात् अकार का लोप नहीं हुआ, अतः 'आद्गुणः' से गुण करने पर 'श्रेयस्' शब्द बनता है, जिसके 'श्रेयान्, श्रेयांसौ, श्रेयांसः' रूप पुंलिङ्ग में चलते हैं। स्त्रीलिङ्ग में 'श्रेयसी, श्रेयस्यौ, श्रेयस्यः' इस प्रकार रूप चलता है।

'बह्व्यः श्रेयस्यः अस्याः' इस विग्रह में बह्वी जस् श्रेयसी जस् का 'अनेकमन्यपदार्थे' से बहुव्रीहिसमास, समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लुक्, 'शेषाद्विभाषा' से प्राप्त कप् प्रत्यय का 'ईयसश्च' से निषेध, बह्वी शब्द को 'स्त्रियाः पुंवत्०' सूत्र से पुंवद्भाव, 'गोस्त्रियोरुपसर्जनस्य' से श्रेयसी शब्द के ईकार को प्राप्त ह्रस्व का 'ईयसन्त बहुव्रीहि को ह्रस्व नहीं हो' एतदर्थक 'ईयसो बहुव्रीहेर्नेति वाच्यम्' इस वार्तिक से निषेध, सु विभक्ति, तथा उसका लोप करने पर 'बहुश्रेयसी' प्रयोग सिद्ध होता है।

(५६) **प्रशस्तभ्राता, सुभ्राता** (**प्रयोग**)—'प्रशस्तो भ्राता अस्य' इस विग्रह में प्रशस्त सु भ्रातृ सु का 'अनेकमन्यपदार्थे' से बहुव्रीहि समास हुआ। समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लोप हो गया। 'शेषाद्विभाषा' से प्राप्त कप् का 'पूजार्थक जो भ्रातृशब्द तदन्त बहुव्रीहि से कप् नहीं हो' एतदर्थक 'वन्दिते भ्रातुः' सूत्र से निषेध किया गया। सु विभक्ति में 'प्रशस्तभ्राता' रूप सिद्ध हुआ।

इसी प्रकार 'शोभनो भ्राता अस्य' इस विग्रह में 'सुभ्राता' प्रयोग सिद्ध होगा।

(५७) **कण्ठेकालः (प्रयोग)**—'कण्ठे तिष्ठतीति कण्ठेस्थः'। यहाँ पर स्था धातु से 'सुपि स्थः' से क प्रत्यय करने पर स्थः सिद्ध होता है। 'कण्ठेस्थः कालो यस्य' इस विग्रह में 'सप्तम्युपमानपूर्वपदस्य' से बहुव्रीहि समास तथा स्थ शब्द का लोप हो गया 'अमूर्धमस्तकात् स्वाङ्गादकामे' सूत्र से सप्तमी विभक्ति का अलुक् हो गया। 'सप्तम्यन्त एवं विशेषणवाचक पद बहुव्रीहि में पूर्वप्रयुक्त होने चाहिए' एतदर्थक 'सप्तमीविशेषणे बहुव्रीहौ' सूत्र से कण्ठे इस सप्तम्यन्त का पूर्वप्रयोग हुआ। सु विभक्ति एवं रुत्व-विसर्ग करने पर 'कण्ठेकालः' प्रयोग सिद्ध हुआ।

(५८) **कृतकृत्यः (प्रयोग)**—'कृतं कृत्यं येन' इस विग्रह में कृत सु कृत्य सु का 'अनेकमन्यपदार्थे' से बहुव्रीहि समास हुआ। समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लोप हो गया। 'निष्ठा अर्थात् क्त-क्तवतु प्रत्ययान्त शब्द का बहुव्रीहि में पूर्वप्रयोग हो' एतदर्थक 'निष्ठा' इस सूत्र से क्त-प्रत्ययान्त कृत शब्द का पूर्वप्रयोग हुआ। समुदाय से सु विभक्ति, रुत्व एवं विसर्ग करने पर 'कृतकृत्यः' प्रयोग सिद्ध हुआ।

(५९) **आहिताग्निः—अग्न्याहितः (प्रयोग)**—'आहितः अग्निर्येन' इस विग्रह में आहित सु अग्नि सु का 'अनेकमन्यपदार्थे' से बहुव्रीहि समास हुआ। समासत्वात्प्रातिपदिकावयव सुप् का लोप हो गया। 'आहिताग्न्यादिगण-पठित शब्द के निष्ठान्ततदादि का विकल्प से पूर्वप्रयोग हो' एतदर्थक 'वाऽऽहिताग्न्यादिषु' सूत्र से आहित शब्द का वैकल्पिक पूर्वप्रयोग करने पर 'आहिताग्निः' तथा पूर्वप्रयोग न करने पर 'अग्न्याहितः' प्रयोग सिद्ध होगा।

(६०) **अस्युद्यतः, दण्डपाणिः (प्रयोग)**—'असिः उद्यतो येन' इस विग्रह में असि सु उद्यत सु का 'अनेकमन्यपदार्थे' से बहुव्रीहि समास हुआ। समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लोप हो गया। 'निष्ठा' सूत्र से क्त-प्रत्ययान्त उद्यत शब्द का पूर्वप्रयोग प्राप्त था, किन्तु 'प्रहरणार्थक अर्थात् आयुधार्थक शब्द के बाद ही निष्ठान्ततदादि तथा सप्तम्यन्ततदादि का प्रयोग हो' एतदर्थक 'प्रहरणार्थेभ्यः परे निष्ठासप्तम्यौ' इस वार्तिक से उद्यत शब्द का परप्रयोग किया गया। सु विभक्ति, रुत्व-विसर्ग करने पर 'अस्युद्यतः' प्रयोग सिद्ध हुआ।

इसी प्रकार 'दण्डः पाणौ यस्य' इस विग्रह में बहुव्रीहि समास करने के बाद सप्तम्यन्त होने के कारण यद्यपि पाणि शब्द का 'सप्तमीविशेषणे बहुव्रीहौ' से पूर्वप्रयोग प्राप्त था, किन्तु प्रस्तुत वार्तिक के कारण उसका परप्रयोग किया गया तथा प्रातिपदिकादि कार्य करने पर 'दण्डपाणिः' प्रयोग सिद्ध हुआ।

कहीं कहीं यह वार्त्तिक नहीं भी लगता है। जैसे-- विवृतासिः। यहाँ पर 'विवृतः असिः यस्य या येन' इस विग्रह में समास करने पर प्रहरणार्थक असि शब्द के बाद निष्ठान्त विवृत शब्द का प्रयोग होना चाहिए था, किन्तु 'निष्ठा' सूत्र से यहाँ निष्ठान्त विवृतशब्द का ही पूर्वप्रयोग हुआ है।

इस प्रकार बहुव्रीहिसमास-प्रकरण समाप्त हुआ।

द्वन्द्वसमास-प्रकरण

(१) चार्थे द्वन्द्वः (सूत्र)—इस सूत्र में 'सुबामन्त्रिते पराङ्गवत्स्वरे' सूत्र से 'सुप्' पद की अनुवृत्ति होती है। 'अनेकमन्यपदार्थे' से 'अनेकम्' पद की भी अनुवृत्ति होती है। 'समासः' तथा 'विभाषा' का भी अधिकार आता है। इस प्रकार 'जहाँ अनेक सुबन्त चार्थ में वर्त्तमान हों वहाँ द्वन्द्व समास होता है, विकल्प से' यही सूत्रार्थ फलित होता है। समुच्चय, अन्वाचय, इतरेतरयोग तथा समाहार—ये चार चार्थ हैं।

(क) समुच्चय—परस्पर निरपेक्ष अर्थ का एक अर्थ में अन्वय 'समुच्चय' कहलाता है। जैसे—'ईश्वरं गुरुश्च भजस्व'। यहाँ परस्पर निरपेक्ष ईश्वर और गुरुरूप पदार्थ एक भजनरूप अर्थ में अन्वित होता है, अतः यह समुच्चय हुआ। यह समुच्चय, एक क्रिया में द्रव्यद्वय का समुच्चय इस एक प्रकार का हुआ। एक द्रव्य में द्रव्यद्वय का समुच्चय होने का उदाहरण है—'राज्ञो गजश्चाऽश्वश्च'। यहाँ राजरूप द्रव्य में गज एवं अश्वरूप द्रव्यद्वय का समुच्चय हुआ, जो द्वितीय प्रकार है। तीसरा प्रकार है—एक द्रव्य में गुणद्वय का समुच्चय। जैसे—पटः रक्तो शुक्लश्च। यहाँ पटरूप एक द्रव्य में रक्त तथा शुक्लरूप गुणद्वय का समुच्चय हुआ। चौथा प्रकार है—एक गुण में द्रव्यद्वय का समुच्चय। जैसे—'रक्तः पटः कुण्डलश्च'। यहाँ रक्तरूप गुण में पटकुण्डलरूप द्रव्यद्वय का समुच्चय है। इस प्रकार के समुच्चय का ऊह करना चाहिए। परस्पर निरपेक्षता रहने से सामर्थ्य के अभाव में इन समुच्चयों के स्थल में समास (द्वन्द्व) नहीं होता।

(ख) अन्वाचय—जहाँ अन्यतर का आनुषङ्गिकत्वेन (प्रसङ्गवश) अन्वय हो, वह अन्वाचय है। जैसे—'भिक्षामट गां चानय'। यहाँ पर भिक्षार्थ अटन मुख्य विधेय है तथा गोकर्मकानयन आनुषङ्गिक। यहाँ पर मुख्य विधेय आनुषङ्गिक विधेयसापेक्ष नहीं है, क्योंकि भिक्षार्थ अटन निश्चित है। 'हो सके तो गाय को भी लेता आवे' यही अभिप्राय है। गोकर्मकानयन पर जोर नहीं है। दूसरी बात यह है कि एक क्रियान्वयित्वरूप सामर्थ्य भी नहीं है, अतः भिक्षा और गो का परस्परान्वयित्व नहीं है। भिक्षा को अटन-क्रिया के प्रति

तथा गो को आनयन-क्रिया के प्रति अन्वय रहने से परस्परान्वयित्वरूप सामर्थ्य के अभाव में यहाँ समास (द्वन्द्व) नहीं होता है। कदाचित् गाय को नहीं देखने पर उसका आनयनाऽसम्भव होने पर भी भिक्षार्थ अटन अनिवार्य है, अतः अनिवार्य एवं यथासंभव का परस्परान्वयित्वरूप सामर्थ्य दुर्लभ होने से समास नहीं होता है।

(ग) **इतरेतरयोग**—मिलितों का अन्वय इतरेतरयोग है। 'घटश्च अस्ति पटश्च अस्ति=घटपटौ स्तः'। यहाँ स्वकर्तृ-कर्तृकत्व सम्बन्ध से घट और पट-रूप अर्थ परस्पर मिलित हैं, अतः सामर्थ्य रहने से 'घटपटौ' ऐसा द्वन्द्व समास होता है। 'धवखदिरौ' आदि स्थलों में इतरेतरयोग ही है।

(घ) **समाहार**—समुदायार्थ का एक क्रिया में अन्वय समाहार है। जैसे—'संज्ञा च परिभाषा च तयोः समाहारः=संज्ञापरिभाषम्'। यहाँ 'संज्ञा-परिभाषा' का समुदायरूपेण एक क्रिया में अन्वित रहने से समाहार द्वन्द्व समास होता है।

(२) **राजदन्तादिषु परम् (सूत्र)**—इस सूत्र में 'उपसर्जनं पूर्वम्' सूत्र से 'पूर्वम्' की अनुवृत्ति आती है। 'राजदन्तादिगणपठित शब्दों में पूर्व-प्रयोग, योग्य पद का परप्रयोग हो' यही सूत्रार्थ है। जैसे—राजदन्तः।

'दन्तानां राजा' इस विग्रह में 'षष्ठी' सूत्र से तत्पुरुष समास हुआ। समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लुक् हो गया। उपसर्जनत्व होने पर तथा अप्रधान होने पर भी 'राजदन्तादिषु परम्' सूत्र के कारण दन्त शब्द का परप्रयोग हुआ। विभक्तिकार्य करने पर 'राजदन्तः' प्रयोग सिद्ध होता है।

(३) **धर्मादिष्वनियमः (वार्त्तिक)**—'धर्मादि शब्दों के विषय में यह नियम नहीं लगता है' यही वार्त्तिकार्थ है। अर्थात् किसी एक का नियतरूप से पूर्व या परप्रयोग नहीं होता। जैसे—'धर्मश्च अर्थश्च' इस विग्रह में 'चार्थे द्वन्द्वः' से समास तथा प्रातिपदिकावयव सुप् का लुक् होने पर 'धर्मादिष्वनियमः' के अनुसार किसी एक का नियतरूप से पूर्वप्रयोग न होने पर तथा विभक्ति-कार्य करने पर 'अर्थधर्मौ' तथा 'धर्मार्थौ' दोनों ही रूप सिद्ध होते हैं।

(४) **दम्पती, जम्पती, जायापती (प्रयोग)**—राजदन्तादिगण में 'जाया च पतिश्च' इस प्रकार के द्वन्द्व में जाया शब्द को दम्भाव तथा जम्भाव विकल्प से निपातित होता है। अतः 'दम्पती, जम्पती तथा जायापती'—ये तीनों रूप होते हैं। यह आकृतिगण है।

(५) हरिहरौ (प्रयोग)—'हरिश्च हरश्च' इस विग्रह में 'चार्थे द्वन्द्वः' से द्वन्द्व समास हुआ। समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लोप हो गया। 'द्वन्द्व समास में घिसंज्ञक का नियत पूर्वप्रयोग हो' एतदर्थक 'द्वन्द्वे घि' सूत्र से घिसंज्ञक हरि शब्द का ही पूर्वप्रयोग हुआ। समुदाय से औ विभक्ति आने पर 'हरिहरौ' प्रयोग सिद्ध हुआ।

(६) हरिगुरुहराः–हरिहरगुरवः—'हरिश्च हरश्च गुरुश्च' इस विग्रह में 'चार्थे द्वन्द्वः' से द्वन्द्व समास हुआ। समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लोप हो गया। यहाँ पर हरि शब्द तथा गुरु शब्द दोनों ही घिसंज्ञक है, अतः 'द्वन्द्वे घि' सूत्र से किसका पूर्वप्रयोग हो? इस आशङ्का में 'अनेकप्राप्तावेकत्र नियमोऽनियमः शेषे' इस वार्तिक की प्रवृत्ति हुई। 'अनेक घिसंज्ञक शब्दों का जहाँ द्वन्द्व समास हो वहाँ एक का नियतरूप से पूर्वनिपात हो तथा अन्य के विषय में कोई नियम न हो' यही वार्तिकार्थ है। तदनुसार हरिशब्द का नियत पूर्वप्रयोग होने से एवं अन्य गुरु शब्द के विषय में अनियम होने से प्रथम प्रयोग में गुरु शब्द का पूर्वप्रयोग तथा द्वितीय प्रयोग में परप्रयोग किया गया। हरि शब्द का दोनों ही प्रयोगों में नियतरूप से पूर्वप्रयोग ही हुआ। समुदाय से जस् विभक्ति लाने पर 'हरिगुरुहराः' तथा 'हरिहरगुरवः' प्रयोग सिद्ध हुए।

(७) अजाद्यदन्तम् (सूत्र)—इस सूत्र में 'उपसर्जनं पूर्वम्' सूत्र से 'पूर्वम्' की अनुवृत्ति आती है। 'द्वन्द्व समास में अजादि अदन्त शब्द का पूर्वप्रयोग हो' यही सूत्रार्थ है। उदाहरण है—ईशकृष्णौ। 'ईशश्च कृष्णश्च' इस विग्रह में 'चार्थे द्वन्द्वः' से समास हुआ। समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लोप हो गया। 'अजाद्यदन्तम्' सूत्र से अजादि अदन्त होने के कारण ईश शब्द का ही पूर्वप्रयोग हुआ, कृष्णशब्द का नहीं। समुदाय से औ विभक्ति आने पर 'ईशकृष्णौ' प्रयोग सिद्ध हुआ। यदि अजादि अदन्त शब्द बहुत हो तो पूर्वप्रयोग से सम्बद्ध यह निश्चित नियम नहीं रहता है। जैसे—'अश्वश्च रथश्च इन्द्रश्च' इस विग्रह में 'अश्वरथेन्द्राः' भी होगा तथा 'इन्द्राश्वरथाः' भी होगा।

(८) अल्पाच्तरम् (सूत्र)—इस सूत्र में 'उपसर्जनं पूर्वम्' से 'पूर्वम्' की अनुवृत्ति आती है। 'द्वन्द्वसमासघटक जो अल्प अच्वाला शब्द उसका नियत पूर्वप्रयोग हो' यही सूत्रार्थ है। उदाहरण है—शिवकेशवौ।

'शिवश्च केशवश्च' इस विग्रह में 'चार्थे द्वन्द्वः' से द्वन्द्व समास हुआ। समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लोप हो गया। शिव शब्द में दो अच् हैं, जब कि केशव शब्द में तीन अच् हैं, इसलिए 'अल्पाच्तरम्' सूत्र से केशव शब्द की अपेक्षा अल्प अच्‌वाले शिव शब्द का नियत पूर्वप्रयोग हुआ। समुदाय से औ विभक्ति आने पर 'शिवकेशवौ' प्रयोग सिद्ध होता है।

(९) **हेमन्तशिशिरवसन्ताः, कृत्तिकारोहिण्यौ (प्रयोग)**—'हेमन्तश्च शिशिरश्च वसन्तश्च' इस विग्रह में 'चार्थे द्वन्द्वः' सूत्र से समास हुआ। समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लोप हो गया। 'समानाक्षरक जो ऋतु तथा नक्षत्रवाची शब्द उनको द्वन्द्व समास में ऋतुओं के प्रादुर्भावकृत आनुपूर्व्य से तथा नक्षत्रवाचकों का उदयकृत आनुपूर्व्य से पूर्वप्रयोग हो' एतदर्थक 'ऋतुनक्षत्राणां समाक्षराणामानुपूर्व्येण' इस वार्तिक से हेमन्त शब्द का पूर्वप्रयोग हुआ, क्योंकि वसन्त से पूर्व शिशिर तथा शिशिर से पूर्व हेमन्त का प्रादुर्भाव होता है। इसीलिए सर्वप्रथम हेमन्त शब्द को, तदनन्तर शिशिर शब्द को रखने के बाद अन्त में वसन्त शब्द को रखा गया है। समुदाय से जस् विभक्ति लाने पर 'हेमन्तशिशिरवसन्ताः' प्रयोग सिद्ध होता है।

इसी प्रकार 'कृत्तिका च रोहिणी च' इस विग्रह में 'चार्थे द्वन्द्वः' से समास, समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लोप तथा उदयकृत अनुपूर्व्य के अनुसार कृत्तिका शब्द का प्रस्तुत वार्तिक से पूर्वप्रयोग, एवं समुदाय से औ विभक्ति लाने पर 'कृत्तिकारोहिण्यौ' प्रयोग सिद्ध होता है। वार्तिक में 'समाक्षराणाम्' कहने के कारण ही 'ग्रीष्मवसन्तौ' में प्रादुर्भावकृत आनुपूर्व्य के अनुसार वसन्त शब्द का पूर्वप्रयोग नहीं हुआ है।

(१०) **कुशकाशम् (प्रयोग)**—'कुशश्च काशश्च' इस विग्रह में 'चार्थे द्वन्द्वः' से समाहार में द्वन्द्व समास हुआ। समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लुक हुआ। 'द्वन्द्व समास में लघु अक्षरवाले शब्द का पूर्वप्रयोग हो' एतदर्थक 'लघ्वक्षरं पूर्वम्' इस वार्तिक से लघु अक्षर वाले कुश शब्द का ही पूर्वप्रयोग हुआ, गुरु अक्षरवाले काश शब्द का नहीं'। 'स नपुंसकम्' से नपुंसकत्व होने के कारण सु को अमादेश, पूर्वरूप करने पर 'कुशकाशम्' प्रयोग सिद्ध हुआ।

(११) **तापसपर्वतौ (प्रयोग)**—'तापसश्च पर्वतश्च' इस विग्रह में 'चार्थे द्वन्द्वः' सूत्र से द्वन्द्व समास हुआ। समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का

लोप हो गया। 'अभ्यर्हित अर्थात् पूजितवाचक शब्द का द्वन्द्व समास में पूर्व-प्रयोग हो' एतदर्थक 'अभ्यर्हितं च' इस वार्त्तिक से पर्वत की अपेक्षा अभ्यर्हित अर्थात् पूजित या श्रेष्ठ होने के कारण तापस शब्द का पूर्वप्रयोग हुआ। समुदाय से औ विभक्ति के आने पर 'तापसपर्वतौ' प्रयोग सिद्ध होता है।

(१२) **ब्राह्मणक्षत्रियविट्शूद्राः (प्रयोग)**—'ब्राह्मणश्च क्षत्रियश्च विट् च शूद्रश्च' इस विग्रह में 'चार्थे द्वन्द्वः' से समास हुआ। समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लोप हो गया। 'वर्ण अर्थात् जातिवाचक शब्दों का द्वन्द्व समास में आनुपूर्व्य से अर्थात् क्रमशः प्रयोग हो' एतदर्थक 'वर्णानामानुपूर्व्येण' इस वार्त्तिक से ब्राह्मणादि शब्दों का क्रमिक पूर्वप्रयोग हुआ। समुदाय से जस् विभक्ति आने पर 'ब्राह्मणक्षत्रियविट्शूद्राः' प्रयोग सिद्ध हुआ।

(१३) **युधिष्ठिरार्जुनौ (प्रयोग)**—'युधिष्ठिरश्च अर्जुनश्च' इस विग्रह में 'चार्थे द्वन्द्वः' से समास हुआ। समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लोप हो गया। 'बड़े भाई के वाचक शब्द का द्वन्द्व समास में नियत पूर्वप्रयोग हो' एतदर्थक 'भ्रातुर्ज्यायसः' इस वार्त्तिक से युधिष्ठिर शब्द का पूर्वप्रयोग हुआ। समुदाय से औ विभक्ति आने पर 'युधिष्ठिरार्जुनौ' प्रयोग सिद्ध होता है।

(१४) **द्वन्द्वश्च प्राणितूर्यसेनाङ्गानाम् (सूत्र)**—'प्राण्यङ्गों, तूर्याङ्गों तथा सेनाङ्गों के वाचकों के द्वन्द्व में एकवद्भाव हो' यही सूत्रार्थ है। उदाहरण है पाणिपादम् आदि।

'पाण्योश्च पादयोश्च समाहारः' इस विग्रह में पाणि ओस् पाद ओस् का 'चार्थे द्वन्द्वः' सूत्र से समाहारद्वन्द्व समास हुआ। समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लोप हो गया। यहाँ पर पाणि तथा पाद चूंकि प्राण्यङ्ग-वाचक हैं, अतः इनके द्वन्द्व को एकवद्भाव हो गया। 'स नपुंसकम्' से नपुंसकत्व करने के कारण सु विभक्ति को अमादेश तथा पूर्वरूप करने पर 'पाणिपादम्' सिद्ध हुआ।

इसी प्रकार 'मार्दङ्गिकश्च पाणविकश्च इत्यनयोः समाहारः' इस विग्रह में 'चार्थे द्वन्द्वः' से समाहार द्वन्द्व समास हुआ। समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लोप हो गया। तूर्याङ्गवाचक होने के कारण यहाँ पर एकवद्भाव हुआ। 'स नपुंसकम्' से नपुंसकत्व होने के कारण 'मार्दङ्गिकपाणविकम्' प्रयोग सिद्ध हुआ।

इसी प्रकार सेनाङ्गवाचक का उदाहरण है—रथिकाश्वरोहम् । यहाँ पर 'रथिकश्च अश्वारोहश्च इत्यनयोः समाहारः' इस विग्रह में समाहारद्वन्द्व तथा एकवद्भावादि करने पर 'रथिकाश्वारोहम्' प्रयोग सिद्ध होता है ।

(१५) **अनुवादे चरणानाम्** (सूत्र)—इस सूत्र में 'द्विगुरेकवचनम्' से 'एकवचनम्' की अनुवृत्ति आती है तथा 'समाहारग्रहणं कर्त्तव्यम्' इस वार्तिक की भी अनुवृत्ति आती है 'अनुवाद अर्थात् अवगत अर्थ का प्रतिपादन यदि होता रहे तो चरणवाचकों का परस्पर द्वन्द्व एकवत् हो' । 'स्थेणोर्लुङीति वक्तव्यम्' इस वार्तिक के कारण—'स्था तथा इण् धातु के लुङन्त रूप का प्रयोग होने पर ही यह विधान हो' यह अर्थ भी इसमें जुड़ जाता है । उदाहरण है—उदगात् कठकालापम् आदि ।

'कठानां कालापानाञ्च समाहारः' इस विग्रह में 'चार्थे द्वन्द्वः' से समाहार द्वन्द्व समास हुआ । समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लोप हो गया । कठ शब्द तथा कालाप शब्द चूँकि चरणवाचक अर्थात् वैदिक शाखा के अध्येतृ-विशेषवाचक हैं, इसलिए यहाँ 'अनुवादे चरणानाम्' सूत्र से एकवद्भाव हुआ । 'स नपुंसकम्' से नपुंसकत्व होने से सु विभक्ति में 'कठकालापम्' सिद्ध हुआ । यहाँ पर उदगात् यह उत् उपसर्गपूर्वक इण् धातु का प्रयोग हुआ है, इसीलिए एकवद्भाव का विधान यहाँ पर हुआ है । इस प्रकार 'उदगात् कठकालापम्' प्रयोग सिद्ध होता है ।

इसी प्रकार 'प्रत्यष्ठात्' इस तरह स्था धातु का लुङन्त प्रयोग होने पर 'कठानां कौथुमानाञ्च समाहारः' इस विग्रह में समाहार द्वन्द्व समास, विभक्ति का लुक्, प्रस्तुत सूत्र से एकवद्भाव, 'स नपुंसकम्' से नपुंसकत्व तथा सु विभक्ति आने पर 'प्रत्यष्ठात् कठकौथुमम्' प्रयोग सिद्ध होता है ।

(१६) **अर्काश्वमेधम् (प्रयोग)**—इस सूत्र में भी 'एकवचनम्' की अनुवृत्ति आती है । 'यजुर्वेद में विहित जो क्रतुशब्द तद्वाचक अनपुंसक लिङ्गी शब्दों का द्वन्द्व एकवत् हो' यही सूत्रार्थ है । उदाहरण है—अर्काश्वमेधम् ।

'अर्कस्य अश्वमेधस्य च समाहारः' इस विग्रह में 'चार्थे द्वन्द्वः' सूत्र से समाहार द्वन्द्व समास हुआ । समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लोप हो गया । अर्क तथा अश्वमेध क्रतुवाची तथा अनपुंसक हैं, अतः यहाँ प्रस्तुत सूत्र से एकवद्भाव हुआ । 'स नपुंसकम्' से नपुंसकत्व तथा सु विभक्ति आने से 'अर्काश्वमेधम्' प्रयोग सिद्ध हुआ ।

(१७) **अध्ययनतोऽविप्रकृष्टाख्यानाम्** (सूत्र)—इस सूत्र में भी 'एकवचनम्' तथा 'समाहारग्रहणं कर्त्तव्यम्' से 'समाहार' पद की अनुवृत्ति आती है। 'अध्ययन से प्रत्यासन्न अर्थात् समीप रहे आख्या जिनकी उन्हें समाहार द्वन्द्व एकवद्भाव हो' यही सूत्रार्थ है। उदाहरण है—पदकक्रमकम्।

'पदकानां क्रमकाणां च समाहारः' इस विग्रह में 'चार्थे द्वन्द्वः' सूत्र से समाहार द्वन्द्व समास हुआ। समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लोप हो गया। पदक तथा क्रमक शब्द चूँकि अध्ययन के निकटवर्ती नामवाले शब्द हैं, अतः प्रस्तुत सूत्र से यहाँ उन्हें एकवद्भाव हो गया। 'स नपुंसकम्' से नपुंसकत्व होने से सु विभक्ति आने पर 'पदकक्रमकम्' प्रयोग सिद्ध हुआ।

(१८) **जातिरप्राणिनाम्** (सूत्र)—इस सूत्र में 'द्विगुरेकवचनम्' से 'एकवचनम्' की अनुवृत्ति आती है। 'प्राणिवर्जित जातिवाचक पदों के द्वन्द्व में एकवद्भाव हो' यही सूत्रार्थ है। उदाहरण है—धानाशष्कुलि।

'धानाश्च शष्कुल्यश्च तासां समाहारः' इस विग्रह में 'चार्थे द्वन्द्वः' सूत्र से समाहार द्वन्द्व हुआ। समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लोप हो गया। धाना तथा शष्कुली शब्द चूंकि प्राणिवर्जित जातिवाचक शब्द हैं तथा इनका चूंकि समाहार द्वन्द्व हुआ है, अतः प्रकृत सूत्र से इन्हे एकवद्भाव हो गया। 'स नपुंसकम्' से नपुंसकत्व होने के कारण 'ह्रस्वो नपुंसके प्रातिपदिकस्य' से ह्रस्व हो गया एवं सु विभक्ति का लोप करने पर 'धानाशष्कुलि' प्रयोग सिद्ध हुआ। सूत्र में 'अप्राणिनाम्' कहने के कारण ही 'विशश्च शूद्राश्च तेषां समाहारः' इस विग्रह में 'विट्छूद्राः' ही होता है। यहाँ पर एकवद्भाव नहीं हुआ है।

(१९) **विशिष्टलिङ्गो नदीदेशोऽग्रामाः** (सूत्र)—इस सूत्र में 'एकवचनम्' तथा 'समाहारग्रहणं कर्त्तव्यम्' की अनुवृत्ति आती है। 'ग्रामवर्जित नदीवाचक तथा देशवाचक भिन्नलिङ्ग पदों को समाहार द्वन्द्व में एकवद्भाव हो' यही सूत्रार्थ है। इसके उदाहरण है—उद्ध्येरावति आदि।

'उद्ध्यश्च इरावती च तयोः समाहारः' इस अर्थ में 'चार्थे द्वन्द्वः' इस सूत्र से समाहार द्वन्द्व समास हुआ। समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लोप हो गया। सूत्र में नदी शब्द से नद का भी ग्रहण किया जाता है, अन्यथा भिन्न लिङ्गत्व की प्राप्ति असम्भव हो जाएगी, इसीलिए प्रस्तुत स्थल में उद्ध्य इस नदवाचक तथा इरावती इस नदीवाचक ग्रामभिन्न तथा भिन्नलिङ्गपदों का द्वन्द्व होने से प्रस्तुत सूत्र से एकवद्भाव हुआ। 'स नपुंसकम्' से नपुंसकत्व

होने से 'ह्रस्वो नपुंसके प्रातिपदिकस्य' से ह्रस्व तथा सु का लोप करने पर 'उद्ध्येरावति' प्रयोग सिद्ध होता है।

इसी प्रकार 'गङ्गा च शोणश्च तयोः समाहारः' इस अर्थ में समाहार द्वन्द्व समास, विभक्ति का लुक्। प्रस्तुत सूत्र से एकवद्भाव, 'स नपुंसकम्' से नपुंसकत्व, सु को अमादेश एवं पूर्वरूप करने पर 'गङ्गाशोणम्' प्रयोग सिद्ध होता है।

'कुरवश्च कुरुक्षेत्रं च' ऐसा विग्रह करने पर द्वन्द्व समास, प्रातिपदिकावयव सुप् का लुक् हो गया। कुरु शब्द पुंल्लिङ्ग तथा कुरुक्षेत्र शब्द नपुंसकलिङ्ग में है, अतः दोनों परस्पर भिन्नलिङ्गी हैं एवं ग्रामवर्जित देशवाची हैं, अतः इनका द्वन्द्व होने से प्रस्तुत सूत्र से एकवद्भाव हो गया। 'स नपुंसकम्' से नपुंसकत्व होने के कारण सु विभक्ति आने पर 'कुरुकुरुक्षेत्रम्' प्रयोग सिद्ध होता है।

(२०) **क्षुद्रजन्तवः (सूत्र)**—'क्षुद्रजन्तुवाचक पदों को समाहार द्वन्द्व में एकवद्भाव हो' यही सूत्रार्थ है। उदाहरण है—यूकालिक्षम्।

'यूकाश्च लिक्षाश्च' इस विग्रह में 'चार्थे द्वन्द्वः' से समाहार अर्थ में द्वन्द्व समास हुआ। समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लोप हो गया। 'क्षुद्रजन्तवः' सूत्र से एकवद्भाव हो गया। 'स नपुंसकम्' से नपुंसकत्व होने के कारण सु विभक्ति में 'यूकालिक्षम्' प्रयोग सिद्ध होता है। अत्यधिक केशवाले शिरःप्रदेश में पसीने से उत्पन्न नन्हे-नन्हे जन्तुविशेष को यूका कहा जाता है, जिसे 'जूं' कहते हैं। उससे भी छोटा लीख होता है। वह भी बालों में ही रहता है तथा पसीने से ही उत्पन्न होता है। उसी को लिक्ष कहा जाता है। भाष्यकार के अनुसार नेवलापर्यन्त प्राणियों को क्षुद्रप्राणी माना जाता है।

(२१) **येषां च विरोधः शाश्वतिकः (सूत्र)**—'जिनका सतत विरोध रहे ऐसे जीवों के वाचक पदों के द्वन्द्व में एकवद्भाव हो' यही सूत्रार्थ है। उदाहरण है—अहिनकुलम्, गोव्याघ्रम् आदि।

'अहयश्च नकुलाश्च' इस विग्रह में 'चार्थे द्वन्द्वः' से समाहार में द्वन्द्व समास हुआ। समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लोप हो गया। अहि अर्थात् सर्प तथा नकुल अर्थात् नेवला का विरोध शाश्वतिक है, अतः यहाँ पर उन दोनों का समाहार द्वन्द्व होने के बाद प्रस्तुत सूत्र से एकवद्भाव हो गया।

'स नपुंसकम्' से नपुंसकत्व करने पर सु विभक्ति में 'अहिनकुलम्' प्रयोग सिद्ध हुआ।

'गावश्च व्याघ्राश्च' इस विग्रह में 'चार्थे द्वन्द्वः' से समाहार द्वन्द्व समास हुआ। समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लोप हो गया। गो तथा व्याघ्र का शाश्वतिक विरोध प्रसिद्ध ही है, अतः द्वन्द्व होने पर प्रस्तुत सूत्र से एकवद्भाव, 'स नपुंसकम्' से नपुंसकत्व तथा सु विभक्ति आने पर 'गोव्याघ्रम्' प्रयोग सिद्ध होता है।

इसी प्रकार 'काकाश्च उलूकाश्च' इस विग्रह में 'चार्थे द्वन्द्वः' से समाहार रूप चार्थ में द्वन्द्व समास हुआ। समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लोप हो गया। काक एवं उलूक का विरोध चूंकि शाश्वतिक है, अतः प्रस्तुत सूत्र से यहाँ एकवद्भाव हो गया। 'स नपुंसकम्' से नपुंसकत्व तथा सु विभक्ति में 'काकोलूकम्' प्रयोग सिद्ध होता है।

गोव्याघ्रम् तथा काकोलूकम् प्रयोगों में 'विभाषा वृक्षमृगतृणधान्य०' इस सूत्र से परत्वात् प्राप्त को 'येषां च विरोधः शाश्वतिकः' सूत्रस्थ चकार से बाध होता है।

(२२) **शूद्राणामनिरवसितानाम्** (सूत्र)–जिनके द्वारा खाये गये पात्र (बर्तन) राख, जल आदि से साफ किये जाने पर भी शुद्ध नहीं हो, ऐसे चाण्डाल मृतप आदि गाँव से बाहर रहने के कारण निरवसित शूद्र कहलाते हैं। उनसे भिन्न अर्थात् जो गाँव के अन्दर रहते हैं तथा जिनके खाने से बर्तन को संस्कार के द्वारा शुद्ध किया जा सकता है, ऐसे शूद्रों को अनिरवसित शूद्र कहा जाता है।

'अनिरवसित अर्थात् अबहिष्कृत शूद्रवाचक पदों के द्वन्द्व में एकवद्भाव हो' यही सूत्रार्थ है। उदाहरण है—तक्षायस्करम्।

'तक्षाश्च अयस्काराश्च (बढ़ई और लुहार)' इस विग्रह में 'चार्थे द्वन्द्वः' सूत्र से समाहाररूप चार्थ में द्वन्द्व समास हुआ। समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लोप हो गया। तक्ष एवं अयस्कर अर्थात् बढ़ई एवं लुहार चूंकि अनिरवसित शूद्र हैं, अतः यहाँ पर तक्ष एवं अयस्कर शब्दों का द्वन्द्व होने के कारण प्रस्तुत सूत्र से एकवद्भाव हो गया। 'स नपुंसकम्' से नपुंसकत्व तथा सु विभक्ति आने पर 'तक्षायस्करम्' प्रयोग सिद्ध होता है।

बहिष्कृत शूद्रवाचकों का जहाँ समाहार द्वन्द्व होता है, वहाँ एकवद्भाव नहीं होता है। जैसे—'चाण्डालाश्च मृतपाश्च=चाण्डालमृतपाः'।

(२३) **प्लक्षन्यग्रोधम्, रुरुपृषतम्** आदि (**प्रयोग**)—'प्लक्षाश्च न्यग्रोधाश्च' इस विग्रह में 'चार्थे द्वन्द्वः' सूत्र से समाहार में द्वन्द्व समास हुआ। समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लोप हो गया। 'विभाषा वृक्षमृगतृणधान्यव्यञ्जनपशुशकुन्यश्ववडवपूर्वापराधरोत्तराणाम्' सूत्र से एकवद्भाव हुआ। 'स नपुंसकम्' से नपुंसकत्व तथा सु विभक्ति आने पर 'प्लक्षन्यग्रोधम्' प्रयोग सिद्ध हुआ।

एकवद्भाव के अभाव पक्ष में जस् विभक्ति आने पर 'प्लक्षन्यग्रोधाः' प्रयोग सिद्ध होता है।

इसी प्रकार रुरवश्च पृषताश्च' इस विग्रह में 'रुरुपृषतम्' तथा 'रुरुपृषताः' प्रयोग सिद्ध होगा।

(२४) **आनङ् ऋतो द्वन्द्वे** (**सूत्र**)—'विद्यायोनिसम्बन्धवाची ऋदन्त पदों को उत्तरपद के परे आनङ् आदेश हो द्वन्द्व में' यही सूत्रार्थ है। उदाहरण है—होतापोतारौ, होतृपोतृनेष्टोद्गातारः, मातापितरौ।

'होता च पोता च' इस विग्रह में होतृ सु पोतृ सु का 'चार्थे द्वन्द्वः' सूत्र से समास हुआ। समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लोप हो गया। प्रस्तुत सूत्र से पोतृ शब्द के परे होतृ शब्द को आनङ् आदेश हो गया। अनुबन्धलोप, रपरत्व, समुदाय से औ विभक्ति आने पर 'होतापोतारौ' प्रयोग सिद्ध हुआ।

इसी प्रकार 'होता च पोता च नेष्टा च उद्गाता च' इस विग्रह में 'चार्थे द्वन्द्वः' से समास, समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लोप तथा 'आनङ् ऋतो द्वन्द्वे' से उद्गातृ शब्द के परे नेष्टृ शब्द को आनङ् आदेश हुआ एवं समुदाय से जस् विभक्ति आने पर 'होतृपोतृनेष्टोद्गातारः' प्रयोग सिद्ध हुआ।

(२५) **मातापितरौ** (**प्रयोग**)—'माता च पिता च' इस विग्रह में 'चार्थे द्वन्द्वः' से द्वन्द्वसमास हुआ। समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लोप हो गया। 'पिता मात्रा' सूत्र से एकशेष के विकल्प पक्ष में 'आनङ् ऋतो द्वन्द्वे' सूत्र से पितृ शब्द के परे मातृ शब्द को आनङ् आदेश हो गया। विभक्तिकार्य करने पर 'मातापितरौ' प्रयोग सिद्ध हुआ। 'पिता मात्रा' सूत्र से पितृ शब्द का एकशेष होने से 'पितरौ' रूप निष्पन्न होता है।

(२६) **पितापुत्रौ (प्रयोग)**—'आनङ् ऋतो द्वन्द्वे' सूत्र में 'पुत्रेऽन्यतरस्याम्' सूत्र से 'पुत्रे' की अनुवृत्ति आने के कारण पुत्र शब्द के परे भी ऋदन्त को आनङ् आदेश का विधान होने से 'पिता च पुत्रश्च' इस विग्रह में द्वन्द्व समासादि के बाद पुत्र शब्द के परे पितृ शब्द को आनङ् आदेश होता है। औ विभक्ति आने पर 'पितापुत्रौ' रूप सिद्ध होता है।

(२७) **मित्रावरुणौ (प्रयोग)**—'मित्रश्च वरुणश्च' इस विग्रह में 'चार्थे द्वन्द्वः' से द्वन्द्व समास हुआ। समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लोप हो गया 'देवतावाचक पदों के द्वन्द्व समास में उत्तरपद के परे पूर्वपद को आनङ् आदेश हो' एतदर्थक 'देवताद्वन्द्वे च' सूत्र से वरुण शब्द के परे मित्र शब्द को आनङ् आदेश हुआ। आनङ् में आन् अवशिष्ट रहा। नकार का लोप, तथा औ विभक्ति आने पर 'मित्रावरुणौ' प्रयोग सिद्ध होता है।

यदि देवतावाचक पदों के द्वन्द्व समास में वायु शब्द का प्रयोग हो तो वहाँ उत्तरपद के परे पूर्वपद को 'वायुशब्दप्रयोगे प्रतिषेधः' इस वार्तिक के कारण आनङ् आदेश नहीं होता हैं। जैसे—'अग्निश्च वायुश्च अग्निवायू' या 'वायुश्च अग्निश्च वाय्वग्नी'।

(२८) **अग्निष्टुत्, अग्निष्टोमः (प्रयोग)**—'अग्निः स्तूयतेऽस्मिन् यज्ञे' इस अर्थ में 'अग्निष्टुत्' सिद्ध होता है। यहाँ पर बाहुलकात् कर्मरूपार्थ में क्विप्, तुक्, 'अग्नि शब्द से पर स्तुत्, स्तोम तथा सोम शब्दों के सकार को षकार हो' एतदर्थक 'अग्नेः स्तुत्स्तोमसोमाः' सूत्र से सकार को षकार हो गया। ष्टुत्व तथा सुलोप करने पर 'अग्निष्टुत्' प्रयोग सिद्ध होता है।

इसी प्रकार 'अग्नीनां स्तोमः' इस विग्रह में षष्ठी तत्पुरुष समास विभक्ति का लुक्, प्रस्तुत सूत्र से सकार को षकार, ष्टुत्व तथा विभक्तिकार्य करने पर 'अग्निष्टोमः' प्रयोग सिद्ध होता है। सोमयाग की संस्थाओं में यह पहली संस्था अग्निष्टोम शब्द से जानी जाती है।

(२९) **अग्नीषोमौ, अग्नीवरुणौ (प्रयोग)**—'अग्निश्च सोमश्च' इस विग्रह में 'चार्थे द्वन्द्वः' सूत्र से द्वन्द्व समास हुआ। समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लोप हो गया। 'देवतावाचक पदों के द्वन्द्व समास में सोम एवं वरुण शब्दों के परे अग्नि शब्द को ईकारान्तादेश हो' एतदर्थक 'ईदग्नेः सोमवरुणयोः' सूत्र से अग्नि शब्द को ईकारान्तादेश हो गया। 'अग्नेः स्तुत्-

स्तोमसोमाः' सूत्र से सकार को षकार हो गया तथा समुदाय से औ विभक्ति आने पर 'अग्नीषोमौ' प्रयोग सिद्ध हुआ।

इसी प्रकार 'अग्निश्च वरुणश्च' इस विग्रह में 'चार्थे द्वन्द्वः' से द्वन्द्व समास हुआ। समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लोप हो गया। वरुण शब्द के पर अग्निशब्द को 'ईदग्नेः सोमवरुणयोः' सूत्र से ईकारान्तादेश हो गया। समुदाय से औ विभक्ति आने पर 'अग्नीवरुणौ' प्रयोग सिद्ध हुआ।

(३०) **आग्निमारुतम्, आग्निवारुणम् (प्रयोग)**—'अग्निश्च मरुच्च' इस विग्रह में 'चार्थे द्वन्द्वः' से द्वन्द्व समास, समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लोप, 'देवताद्वन्द्वे च' सूत्र से मरुत् शब्द के पर अग्नि शब्द को आनङ् आदेश तथा औ विभक्ति लाने पर 'अग्नामरुतौ' प्रयोग सिद्ध होता है। अब 'अग्नामरुतौ देवते अस्य' इस अर्थ में 'सास्य देवता' से अण् प्रत्यय, 'देवताद्वन्द्वे च' सूत्र से उभयपद के आदि अच् की वृद्धि 'इद्वृद्धौ' सूत्र से अग्नि को इकारान्तादेश, सु विभक्ति, उसे अमादेश तथा पूर्वरूप करने पर 'आग्निमारुतम्' प्रयोग सिद्ध होता है। यह कर्म का विशेषण है

इसी प्रकार 'अग्निश्च वरुणश्च' इस विग्रह में 'चार्थे द्वन्द्वः' से द्वन्द्व समास, समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लोप, 'ईदग्नेः सोमवरुणयोः' सूत्र से वरुण शब्द के परे अग्नि शब्द को ईकारान्तादेश करने पर 'अग्नीवरुणौ' प्रयोग सिद्ध होता है। अब 'अग्नीवरुणौ देवते अस्य' इस अर्थ में 'सास्य देवता' से अण् प्रत्यय, तद्धितान्तत्वात् प्रातिपदिक संज्ञा तथा प्रातिपदिकावयव सुप् का लोप हो जाता है। 'देवताद्वन्द्वे च' सूत्र से उभयपद के आदि की वृद्धि होती है 'इद्वृद्धौ' सूत्र से अग्नि शब्द को इकारान्तादेश होता है। भसंज्ञा, 'यस्येति च' से अकार का लोप, सु, अम् तथा पूर्वरूप करने पर 'आग्निवारुणम्' प्रयोग सिद्ध होता है।

'आग्निमारुतम्' तथा 'आग्निवारुणम्' इन दोनों ही प्रयोगों में समासादि तथा अण् प्रत्ययादि के बाद उभयपद को वृद्धि करने के बाद 'देवताद्वन्द्व में वृद्धिमान् उत्तरपद के परे अग्नि शब्द को इदादेश अर्थात् इकारान्तादेश हो' इस अर्थवाले 'इद्वृद्धौ' सूत्र से अग्नि शब्द को इकारान्तादेश होने के कारण 'आग्निमारुतम्' तथा 'आग्निवारुणम्' प्रयोग सिद्ध होते हैं।

(३१) **आग्नावैष्णवम् (प्रयोग)**—'अग्निश्च विष्णुश्च' इस विग्रह में 'चार्थे द्वन्द्वः' सूत्र से द्वन्द्व समास हुआ। समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप्

का लोप हो गया। 'देवताद्वन्द्वे च' सूत्र से विष्णु शब्द के परे अग्नि शब्द को आनङादेश करने पर तथा औ विभक्ति आने पर 'अग्नाविष्णू' प्रयोग सिद्ध होता है। अब 'अग्नाविष्णू देवते अस्य' इस अर्थ में 'सास्य देवता' से अण् प्रत्यय, तद्धितान्तत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लुक् तथा 'देवताद्वन्द्वे च' सूत्र से उभयपद के आदि अच् की वृद्धि हुई। 'इद्वृद्धौ' सूत्र से वृद्धिमान् वैष्णवरूप उत्तरपद के परे अग्नि शब्द को इदादेश प्राप्त था, किन्तु 'विष्णु शब्द के परे 'इद्वृद्धौ' से इत्व नहीं हो' एतदर्थक 'विष्णौ न' इस वार्त्तिक से इदादेश का निषेध होने पर सु विभक्ति में 'आग्नावैष्णवम्' प्रयोग सिद्ध होता है।

(३२) द्यावाभूमी, द्यावाक्षामे (प्रयोग)—'द्यौश्च भूमिश्च' इस विग्रह में 'चार्थे द्वन्द्वः' सूत्र से द्वन्द्व समास हुआ। समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लोप हो गया। 'देवताद्वन्द्व में उत्तरपद के परे दिव् शब्द को 'द्यावा' आदेश हो' एतदर्थक 'दिवो द्यावा' सूत्र से दिव् शब्द को द्यावा आदेश हो गया। औ विभक्ति के आने पर 'द्यावाभूमी' प्रयोग सिद्ध होता है।

इसी प्रकार 'द्यौश्च क्षामा च' इस विग्रह में द्वन्द्वसमासादि करने पर दिव् शब्द को प्रस्तुत सूत्र से 'द्यावा' आदेश करने पर तथा औ विभक्ति के आने पर 'द्यावाक्षामे' प्रयोग सिद्ध होता है।

(३३) दिवसश्च पृथिव्याम् (सूत्र)—इस सूत्र में 'देवताद्वन्द्वे च' सूत्र से 'देवताद्वन्द्वे' पद की तथा 'दिवो द्यावा' इस पूर्वसूत्र से 'दिवः' पद की अनुवृत्ति होती है। तदनुसार—'देवताद्वन्द्व में पृथिवी शब्द के परे दिव् शब्द को दिवस् आदेश हो, चकारात् द्यावा आदेश हो' यही सूत्रार्थ फलित होता है। उदाहरण है—दिवस्पृथिव्यौ, द्यावापृथिव्यौ।

'द्यौश्च पृथिवी च' इस विग्रह में 'चार्थे द्वन्द्वः' सूत्र से द्वन्द्व समास हुआ। समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लोप हो गया। 'दिवो द्यावा' सूत्र से दिव् शब्द को द्यावा आदेश प्राप्त हुआ, किन्तु परत्वात् 'दिवसश्च पृथिव्याम्' सूत्र से उसका निषेध कर दिव् शब्द को दिवस् आदेश हो गया। औ विभक्ति आने पर 'दिवस्पृथिव्यौ' प्रयोग सिद्ध हुआ। चकारात् द्यावा आदेश होने पर 'द्यावापृथिव्यौ' प्रयोग सिद्ध हुआ।

(३४) उषासासूर्यम् (प्रयोग)—'उषाश्च सूर्यश्च' इस विग्रह में 'चार्थे द्वन्द्वः' सूत्र से समाहाररूप चार्थ में द्वन्द्व समास हुआ। समासत्वात्

प्रातिपदिकावयव सुप् का लोप हो गया। 'देवताद्वन्द्व में उषस् शब्द को उषास् आदेश हो' एतदर्थक 'उषासोषसः' सूत्र से उषस् शब्द को उषास् आदेश हो गया। 'देवताद्वन्द्वे च' सूत्र से सूर्य शब्द के परे उषास् को आनङ् आदेश होने के बाद एकवद्भाव, नपुंसकत्व, सु, अम्, पूर्वरूप करने पर 'उषासासूर्यम्' प्रयोग सिद्ध हुआ।

(३५) **मातरपितरौ** (सूत्र)—'माता च पिता च' इस विग्रह में 'चार्थे द्वन्द्वः' से द्वन्द्व समास हुआ। समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लोप हो गया। 'मातृ-पितृ शब्द के द्वन्द्व में 'मातरपितरौ' ऐसा रूप हो, अर्वाचीन आचार्यों के मतानुसार' एतदर्थक 'मातरपितरावुदीचाम्' इस सूत्र के अनुसार मातृ शब्द को अरङ् आदेश का निपातन होता है। औ विभक्ति में 'मातरपितरौ' सिद्ध होता है। विकल्प पक्ष में 'आनङ् ऋतो द्वन्द्वे' से मातृ शब्द को आनङादेश होने पर 'मातापितरौ' रूप ही होता है। ये दोनों ही प्रयोग 'पिता मात्रा' इस एकशेषसूत्र के विकल्प पक्ष में ही सिद्ध होते हैं। इस प्रकार 'माता च पिता च' इस विग्रह में क्रमशः पितरौ, मातरपितरौ तथा मातापितरौ—ये तीन रूप निष्पन्न होते हैं।

(३६) **वाक्त्वचम्, त्वक्स्रजम् आदि** (प्रयोग)—'वाक् च त्वक् च' इस विग्रह में 'चार्थे द्वन्द्वः' सूत्र से समाहाररूप चार्थ में द्वन्द्व समास हुआ। समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लोप हो गया। 'समाहार द्वन्द्व में च-वर्ग, द, ष और ह अन्त में रहे जिसका उस शब्द से टच् प्रत्यय हो' एतदर्थक 'द्वन्द्वाच्चुदषहान्तात्समाहारे' सूत्र से टच् प्रत्यय हुआ। अनुबन्धलोप, एकवद्भाव तथा नपुंसकत्व होने पर सु विभक्ति में 'वाक्त्वचम्' प्रयोग सिद्ध हुआ।

इसी प्रकार 'वाक्च स्रक् च' इस विग्रह में अकारान्त होने के कारण टच् होने से 'वाक्स्रजम्' सिद्ध हुआ। दकारान्त का—'शमीदृषदम्', षकारान्त का—'वाक्त्विषम्' तथा हकारान्त का 'छत्रोपाहनम्' उदाहरण है।

सूत्र में समाहार कहने के कारण ही 'प्रावृट्छरदी' इस इतरेतरद्वन्द्व-स्थल में टच् नहीं होता है।

इस प्रकार द्वन्द्वसमास-प्रकरण समाप्त हुआ।

एकशेषसमास-प्रकरण

(१) **विरूपाणामपि समानार्थानाम् (वार्त्तिक)**—'रामौ, रामाः' इत्यादि स्थलों में समानार्थक सरूपों का 'सरूपाणामेकशेष एकविभक्तौ' से एकशेष कहा गया है। अब विरूपों का एकशेष विहित करने के लिए प्रस्तुत वार्त्तिक का विधान किया गया है। 'समानार्थक यदि विरूप भी हो तो उनमें एक का शेष हो तथा अन्य का लोप हो' यही वार्त्तिकार्थ है। उदाहरण है—वक्रदण्डौ, कुटिलदण्डौ।

'वक्रदण्डश्च कुटिलदण्डश्च' इस विग्रह में प्रस्तुत वार्त्तिक से वक्रदण्ड का शेष तथा कुटिलदण्ड का लोप होने पर 'वक्रदण्डौ' का प्रयोग होता है। यदि कुटिलदण्ड का एकशेष तथा वक्रदण्ड का लोप हो तो 'कुटिलदण्डौ' प्रयोग सिद्ध होता है। इन दोनों में से किसी एक का शेष स्वेच्छा से होता है। जिसका शेष होता है, वह लुप्यमान अर्थ का अभिधायी होता है, इसीलिए द्विवचनान्त प्रयोग यहाँ हुआ है।

(२) **गार्ग्यौ (प्रयोग)**—'गर्गस्य गोत्रापत्यं पुमान्' इस अर्थ में गर्ग शब्द से गोत्रापत्य अर्थ में 'गर्गादिभ्यो यञ्' सूत्र से यञ् प्रत्यय करने पर 'गार्ग्यः' रूप बनता है तथा 'गर्गस्य युवापत्यं पुमान्' इस अर्थ में गोत्र-प्रत्ययान्त गार्ग्य शब्द से 'यञिञोश्च' सूत्र से फक् तथा उसे 'आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्' से आयन् करने पर 'गार्ग्यायणः' रूप सिद्ध होता है। अब 'गार्ग्यश्च गार्ग्यायणश्च' ऐसा विग्रह करने पर 'युव-प्रत्ययान्त के साथ उक्त गोत्र-प्रत्ययान्त का एकशेष हो, यदि उन दोनों का वैरूप्य गोत्र-युव-प्रत्यय-मात्रकृत हो तो' एतदर्थक 'वृद्धो यूना तल्लक्षणश्चेदेव विशेषः' सूत्र से गोत्र-प्रत्ययान्त गार्ग्य शब्द का एकशेष हुआ। विभक्तिकार्य करने पर 'गार्ग्यौ' प्रयोग सिद्ध हुआ।

'वृद्धो यूना०' सूत्र में 'वृद्धः' ऐसा कहने के कारण 'गर्गश्च गार्ग्यायणश्च' इस विग्रह में गर्ग शब्द का एकशेष नहीं होकर वहाँ द्वन्द्व ही होता, क्योंकि यहाँ पर गोत्र-प्रत्ययान्तमात्रकृत वैरूप्य नहीं है; अपितु स्वरूपकृत ही वैरूप्य है। इसीलिए उक्त विग्रह में 'गर्गगार्ग्यायणौ' ऐसा प्रयोग ही होगा।

सूत्र में 'यूना' ऐसा कहने के कारण ही 'गर्गश्च' इस विग्रह में प्रस्तुत सूत्र से एकशेष नहीं होता है, क्योंकि गार्ग्य शब्द युव-प्रत्ययान्त नहीं है। इसलिए यहाँ भी द्वन्द्व होकर 'गर्गगार्ग्यौ' रूप ही बनेगा।

(३) **गार्ग्यौ (प्रयोग)**—'गार्गी च गार्ग्यायणी च' इस विग्रह में 'युव-प्रत्ययान्त के साथ उक्त गोत्र-प्रत्ययान्त स्त्रीलिङ्ग का एकशेष हो तथा उसका अर्थ पुंवद्भावयुक्त हो' एतदर्थक 'स्त्री पुंवच्च' सूत्र से गार्गी शब्द का एकशेष तथा उसे पुंवद्भाव हो गया। पुंवद्भाव होने के कारण 'यञश्च' से विहित ङीप् की निवृत्ति हो गई। बहुवचन में 'यञञोश्च' से यञ् का लोप हो जाने से 'निमित्तापाये नैमित्तिकस्याप्यपायः' के अनुसार यञ् निमित्तक आदिवृद्धि की भी निवृत्ति हो गई। जस् विभक्ति आने पर 'गर्गाः' प्रयोग सिद्ध हुआ।

(४) **हंसौ (प्रयोग)**—'हंसी च हंसश्च' इस विग्रह में 'स्त्रीवाचक शब्द के साथ उक्त पुंवाचक शब्द का शेष हो, यदि स्त्रीपुंसलक्षणकृतमात्र विशेषता की प्रतीति हो तो' एतदर्थक 'पुमान्स्त्रिया' सूत्र से हंस शब्द का एकशेष हो गया। 'यः शिष्यते स लुप्यमानार्थाभिधायी' के अनुसार प्रथमा में 'हंसौ' ऐसा द्विवचनान्त प्रयोग सिद्ध हुआ।

(५) **भ्रातरौ, पुत्रौ (प्रयोग)**—'भ्राता च स्वसा च' इस विग्रह में 'भ्रातृपुत्रौ स्वसृदुहितृभ्याम्' सूत्र से भ्रातृ शब्द का शेष होने पर तथा औ विभक्ति आने पर 'भ्रातरौ' प्रयोग सिद्ध होता है।

इसी प्रकार 'पुत्रश्च दुहिता च' इस विग्रह में प्रस्तुत सूत्र से पुत्र शब्द का एकशेष होने पर तथा औ विभक्ति आने पर 'पुत्रौ' प्रयोग सिद्ध होता है। 'स्वसृ एवं दुहितृ शब्द के साथ क्रमशः उक्त होने पर भ्रातृ एवं पुत्र शब्द का एकशेष हो' यही सूत्रार्थ है। अभिप्राय यह है कि स्वसृ शब्द के साथ उक्त होने पर भ्रातृ शब्द का तथा दुहितृ शब्द के साथ उक्त होने पर पुत्र शब्द का एकशेष होगा।

(६) **शुक्लम्—शुक्लानि (प्रयोग)**—'अनपुंसक के साथ उक्त नपुंसक का एकशेष हो तथा उसे विकल्प से एकवद्भाव हो, यदि नपुंसक-अनपुंसककृत विशेषता हो तो' एतदर्थक 'नपुंसकमनपुंसकेनैकवच्चान्यतरस्याम्' इस सूत्र से 'शुक्लश्च (पटः), शुक्ला च (शाटी), शुक्लं च (वस्त्रम्)' इस विग्रह में

शुक्लम् इस नपुंसक का एकशेष हो गया तथा उसे एकवद्भाव भी हो गया। प्रथमा के एकवचन में 'शुक्लम्' ऐसा प्रयोग सिद्ध हुआ। एकवद्भाव के विकल्प पक्ष में 'शुक्लानि' प्रयोग सिद्ध होता है।

(७) **पितरौ—मातापितरौ (प्रयोग)**—'माता च पिता च' इस विग्रह में 'मातृशब्द के साथ उक्त पितृ शब्द का विकल्प से एकशेष हो' एतदर्थक 'पिता मात्रा' सूत्र से पितृ शब्द का एकशेष हो गया तथा 'यः शिष्यते स लुप्यमानार्थाभिधायी' के अनुसार प्रथमा द्विवचन में औ विभक्ति आने पर 'पितरौ' सिद्ध होता है। विकल्पपक्ष में द्वन्द्व समास करने पर 'आनङ् ऋतो द्वन्द्वे' सूत्र से पितृ शब्द के परे ऋदन्त मातृ शब्द को आनङ् करने पर 'मातापितरौ' सिद्ध होता है। 'मातरपितरावुदीचाम्' के अनुसार 'मातर-पितरौ' रूप भी होता है। इस प्रकार 'माता च पिता च' इस विग्रह में क्रमशः—पितरौ, मातरपितरौ तथा मातापितरौ—ये तीन रूप होते हैं।

(८) **श्वशुरौ-श्वश्रूश्वशुरौ (प्रयोग)**—'श्वश्रूश्च श्वशुरश्च' इस विग्रह में 'श्वश्रू शब्द के साथ उक्त श्वशुर शब्द का विकल्प से एकशेष हो, यदि तल्लक्षणकृत विशेषता प्रतीत हो तो' एतदर्थक 'श्वशुरः श्वश्र्वा' सूत्र से श्वशुर शब्द का एकशेष हुआ। औ विभक्ति में 'श्वशुरौ' रूप सिद्ध हुआ। विकल्प पक्ष में 'चार्थे द्वन्द्वः' से द्वन्द्व समास करने पर 'श्वश्रूश्वशुरौ' प्रयोग सिद्ध होता है।

(९) **तौ (प्रयोग)**—'स च देवदत्तश्च' इस विग्रह में 'सभी शब्दों के साथ उक्त त्यदादि नित्य ही शिष्ट होते हैं' एतदर्थक 'त्यदादीनि सर्वैर्नित्यम्' सूत्र से तद् शब्द का नित्यरूप से एकशेष हुआ अर्थात् देवदत्त शब्द की निवृत्ति हो गई। प्रथमा द्विवचन में 'तौ' ऐसा प्रयोग सिद्ध होता है।

(१०) **यौ (प्रयोग)**—'स च यश्च' ऐसा विग्रह करने पर 'त्यदादिकों की यदि परस्पर सहोक्ति हो तो पाठकृत परत्वविशिष्ट का शेष हो' एतदर्थक 'त्यदादीनां मिथः सहोक्तौ यत्परं तच्छिष्यते' इस वार्त्तिक से परपठित यत् शब्द का एकशेष हुआ तथा प्रथमा द्विवचन में 'यौ' ऐसा रूप निष्पन्न हुआ। इसी प्रकार 'सा च या च' इस विग्रह में 'ये' प्रयोग सिद्ध होगा।

(११) **त्यदादितः शेषे पुन्नपुंसकतो लिङ्गवचनानि (वार्त्तिक)**—'त्यदादिकृत शेष में अर्थात् परस्पर सहोक्ति में पुंल्लिङ्ग नपुंसकशब्दगतलिङ्ग तथा वचन हो' यही वार्तिकार्थ है। जैसे—'सा च देवदत्तश्च' इस विग्रह में 'त्यदादीनि सर्वैर्नित्यम्' सूत्र से तत् शब्द का एकशेष होने पर प्रस्तुत वार्तिक से देवदत्तगत पुंल्लिङ्ग के समान पुंल्लिङ्ग होने से 'तौ' ऐसा रूप निष्पन्न होता है।

इसी प्रकार 'तच्च देवदत्तश्च यज्ञदत्तश्च' ऐसा विग्रह करने पर सर्वप्रथम 'त्यदादीनि सर्वैर्नित्यम्' से तत् शब्द का एकशेष होता है तथा प्रस्तुत वार्त्तिक से यहाँ नपुंसकलिङ्ग का विधान होने तथा बहुवचन होने से 'तानि' ऐसा रूप सिद्ध होता है।

यदि 'तच्च देवदत्तश्च' इस प्रकार नपुंसक तथा पुंल्लिङ्ग में विग्रह किया जायगा तो तत् शब्द का 'त्यदादीनि सर्वैर्नित्यम्' से एकशेष करके प्रस्तुत वार्त्तिक के बल से परत्वात् नपुंसकलिङ्ग एवं द्विवचन का विधान होने पर 'ते' ऐसा रूप सिद्ध होगा।

(१२) **ग्राम्यपशुसङ्घेष्वतरुणेषु स्त्री (सूत्र)**—'अतरुण यदि ग्राम्य पशु हों तो सहोक्त स्त्रीलिङ्ग शब्द का एकशेष हो' यही सूत्रार्थ है। यह सूत्र 'पुमान् स्त्रिया' इस सूत्र का अपवाद है। उदाहरण है—गावः इमाः।

'गौश्च गौश्च गौश्च' इस विग्रह में बैल का वाचक भी गो शब्द है, किन्तु प्रस्तुत सूत्र से स्त्रीवाचक गो शब्द का एकशेष करने पर तथा प्रथमा बहुवचन में जस् विभक्ति आने पर 'गावः' प्रयोग सिद्ध होता है।

सूत्र में ग्राम्य कहने के कारण ही 'रुरवः इमे' इस प्रयोग में जंगल में रहनेवाले काले मृगवाचक 'रुरु' इस पुंल्लिङ्ग शब्द का ही 'पुमान् स्त्रिया' से एकशेष करने पर 'रुरवः इमे' प्रयोग होगा। सूत्र में पशुग्रहण करने के कारण ही 'ब्राह्मणी च ब्राह्मणी च' इस विग्रह में 'पुमान् स्त्रिया' से पुंल्लिङ्ग ब्राह्मण शब्द का एकशेष होता है। सूत्र में 'सङ्घेषु' कहने के कारण ही गौश्च (पु०) गौश्च (स्त्री०) इस विग्रह में 'पुमान् स्त्रिया' से पुंल्लिङ्ग गो शब्द का एकशेष करके 'गावौ' रूप सिद्ध होता है। सूत्र में 'अतरुणेषु' कहने के कारण ही 'वत्साश्च वत्स्यश्च' इस विग्रह में 'पुमान् स्त्रिया' से पुंल्लिङ्ग वत्स शब्द का एकशेष होता है।

(१३) **अनेकशफेष्विति वाच्यम् (वार्त्तिक)**—पूर्वोक्त 'ग्राम्यपशुसङ्घेष्वतरुणेषु स्त्री' सूत्र में जिन पशुओं के बारे में कहा गया है, वे पशु अनेक खुरवाले हों, तभी उक्त सूत्र की प्रवृत्ति हो' यही वार्त्तिकार्थ है। इसीलिए 'अश्वाश्च अश्व्यश्च' इस विग्रह में पूर्वसूत्र से स्त्रीलिङ्गवाचक अश्वी शब्द का एकशेष न होकर 'पुमान् स्त्रिया' सूत्र से पुंल्लिङ्गवाचक अश्वशब्द का ही एकशेष किया जाता है तथा 'अश्वाः इमे' ऐसा प्रयोग सिद्ध होता है, क्योंकि अश्व या अश्वी आदि गाय आदि के समान अनेक खुरवाले नहीं होते।

इस प्रकार एकशेष-प्रकरण समाप्त हुआ।

सर्वसमासान्त-प्रकरण

(१) ऋक्पूरब्धूःपथामानक्षे (सूत्र)—इस सूत्र में 'समासान्ताः' (५। ४। ६८) सूत्र का अधिकार आता है। सूत्र में 'अ अनक्षे' ऐसा खण्ड किया जाता है। तदनुसार-'ऋक्, पुर्, अप्, धुर् तथा पथिन् एतदन्त समास को समासान्त अ प्रत्यय हो, अक्ष अर्थ में जो धुर् शब्द तदन्त को नहीं हो' यही सूत्रार्थ फलित होता है। उदाहरण है—अर्धर्चः आदि।

'ऋचः अर्धम्' इस विग्रह में 'अर्धं नपुंसकम्' सूत्र से समास हुआ। समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लोप हो गया। अर्धशब्द का पूर्वनिपात हुआ। 'ऋक्पूरब्धूःपथामानक्षे' से समासान्त अ प्रत्यय, 'अर्धर्चाः पुंसि च' सूत्र से पुंस्त्व का विधान होने पर तथा विभक्तिकार्य करने पर 'अर्धर्चः' प्रयोग सिद्ध होता है। वैकल्पिक पुंस्त्व का विधान होने से 'अर्धर्चम्' प्रयोग भी होता है।

(२) अनृचसाम, बहवृचसूक्तम् (प्रयोग)—'अविद्यमानाः ऋचः यस्य' इस विग्रह में 'नञोऽस्त्यर्थानां वाच्यो वा चोत्तरपदलोपः' इस वार्तिक से बहुव्रीहि समास तथा अस्त्यर्थक विद्यमान रूप उत्तरपद का लोप हो गया। 'तस्मान्नुडचि' से नुट् का आगम करने पर तथा विभक्तिकार्य करने पर 'अनृक्' ऐसा ही प्रयोग सिद्ध होता है।

'अनृचबहवृचावध्येतर्येव' इस नियम के अनुसार अध्येतृ अर्थ में ही अनृच या बहवृच शब्द निष्पन्न होते हैं। यहाँ अध्येतृ अर्थ का अभाव होने से समासान्त अ प्रत्यय के न होने पर 'अनृक्' ऐसा ही रूप सिद्ध होता है। इसी प्रकार 'बह्व्यः ऋचः अस्य' इस विग्रह में समासादि करने के बाद अध्येतृ अर्थ का अभाव होने से समासान्त अ प्रत्यय न होने के कारण 'बहवृक्' ऐसा ही प्रयोग सिद्ध होगा।

(३) विष्णुपुरम् (प्रयोग)—'विष्णोः पूः' इस विग्रह में 'षष्ठी' सूत्र से तत्पुरुष समास हुआ। समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लोप हो गया। 'ऋक्पूरब्धूःपथामानक्षे' सूत्र से समासान्त अ प्रत्यय हुआ। पुर् शब्द चूंकि स्त्रीत्ववाचक है, इसलिए 'परवल्लिङ्गं द्वन्द्वतत्पुरुषयोः' सूत्र से स्त्रीलिङ्ग के समान लिङ्गविधान होना चाहिए था, किन्तु अ-प्रत्ययान्त पुर शब्द नपुंसक

के रूप में ही लोकप्रसिद्ध है, इसलिए नपुंसक में ही विभक्तिकार्य करके 'विष्णुपुरम्' प्रयोग सिद्ध होता है।

(४) **विमलापं सरः (प्रयोग)**—'विमला आपो यस्मिन्' इस विग्रह में 'अनेकमन्यपदार्थे' से बहुव्रीहि समास हुआ। समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लोप हो गया। 'ऋक्पूरब्धूःपथामानक्षे' सूत्र से समासान्त अ प्रत्यय करने पर नपुंसक में 'विमलापम्' प्रयोग सिद्ध होता है।

(५) **द्वीपम्, अन्तरीपम्, प्रतीपम्, समीपम् (प्रयोग)**—'द्वयोः पार्श्वयोः या भागयोः गता आपो यस्य' इस विग्रह में द्वि ओस् आप् जस् का 'द्व्यन्तरुपसर्गेभ्योऽप ईत्' इस सूत्र से ही ज्ञापन होने के कारण व्यधिकरण बहुव्रीहि समास हुआ। समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लोप हो गया। 'द्वि, अन्तर् तथा उपसर्ग से पर कृतसमासान्त आप् को ईत् हो' एतदर्थक 'द्व्यन्तरुपसर्गेभ्योऽप ईत्' से ईदादेश का विधान होने पर 'आदेः परस्य' सूत्र के कारण आप् के आकार को ईकारादेश हो गया। 'ऋक्पूरब्धू.पथामानक्षे' सूत्र से समासान्त अ प्रत्यय हुआ। सवर्णदीर्घ तथा नपुंसक में सु को अमादेश हुआ पूर्वरूप करने पर 'द्वीपम्' प्रयोग सिद्ध हुआ।

इसी प्रकार 'अन्तर्गताः आपः यस्मिन्' इस विग्रह में बहुव्रीहि समास हुआ। समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लुक् हो गया। 'ऋक्पूरब्धूः-पथामानक्षे' से समासान्त अ प्रत्यय, 'द्व्यन्तरुपसर्गेभ्योऽप ईत्' से आप् के आकार को ईकारादेश, नपुंसक में सु विभक्ति आने पर 'अन्तरीपम्' प्रयोग सिद्ध हुआ।

'प्रतिकूला आपो यस्मिन्' इस विग्रह में बहुव्रीहि समास, सुप् का लुक्, 'ऋक्पूरब्धू.पथामानक्षे' से समासान्त अ प्रत्यय, द्व्यन्तरुपसर्गेभ्योऽप ईत्' से आप् के आकार को ईकार, सवर्णदीर्घ तथा नपुंसक में सु विभक्ति आने पर 'प्रतीपम्' प्रयोग सिद्ध होता है।

'सङ्गता आपो यस्मिन्' इस विग्रह में बहुव्रीहि समास, विभक्ति का लुक्, समासान्त अ प्रत्यय, आप के आकार को ईकार तथा विभक्तिकार्य करने पर 'समीपम्' प्रयोग सिद्ध होता है।

'समा आपो यस्मिन्' इस विग्रह में 'समापः' प्रयोग ही होता है, क्योंकि वहाँ आकारान्त समा शब्द उपसर्ग नहीं है। इसीलिए 'समापो देवयजनम्' यह प्रयोग सङ्गत होता है।

(६) अवर्णान्ताद्वा (वार्त्तिक)—'अवर्णान्त उपसर्ग से पर जो कृतसमासान्त आप् शब्द उसके आकार को विकल्प से ईकार हो' यही इस वार्त्तिक का अभिप्राय है। उदाहरण है—प्रेपम्—प्रापम्; परेपम्—परापम् आदि।

'प्रगता आपो यस्य' इस विग्रह में 'प्रादिभ्यो धातुजस्य वाच्यो वा चोत्तरपदलोपः' से बहुव्रीहि समास तथा गता शब्द का लोप हो गया। 'ऋक्पूरब्धूःपथामानक्षे' सूत्र से समासान्त अ प्रत्यय हुआ। 'अवर्णान्ताद्वा' इस वार्त्तिक से आप् शब्द के आकार को वैकल्पिक ईकारादेश हो गया। गुणसन्धि तथा विभक्तिकार्य करने पर 'प्रेपम्' प्रयोग सिद्ध हुआ। ईकारादेश के अभाव में 'प्रापम्' प्रयोग सिद्ध होगा।

इसी प्रकार 'परागता आपो यस्मिन्' इस विग्रह में बहुव्रीहि समास, समासान्त अ प्रत्यय, 'अवर्णान्ताद्वा' से वैकल्पिक ईकारादेश होने पर तथा विभक्तिकार्य करने पर 'परेपम्' प्रयोग सिद्ध होगा। ईकारादेश के अभाव में 'परापम्' प्रयोग ही सिद्ध होगा।

(७) अनूपो देशः (प्रयोग)—'अनुकूला आपो यस्मिन्' इस विग्रह में बहुव्रीहि समास हुआ। 'ऋक्पूरब्धूःपथामानक्षे' से समासान्त अ प्रत्यय हुआ। 'देश अर्थ में अनु से पर कृतसमासान्त आप् को उत् आदेश हो' एतदर्थक 'ऊदनोर्देशे' सूत्र से आप् के आकार को ऊकारादेश हो गया। सवर्णदीर्घ भी हुआ। देश का विशेषण होने से पुंल्लिङ्ग में सु विभक्ति आने पर 'अनूपः' प्रयोग सिद्ध हुआ।

(८) राजधुरा (प्रयोग)—'राज्ञो धूः' इस विग्रह में राजन् ङस्, धूर् सु का षष्ठीतत्पुरुष समास हुआ। समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लोप हो गया। 'ऋक्पूरब्धूःपथामानक्षे' सूत्र से समासान्त अ प्रत्यय हुआ। 'परवल्लिङ्गं द्वन्द्वतत्पुरुषयोः' से परवल्लिङ्ग का विधान होने से स्त्रीत्व में टाप् प्रत्यय हुआ। सु विभक्ति आने पर 'राजधुरा' प्रयोग सिद्ध हुआ।

(९) सखिपथः (प्रयोग)—'सख्युः पन्थाः' इस विग्रह में षष्ठीतत्पुरुष समास तथा प्रातिपदिकावयव सुप् का लोप करने पर अथवा 'सखा च पन्थाश्च' इस विग्रह में द्वन्द्व समास एवं प्रातिपदिकावयव सुप् का लोप करने पर 'ऋक्पूरब्धूःपथामानक्षे' सूत्र से समासान्त अ प्रत्यय हुआ। 'नस्तद्धिते' से टिलोप तथा विभक्तिकार्य करने पर 'सखिपथः' प्रयोग सिद्ध होगा।

(१०) **रम्यपथो देशः (प्रयोग)**—'रम्यः पन्थाः यस्य (देशस्य)' इस विग्रह में 'अनेकमन्यपदार्थे' से बहुव्रीहि समास हुआ। समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लोप हो गया। 'ऋक्पूरब्धूःपथामानक्षे' सूत्र से समासान्त अ प्रत्यय हुआ। 'नस्तद्धिते' से टिलोप किया गया तथा सु विभक्ति आने पर 'रम्यपथः' प्रयोग सिद्ध हुआ।

(११) **प्रतिसामम्, अनुसामम्. अवसामम् (प्रयोग)**—'प्रतिगतं साम' इस विग्रह में 'प्रादयो गताद्यर्थे प्रथमया' से समास हुआ। समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लुक् हो गया। 'प्रति, अनु तथा अवपूर्वक जो सामन् तथा लोमन् शब्द तदन्त समास से समासान्त अच् प्रत्यय हो' एतदर्थक 'अचप्रत्यन्ववपूर्वात्सामलोम्नः' सूत्र से समासान्त अच् प्रत्यय हुआ। 'नस्तद्धिते' से टिलोप हो गया। नपुंसक में सु विभक्ति आने पर 'प्रतिसामम्' प्रयोग सिद्ध हुआ।

इसी प्रकार 'अनुगतं साम' इस विग्रह में 'अनुसामम्', तथा 'अवगतं साम' इस विग्रह में 'अवसामम्' प्रयोग सिद्ध होंगे।

(१२) **प्रतिलोमम्, अनुलोमम्, अवलोमम् (प्रयोग)**—'प्रतिगतं लोम' इस विग्रह में 'प्रादयो गताद्यर्थे प्रथमया' इस वार्त्तिक से समास हुआ। समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लोप हो गया। 'अचप्रत्यन्ववपूर्वात्सामलोम्नः' सूत्र से समासान्त अच् प्रत्यय हुआ। 'नस्तद्धिते' से टिलोप तथा नपुंसक में सु विभक्ति आने पर 'प्रतिलोमम्' प्रयोग सिद्ध हुआ।

इसी प्रकार 'अनुगतं लोम' इस विग्रह में 'अनुलोमम्', 'अवगतं लोम' इस विग्रह में 'अवलोमम्' प्रयोग सिद्ध होंगे।

प्रतिसामम् आदि सभी प्रयोगों में अथवा प्रतिलोमम् आदि सभी प्रयोगों में अव्ययीभाव या बहुव्रीहि समास भी किया जा सकता है।

(१३) **कृष्णभूमः, उदग्भूमः, पाण्डुभूमः द्विभूमप्रासादः (प्रयोग)**—'कृष्णा भूमिर्यस्य (देशस्य)' इस विग्रह में 'अनेकमन्यपदार्थे' सूत्र से कृष्णा सु भूमि सु का बहुव्रीहि समास हुआ। समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लोप हो गया। 'कृष्ण, उदक्, पाण्डु तथा सङ्ख्यावाचक शब्दपूर्वक जो भूमि-शब्द तदन्त समास से समासान्त अच् प्रत्यय हो' एतदर्थक 'कृष्णोदक्पाण्डु-सङ्ख्यापूर्वायाः भूमेरजिष्यते' इस वार्त्तिक से समासान्त अच् प्रत्यय हुआ। 'स्त्रियाः पुंवत्०' सूत्र से कृष्णा शब्द को पुंवद्भाव हो गया। भसंज्ञा तथा

'यस्येति च' से भूमि के इकार का लोप हो गया। विभक्तिकार्य करने पर 'कृष्णभूमः' प्रयोग सिद्ध हुआ।

इसी प्रकार 'उदीची भूमिर्यस्य' इस विग्रह में उदग्भूमः, 'पाण्डुः भूमिर्यस्य' इस विग्रह में पाण्डुभूमः, 'द्वे भूमी यस्य' इस विग्रह में द्विभूमः प्रयोग सिद्ध होंगे।

(१४) पञ्चनदम्, सप्तगोदावरम् (प्रयोग)—'पञ्चानां नदीनां समाहारः' इस विग्रह में 'तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च' सूत्र से तत्पुरुष समास हुआ, जिसे 'सङ्ख्यापूर्वो द्विगुः' से द्विगुसंज्ञा हुई। समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लोप हो गया। 'सङ्ख्यावाचक पद से जो नदी तथा गोदावरी शब्द तदन्त समास से समासान्त अच् हो' एतदर्थक 'सङ्ख्याया नदीगोदावरीभ्यां च' इस वार्त्तिक से समासान्त अच् प्रत्यय हुआ। भसंज्ञा, 'यस्येति च' से ईकार का लोप 'द्विगुरेकवचनम्' से एकवद्भाव तथा 'स नपुंसकम्' से नपुंसकत्व होने के कारण सु विभक्ति में 'पञ्चनदम्' प्रयोग सिद्ध होता है। उपचारात् प्रदेशरूपार्थ में 'लोकाश्रयत्वाल्लिङ्गस्य' से पुंल्लिङ्ग में भी व्यवहृत होने से 'पञ्चनदः प्रदेशः' अथवा 'पञ्चनद्योऽस्मिन् प्रदेशे' ऐसा विग्रह करके बहुव्रीहि में 'पञ्चनदः प्रदेशः' ऐसा भी प्रयोग होता है।

इसी प्रकार 'सप्तानां गोदावरीणां समाहारः' इस विग्रह में सप्त आम् गोदावरी आम् का 'नदीभिश्च' सूत्र से अव्ययीभाव समास हुआ। समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लोप हो गया। 'सङ्ख्याया नदीगोदावरीभ्यां च' इस वार्त्तिक से समासान्त अच् प्रत्यय हो गया। भसंज्ञा, 'यस्येति च' से ईकार का लोप हो गया। समाहारत्वात् एकवद्भाव तथा समुदाय से आयी हुई सु विभक्ति का लोप प्राप्त था, किन्तु 'नाऽव्ययीभावादतोऽम्त्वपञ्चम्याः' से उसे अमादेश हो गया। पूर्वरूप करने पर 'सप्तगोदावरम्' प्रयोग सिद्ध हुआ।

(१५) पद्मनाभः (प्रयोग)—'अचप्रत्यन्ववपूर्वात्सामलोम्नः' सूत्र में 'अच्' ऐसा योगविभाग करके अन्यत्र भी लक्ष्यानुरोधात् समासान्त अच् प्रत्यय किया जाता है। जैसे—पद्मनाभः।

'पद्मं नाभौ यस्य' इस विग्रह में बहुव्रीहि समास करने के बाद समासान्त अच् प्रत्यय, भसंज्ञा, 'यस्येति च' से नाभि के इकार का लोप तथा विभक्तिकार्य करके 'पद्मनाभः' प्रयोग सिद्ध होता है।

(१६) **अचतुरः (प्रयोग)**—'अविद्यमानानि चत्वारि यस्य' इस विग्रह में 'नञोऽस्त्यर्थानां वाच्यो वा चोत्तरपदलोपः' इस वार्तिक से बहुव्रीहि समास हुआ तथा विद्यमान पद का लोप हो गया। 'अचतुरविचतुरसुचतुर०' सूत्र से निपातनात् समासान्त अच् प्रत्यय होने पर तथा विभक्तिकार्य करने पर 'अचतुरः' प्रयोग सिद्ध होता है।

इसी प्रकार 'विगतानि चत्वारि यस्य' इस विग्रह में बहुव्रीहिसमासोपरान्त 'अचतुरविचतुर०' सूत्र से निपातनात् समासान्त अच् प्रत्यय हुआ तथा विभक्तिकार्य करने पर 'विचतुरः' प्रयोग सिद्ध हुआ। इसी प्रकार 'शोभनानि चत्वारि यस्य' इस प्रकार बहुव्रीहि में 'सुचतुरः' प्रयोग सिद्ध होगा।

(१७) **त्रिचतुराः (प्रयोग)**—'त्रयो वा चत्वारो वा' इस विग्रह में त्रि जस् चतुर् जस् का 'सङ्ख्ययाव्ययासन्नादूराधिकसङ्ख्याः सङ्ख्येये' सूत्र से बहुव्रीहि समास हुआ। समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लोप हो गया। 'बहुव्रीहौ सङ्ख्येये डच्' सूत्र से डच् प्रत्यय प्राप्त था, किन्तु उसे बाधित कर 'त्रि तथा उप से पर जो चतुर् शब्द तदन्त समास से समासान्त अच् प्रत्यय हो' एतदर्थक 'त्र्युपाभ्यां चतुरोऽजिष्यते' इस वार्तिक से समासान्त अच् प्रत्यय हुआ। विभक्तिकार्य करने पर 'त्रिचतुराः' प्रयोग सिद्ध हुआ।

(१८) **उपचतुराः (प्रयोग)**—चतुर्णां समीपे ये सन्ति' अथवा 'त्रयः पञ्च वा' इस विग्रह में 'संख्ययाव्ययासन्नादूराधिकसंख्याः संख्येये' सूत्र से बहुव्रीहि समास हुआ। समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लोप हो गया। 'बहुव्रीहौ संख्येये डच्' सूत्र से प्राप्त डच् को बाधित कर 'त्र्युपाभ्यां चतुरोऽजिष्यते' इस वार्तिक से समासान्त अच् प्रत्यय हुआ। जस् विभक्ति आने पर 'उपचतुराः' प्रयोग सिद्ध हुआ।

(१९) **स्त्रीपुंसौ (प्रयोग)**—'स्त्री च पुमांश्च' इस विग्रह में 'चार्थे द्वन्द्वः' से द्वन्द्व समास हुआ। समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लोप हो गया। 'अचतुरविचतुर०' सूत्र से पुमान् को निपातनात् पुंस् आदेश तथा समासान्त अच् प्रत्यय का विधान करने से तथा विभक्तिकार्य करने पर 'स्त्रीपुंसौ' प्रयोग सिद्ध होता है।

(२०) **धेन्वनडुहौ (प्रयोग)**—'धेनुश्च अनड्वांश्च' इस विग्रह में 'चार्थे द्वन्द्वः' से द्वन्द्व समास हुआ। समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लोप हो गया। 'अचतुरविचतुर०' सूत्र से निपातनात् समासान्त अच् प्रत्यय करने पर

तथा औ विभक्ति आने पर 'धेन्वनडुहौ' प्रयोग सिद्ध होता है। यदि प्रस्तुत सूत्र से धेन्वनडुह ऐसा अच्-प्रत्ययान्त निपातन नहीं किया जाता तो 'धेन्वनड्वाहौ' ऐसा प्रयोग ही होता।

(२१) ऋक्सामे (प्रयोग)—'ऋक् च साम च' इस विग्रह में 'चार्थे द्वन्द्वः' से द्वन्द्व समास हुआ। समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लोप हो गया। 'अचतुरविचतुर०' सूत्र से 'ऋक्साम' ऐसा अच्-प्रत्ययान्त निपातन करने के कारण समासान्त अच् प्रत्यय हुआ। 'नस्तद्धिते' से टिलोप हो गया। औ विभक्ति आने पर 'ऋक्सामे' प्रयोग सिद्ध होता है। यदि निपातन नहीं होता तो 'ऋक्सामनी' प्रयोग होता।

(२२) वाङ्मनसे (प्रयोग)—'वाक् च मनश्च' इस विग्रह में 'चार्थे द्वन्द्वः' से द्वन्द्व समास हुआ। समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लोप हो गया। 'अचतुरविचतुर०' सूत्र से निपातनात् समासान्त अच् प्रत्यय हुआ। औ विभक्ति आने पर नपुंसकलिङ्ग में 'वाङ्मनसे' रूप सिद्ध हुआ। निपातन यदि न होता तो 'वाङ्मनसी' ऐसा रूप होता।

(२३) अक्षिभ्रुवम् (प्रयोग)—'अक्षिणी च भ्रुवौ च' इस विग्रह में 'चार्थे द्वन्द्वः' से समाहार रूप चार्थ में द्वन्द्व समास हुआ। समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लोप हो गया। 'अचतुरविचतुर०' सूत्र से निपातनात् समासान्त अच् प्रत्यय करने पर, 'अचि श्नुधातुभ्रुवां य्वोरियङुवङौ' से भ्रू को उवङादेश करने पर 'द्वन्द्वश्च प्राणितूर्यसेनाङ्गानाम्' सूत्र से प्राण्यङ्गत्वात् एकवद्भाव करने पर, 'स नपंसकम्' से नपुंसकत्व करने पर तथा सु विभक्ति आने पर 'अक्षिभ्रुवम्' प्रयोग सिद्ध होता है।

(२४) नक्तन्दिवम् (प्रयोग)—'नक्तं च दिवा च' इस विग्रह में 'चार्थे द्वन्द्वः' से द्वन्द्व समास हुआ। समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लोप हो गया। 'अचतुरविचतुर०' सूत्र से निपातनात् समासान्त अच् प्रत्यय हुआ। भसंज्ञा, 'यस्येति च' से दिवा के आकार का लोप हो गया। 'अव्ययीभावश्च' से अव्ययत्व हो गया। नपुंसकत्व तथा 'नाव्ययीभावादतोऽम्त्वपञ्चम्याः' सूत्र से अम्भाव करने के बाद पूर्वरूप करने पर 'नक्तन्दिवम्' प्रयोग सिद्ध हुआ।

(२५) रात्रिन्दिवम् (प्रयोग)—'रात्री च दिवा च' इस विग्रह में 'चार्थे द्वन्द्वः' से द्वन्द्व समास हुआ। समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लुक् हो गया। 'अचतुरविचतुर०' सूत्र से मकारान्त रात्रि शब्द का तथा समासान्त अच्

का निपातन किया गया। भसंज्ञा तथा 'यस्येति च' से आकार का लोप हो गया। अव्ययत्व, नपुंसकत्व, सु को अम्भाव तथा पूर्वरूप करने पर 'रात्रिन्दिवम्' प्रयोग सिद्ध हुआ।

(२६) **अहर्दिवम् (प्रयोग)**—'अहनि च दिवा च' इस विग्रह में द्वन्द्व समास, समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लुक्, 'रोऽसुपि' से अहन् के नकार को रत्व, 'अचतुरविचतुर०' सूत्र से निपातनात् समासान्त अच्, 'यस्येति च' से आकार का लोप, तथा सु को अम्भाव करने पर 'अहर्दिवम्' प्रयोग सिद्ध होता है।

(२७) **सरजसम् (प्रयोग)**—'रजोऽप्यपरित्यज्य' इस अस्वपद विग्रह में 'अव्ययं विभक्ति०' सूत्र से साकल्य रूप अर्थ में रजस् शब्द का सह के साथ अव्ययीभाव समास हुआ। समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लोप हो गया। 'अव्ययीभावे चाऽकाले' सूत्र से सह को स आदेश हो गया, उपसर्जनत्वात् स का पूर्वनिपात हुआ। 'अचतुरविचतुर०' सूत्र से निपातनात् समासान्त अच् प्रत्यय हुआ। अव्ययत्व, नपुंसकत्व, सु विभक्ति, उसका लोप का 'नाव्ययीभावादतोऽम्त्वपञ्चम्याः' से निषेध तथा सु को अमादेश हुआ। पूर्वरूप करने पर 'सरजसम्' सिद्ध हुआ। 'रजोभिः सह' ऐसा विग्रह करने पर 'तेन सहेति तुल्ययोगे' सूत्र से बहुव्रीहि समास, 'वोपसर्जनस्य' से सह को स आदेश तथा विभक्तिकार्य करने पर 'सरजः' ऐसा ही प्रयोग सिद्ध होगा। सरज का अर्थ पङ्कज होता है।

(२८) **निःश्रेयसम् (प्रयोग)**—'निश्चितं श्रेयो यस्य' इस विग्रह में 'प्रादिभ्यो धातुजस्य वाच्यो वा चोत्तरपदलोपः' से बहुव्रीहि समास तथा चित का लोप हो गया। 'अचतुरविचतुर०' सूत्र से निपातनात् समासान्त अच् प्रत्यय हुआ। विभक्तिकार्य करने पर 'निःश्रेयसम्' प्रयोग सिद्ध हुआ। यहाँ पर 'शेषाद्विभाषा' सूत्र से प्राप्त कप् प्रत्यय का 'ईयसश्च' सूत्र से निषेध किया गया है।

(२९) **पुरुषायुषम् (प्रयोग)**—'पुरुषस्य आयुः' इस विग्रह में पुरुष ङस् आयुष् सु का षष्ठीतत्पुरुष समास हुआ। समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लोप हो गया। 'अचतुरविचतुर०' सूत्र से समासान्त अच् प्रत्यय हुआ। 'परवल्लिङ्गं द्वन्द्वतत्पुरुषयोः' सूत्र के कारण आयुष् शब्द के अनुसार नपुंसक में सु विभक्ति आने पर 'पुरुषायुषम्' प्रयोग सिद्ध हुआ।

(३०) द्व्यायुषम्, त्र्यायुषम् (प्रयोग)—'द्वयोरायुषोः समाहारः' इस विग्रह में द्वि ओस् आयुष् ओस् का 'तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च' सूत्र से समास हुआ, जिसे द्विगु संज्ञा हुई। समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लोप हो गया। 'अचतुर०' सूत्र से समासान्त अच् प्रत्यय हुआ। 'द्विगुरेकवचनम्' से एकवद्भाव, 'स नपुंसकम्' से नपुंसकत्व, सु विभक्ति को अमादेश तथा पूर्वरूप करने पर 'द्व्यायुषम्' प्रयोग सिद्ध होता है।

इसी प्रकार 'त्रयाणामायुषां समाहारः' इस विग्रह में उपर्युक्त प्रक्रिया के अनुसार ही 'त्र्यायुषम्' प्रयोग भी सिद्ध होगा।

(३१) जातोक्षः, महोक्षः, वृद्धोक्षः (प्रयोग)—'जातश्चासौ उक्षा च' इस विग्रह में जात सु उक्षन् सु का 'विशेषणं विशेष्येण बहुलम्' सूत्र से कर्मधारय समास हुआ। समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लोप हो गया। 'अचतुरविचतुर०' सूत्र से निपातनात् समासान्त अच् प्रत्यय हुआ। उक्षन् शब्द के टि का लोप तथा विभक्तिकार्य करने पर 'जातोक्षः' प्रयोग सिद्ध होता है।

इसी प्रकार 'महांश्चासौ उक्षा च' ऐसा विग्रह करने पर 'महोक्षः' प्रयोग सिद्ध होगा। महत् सु उक्षन् सु का कर्मधारय समास, विभक्ति का लोप, समासान्त अच्, टिलोप 'आन्महतः समानाधिकरणजातीययोः' सूत्र से महत् शब्द को आकारान्तादेश, गुणसन्धि, सु विभक्ति, रुत्व एवं विसर्ग करने पर 'महोक्षः' प्रयोग सिद्ध होगा।

'वृद्धश्चासौ उक्षा च' इस विग्रह में, कर्मधारय समास, विभक्ति का लोप, समासान्त अच्, टिलोप, गुण तथा विभक्तिकार्य करने पर 'वृद्धोक्षः' प्रयोग सिद्ध होगा।

(३२) उपशुनम् (प्रयोग)—'शुनः समीपम्' इस विग्रह में श्वन् ङस् उप का 'अव्ययं विभक्ति०' सूत्र से समीपार्थ में अव्ययीभाव समास हुआ। समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लोप हो गया। उप को उपसर्जनसंज्ञा तथा समासान्त अच् प्रत्यय हुआ। 'नस्तद्धिते' से टिलोप प्राप्त था, किन्तु इसी सूत्र से निपातन होने के कारण ही टिलोप नहीं हुआ तथा 'श्वयुवमघोनामद्धिते' से सम्प्रसारण अप्राप्त था, किन्तु निपातनात् ही सम्प्रसारण भी हुआ। अव्ययत्व, नपुंसकत्व, सु विभक्ति, उसे अम्भाव तथा पूर्वरूप करने पर 'उपशुनम्' प्रयोग सिद्ध हुआ।

(३३) **गोष्ठश्वः (प्रयोग)**—'गोष्ठे श्वा (इव परद्वेषी बलीवर्दः)' इस विग्रह में तत्पुरुष समास, विभक्ति का लोप, 'अचतुरविचतुर०' सूत्र से निपातनात् समासान्त अच् प्रत्यय, टिलोप तथा विभक्तिकार्य करने पर 'गोष्ठश्वः' प्रयोग सिद्ध होता है। गोष्ठ में अपने स्थान पर रहते हुए जो बैल कुत्ते की तरह दूसरों से द्वेष करता हो, उसे 'गोष्ठश्व' कहा जाता है।

(३४) **ब्रह्मवर्चसम्, हस्तिवर्चसम् (प्रयोग)**—'ब्रह्मणो वर्चः' इस विग्रह में ब्रह्मन् ङस् वर्चस् सु का 'षष्ठी' सूत्र से तत्पुरुष समास हुआ। समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लोप हो गया। 'ब्रह्मन् तथा हस्तिन् शब्द से पर जो वर्चस् शब्द तदन्त समास से समासान्त अच् प्रत्यय हो' एतदर्थक 'ब्रह्महस्तिभ्यां वर्चसः' सूत्र से समासान्त अच् प्रत्यय हुआ। विभक्तिकार्य करने पर 'ब्रह्मवर्चसम्' प्रयोग सिद्ध हुआ।

इसी प्रकार 'हस्तिनो वर्चः' इस विग्रह में 'हस्तिवर्चसम्' प्रयोग उक्त प्रक्रिया के अनुसार ही सिद्ध होगा।

(३५) **पल्यवर्चसम्, राजवर्चसम् (प्रयोग)**—'पलं मांसम्, तदर्हतीति पल्यः, मांसभोजीत्यर्थः'। पल का अर्थ मांस होता है, उसे खानेवाला पल्य कहलाता है। 'पल्यस्य वर्चः' इस विग्रह में षष्ठीतत्पुरुष समास, समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लोप, 'पल्य तथा राजन् शब्द से पर जो वर्चस् शब्द तदन्त समास से समासान्त अच् प्रत्यय हो' एतदर्थक 'पल्यराजभ्यां चेति वक्तव्यम्' इस वार्तिक से समासान्त अच् प्रत्यय हुआ। विभक्तिकार्य करने पर 'पल्यवर्चसम्' प्रयोग सिद्ध हुआ।

इसी प्रकार 'राज्ञां वर्चः' इस विग्रह में षष्ठीतत्पुरुषसमास तथा उपर्युक्त वार्तिक से समासान्त अच् प्रत्यय करने पर एवं विभक्तिकार्य करने पर 'राजवर्चसम्' प्रयोग सिद्ध होता है।

(३६) **अवतमसम्, सन्तमसम् (प्रयोग)**—'अवहीनं तमः' इस विग्रह में 'प्रादयो गताद्यर्थे प्रथमया' इस वार्तिक से तत्पुरुष समास हुआ। समासत्वात् विभक्ति का लोप हो गया। 'अव, सम् तथा अन्ध शब्द से पर जो तमस् शब्द तदन्त समास से समासान्त अच् प्रत्यय हो' एतदर्थक 'अवसमन्धेभ्यस्तमसः' सूत्र से समासान्त अच् प्रत्यय हुआ। विभक्तिकार्य करने पर 'अवतमसम्' प्रयोग सिद्ध हुआ।

इसी प्रकार 'सन्ततं तमः' इस विग्रह में प्रादिसमास, प्रस्तुत सूत्र से समासान्त अच् करने पर तथा विभक्तिकार्य करने पर 'सन्तमसम्' प्रयोग सिद्ध होता है।

(३७) **श्वोवसीयम्, श्वःश्रेयसम्** (प्रयोग)—वसु शब्द प्रशस्तवाची है। 'अतिशयेन वसुः' इस विग्रह में 'वसु' शब्द से 'द्विवचनविभज्योपपदे तरबीयसुनौ' से ईयसुन् प्रत्यय आता है। टिलोप करने पर 'वसीयस्' शब्द बनता है। श्वस् शब्द यद्यपि कालवाची है, किन्तु यहाँ पर वह उत्तरपदार्थभूत प्रशंसा का द्योतन करता है। यहाँ पर श्वस् तथा वसीयस् का मयूरव्यंसकादित्वात् समास हुआ। 'श्वस् शब्द से पर जो वसीयस् तथा श्रेयस् शब्द तदन्त समास से समासान्त अच् प्रत्यय हो' एतदर्थक 'श्वसो वसीयः श्रेयसः' सूत्र से समासान्त अच् प्रत्यय हुआ। टिलोप तथा विभक्तिकार्य करने पर 'श्वोवसीयम्' प्रयोग सिद्ध हुआ।

'अतिशयेन प्रशस्तम्' इस विग्रह में प्रशस्त शब्द से ईयसुन् प्रत्यय हुआ। 'प्रशस्तस्य श्रः' से प्रशस्त शब्द को श्र आदेश हो गया। गुण करने पर श्रेयस् शब्द बनता है। श्वस् शब्द के साथ श्रेयस् शब्द का मयूरव्यंसकादित्वात् समास हुआ तथा 'श्वसो वसीयः श्रेयसः' सूत्र से समासान्त अच् प्रत्यय हुआ। 'प्रकृत्यैकाच्' सूत्र से प्रकृतिभाव होने के कारण श्रेयस् के टि का लोप नहीं होता है। विभक्तिकार्य करने पर 'श्वःश्रेयसम्' प्रयोग सिद्ध होता है। यहाँ पर श्वस् यह अव्यय उत्तरपदार्थभूत आशीर्वाद के विषय को द्योतित कर रहा है। 'श्वःश्रेयसं ते भूयात्' इस प्रकार आशीर्वादात्मक वाक्य का प्रयोग होता है।

(३८) **अनुरहसम्, अवरहसम्, तप्तरहसम्** (**प्रयोग**)—'अनुगतं रहः' इस विग्रह में 'प्रादयो गताद्यर्थे प्रथमया' इस वार्तिक से तत्पुरुष समास हुआ। समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लोप हो गया। 'अनु, अव तथा तप्त शब्द से पर जो रहस् शब्द तदन्त समास से समासान्त अच् प्रत्यय हो' एतदर्थक 'अन्ववतप्ताद्रहसः' सूत्र से समासान्त अच् प्रत्यय हुआ। विभक्तिकार्य करने पर 'अनुरहसम्' प्रयोग सिद्ध हुआ।

'अवहीनं रहः' इस विग्रह में प्रादिसमास, 'अन्ववतप्ताद्रहसः' से समासान्त अच् तथा विभक्तिकार्य करने पर 'अवरहसम्' सिद्ध होता है।

'तप्तं रहः' इस विग्रह में कर्मधारय समास करने पर, 'अन्ववतप्ताद्रहसः' से समासान्त अच् करने पर तथा विभक्तिकार्य करने पर 'तप्तरहसम्' प्रयोग सिद्ध होता है।

(३९) **प्रत्युरसम् (प्रयोग)**—'उरसि' इस विग्रह में उरस् ङि तथा सप्तम्यर्थबोधक प्रति का 'अव्ययं विभक्ति०' सूत्र से विभक्त्यर्थ में अव्ययीभाव समास हुआ। समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लोप हो गया। प्रति को उपसर्जन संज्ञा तथा उसका पूर्वप्रयोग हुआ। यण्सन्धि हो गयी। 'प्रति से पर सप्तमी में स्थित जो उरस् शब्द तदन्त समास से समासान्त अच् प्रत्यय हो' एतदर्थक 'प्रतेरुरसः सप्तमीस्थात्' सूत्र से समासान्त अच् प्रत्यय हुआ। अव्ययत्व, नपुंसकत्व आदि करने पर तथा विभक्तिकार्य करने पर 'प्रत्युरसम्' प्रयोग सिद्ध होता है।

(४०) **अनुगवम् (प्रयोग)**—'गोः अनु' इस विग्रह में अनु से दीर्घत्व द्योत्य होने के कारण 'यस्य चायामः' सूत्र से अव्ययीभाव समास हुआ। समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लोप हो गया। अनु को उपसर्जन संज्ञा तथा उसका पूर्वप्रयोग हुआ। 'दीर्घत्व रूप अर्थ द्योत्य होने पर 'अनुगव' ऐसा निपातन किया जाता है अर्थात् अनुगो शब्द से समासान्त अच् प्रत्यय हो' एतदर्थक 'अनुगवमायामे' सूत्र से समासान्त अच् प्रत्यय हुआ। अवादेश, सु विभक्ति, उसे अमादेश तथा पूर्वरूप करने पर 'अनुगवम्' प्रयोग सिद्ध होता है।

(४१) **प्राध्वो रथः (प्रयोग)**—'प्रगतोऽध्वानम्' इस विग्रह में 'अत्यादयः क्रान्ताद्यर्थे द्वितीयया' इस वार्त्तिक से समास हुआ। समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लोप हो गया। 'उपसर्ग से पर जो अध्वन् शब्द तदन्त समास से समासान्त अच् प्रत्यय हो' एतदर्थक 'उपसर्गादध्वनः' सूत्र से समासान्त अच् प्रत्यय हुआ। 'नस्तद्धिते' से टिलोप हो गया। समुदाय से सु विभक्ति, रुत्व एवं विसर्ग करने पर 'प्राध्वः' प्रयोग सिद्ध हुआ।

(४२) **सुराजा, अतिराजा (प्रयोग)**—'सु शोभनो राजा' इस विग्रह में 'प्रादयो गताद्यर्थे प्रथमया' इस वार्त्तिक से समास हुआ। समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लोप हो गया। यहाँ 'राजाहःसखिभ्यष्टच्' सूत्र से समासान्त टच् प्रत्यय प्राप्त था, किन्तु 'पूजनार्थक से पर समासान्त प्रत्यय नहीं हो' एतदर्थक 'न पूजनात्' इस सूत्र से निषेध होने के कारण टच् प्रत्यय नहीं हुआ। विभक्तिकार्य करने पर 'सुराजा' प्रयोग सिद्ध हुआ।

इसी प्रकार 'अतिक्रान्तो राजानम्' इस विग्रह में 'अत्यादयः क्रान्ताद्यर्थे द्वितीयया' इस वार्त्तिक से समास करने के बाद समासान्त टच् की प्राप्ति थी, किन्तु 'न पूजनात्' सूत्र से निषेध होने के कारण 'अतिराजा' प्रयोग ही सिद्ध हुआ।

'न पूजनात्' सूत्र से समासान्त प्रत्यय का जो निषेध किया जाता है, वह सु एवं अति इन्हीं दो के बाद पूजनार्थक शब्दों से हो' एतदर्थक 'स्वतिभ्यामेव' इस वार्त्तिक के कारण 'परमश्चासौ राजा' इस विग्रह में कर्मधारय समास होने के बाद 'राजाहःसखिभ्यष्टच्' से समासान्त टच् प्रत्यय होता है। टिलोप एवं विभक्तिकार्य करने पर 'परमराजः' प्रयोग सिद्ध होता है।

(४३) **किंराजा, किंसखा आदि (प्रयोग)**—'कुत्सितः राजा' इस विग्रह में 'किं क्षेपे' सूत्र से निन्दा अर्थ में किम् शब्द का राजन् सु के साथ समास हुआ। समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लोप हो गया। 'राजाहः-सखिभ्यष्टच्' से समासान्त टच् प्राप्त था, किन्तु 'क्षेप अर्थात् निन्दा अर्थ में जो किम् शब्द उससे पर जो हो तदन्त से समासान्त प्रत्यय नहीं हो' एतदर्थक 'किमः क्षेपे' सूत्र से समासान्त टच् प्रत्यय का निषेध होने से तथा विभक्ति-कार्य करने पर 'किंराजा' प्रयोग सिद्ध होता है।

इसी प्रकार 'कुत्सितः सखा' इस विग्रह में समासोपरान्त प्राप्त समासान्त टच् प्रत्यय का 'किमः क्षेपे' से निषेध करने पर तथा विभक्तिकार्य करने पर 'किंसखा' प्रयोग सिद्ध होता है।

जहाँ क्षेप अर्थात् निन्दा अर्थ की प्रतीति किम् से नहीं होगी, वहाँ समा-सान्त टच् ही होगा। जैसे—'कस्य राजा' अथवा 'को राजा' ऐसा विग्रह यदि किया जाय तो यहाँ समासान्त टच् प्रत्यय करके 'किं राजः' आदि प्रयोग ही सिद्ध होगा, क्योंकि किम् शब्द यहाँ प्रश्नार्थ में प्रयुक्त है।

(४४) **अराजा, असखा (प्रयोग)**—'न राजा' इस विग्रह में 'नञ्' सूत्र से समास हुआ। 'नलोपो नञः' से नकार का लोप हो गया। 'राजाहः-सखिभ्यष्टच्' से समासान्त टच् प्रत्यय प्राप्त था, किन्तु 'नञ्तत्पुरुष से समा-सान्त प्रत्यय नहीं हो' एतदर्थक 'नञस्तत्पुरुषात्' सूत्र से निषेध होने के कारण तथा विभक्तिकार्य करने पर 'अराजा' प्रयोग ही हुआ।

इसी प्रकार 'न सखा' ऐसा विग्रह करने पर नञ् समास, नलोप, समा-सान्त टच् प्राप्त, 'नञस्तत्पुरुषात्' से उसका निषेध तथा विभक्तिकार्य करने पर 'असखा' प्रयोग ही सिद्ध होता है।

'नञस्तत्पुरुषात्' सूत्र में 'तत्पुरुषात्' कहने के कारण ही 'अविद्यमाना धूर्यस्य' इस विग्रह में 'नञोऽस्त्यर्थानां वाच्यो वा चोत्तरपदलोपः' वार्त्तिक से बहुव्रीहि समास तथा विद्यमान पद का लोप करने के बाद 'ऋक्पूरब्धूः-पथामानक्षे' सूत्र से समासान्त अच् का इससे निषेध नहीं होने के कारण अच् प्रत्यय होने पर तथा विभक्तिकार्य करने पर 'अधुरं शकटम्' ऐसा प्रयोग सिद्ध होता है।

(४५) **पथो विभाषा (सूत्र)**—इस सूत्र में 'नञस्तत्पुरुषात्' सूत्र से 'नञः' तथा 'तत्पुरुषात्' पदों की एवं 'न पूजनात्' सूत्र से 'न' पद की अनुवृत्ति आती है। तदनुसार—'नञ् से पर जो पथिन् शब्द तदन्त तत्पुरुष से विकल्प से समासान्त प्रत्यय हो' यही सूत्रार्थ फलित होता है। उदाहरण है—अपथम्—अपन्थाः।

'न पन्थाः' इस विग्रह में 'नञ्' सूत्र से तत्पुरुष समास हुआ। समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लोप हो गया। 'नलोपो नञः' सूत्र से न के नकार का लोप हो गया। 'ऋक्पूरब्धूःपथामानक्षे' सूत्र से समासान्त अच् प्रत्यय हुआ। भसंज्ञा तथा 'नस्तद्धिते' सूत्र से टि का लोप हो गया। 'अपथं नपुंसकम्' से नपुंसकत्व होने पर सु विभक्ति को अमादेश तथा पूर्वरूप करने से 'अपथम्' प्रयोग सिद्ध होता है।

समासान्त प्रत्यय के अभाव में 'अपन्थाः' प्रयोग सिद्ध होता है। यहाँ पथिन् शब्द से सु विभक्ति, 'पथिमथ्यृभुक्षामात्' से नकार को अकार, 'इतोऽत्सर्वनाम-स्थाने' से इकार को अकार 'थोन्थः' से थ को न्थादेश, सवर्णदीर्घ, स् को रुत्व एवं विसर्ग करने पर 'न पन्थाः' इस विग्रह में 'अपन्थाः' प्रयोग सिद्ध होता है।

तत्पुरुष समास होने पर ही 'पथो विभाषा' सूत्र की प्रवृत्ति होती है, अतः 'अविद्यमानः पन्थाः यस्य' इस विग्रह में 'नञोऽस्त्यर्थानां वाच्यो वा चोत्तर-पदलोपः' से बहुव्रीहि समास करने पर तथा विद्यमान पद का लोप करने पर 'ऋक्पूरब्धूःपथामानक्षे' सूत्र से समासान्त अच् नित्यरूप से होता है। टिलोप एवं विभक्तिकार्य करने पर 'अपथो देशः' सिद्ध होता है। इसी प्रकार अर्थाभाव में अव्ययीभाव समास करने पर भी 'अपथम्' ऐसा ही कृतसमासान्तप्रत्ययक प्रयोग होता है। तत्पुरुष से भिन्न समास होने पर समासान्त प्रत्यय का पाक्षिक निषेध भी नहीं होता है।

इस प्रकार सर्वसमासान्त-प्रकरण समाप्त हुआ।

अलुक्समास-प्रकरण

(१) स्तोकान्मुक्तः (प्रयोग)–'स्तोकात् मुक्तः' इस विग्रह में 'स्तोकान्तिकदूरार्थकृच्छ्राणि क्तेन' सूत्र से समास हुआ। 'स्तोकार्थक, अन्तिकार्थ, दूरार्थक शब्दों से तथा कृच्छ्र शब्द से पर पञ्चमी विभक्ति का अलुक् हो' एतदर्थक 'पञ्चम्याः स्तोकादिभ्यः' सूत्र से पञ्चमी विभक्ति का अलुक् होने से तथा विभक्तिकार्य करने पर 'स्तोकान्मुक्तः' प्रयोग सिद्ध होता है। इसी प्रकार 'अन्तिकादागतः, अभ्याशादागतः, दूरादागतः' आदि प्रयोग सिद्ध होंगे।

(२) ओजसाकृतम् (प्रयोग)—'ओजसा कृतम्' इस विग्रह में कर्तृकरणे कृता बहुलम्' से समास हुआ। समासत्वात् 'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः' से सुप् का लोप प्राप्त था, किन्तु 'ओजस्, सहस्, अम्भस् तथा तमस् शब्द से पर तृतीया समास में तृतीया विभक्ति का उत्तरपद के परे अलुक् हो' एतदर्थक 'ओजःसहोऽम्भस्तमसस्तृतीयायाः' सूत्र से तृतीया विभक्ति का अलुक् होने से तथा विभक्तिकार्य करने से 'ओजसाकृतम्' प्रयोग सिद्ध हुआ। इसी प्रकार 'सहसाकृतम्, अम्भसाकृतम्, तमसाकृतम्' प्रयोग सिद्ध होंगे।

(३) अञ्जसाकृतम् (प्रयोग)—'अञ्जसा कृतम्' इस विग्रह में 'कर्तृकरणे कृता बहुलम्' से समास हुआ। 'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः' से सुप् का लोप प्राप्त था, किन्तु 'अञ्जस् शब्द से परे तृतीया का अलुक् हो उत्तरपद के परे' एतदर्थक 'अञ्जस उपसङ्ख्यानम्' इस वार्त्तिक से तृतीया विभक्ति का अलुक् होने से तथा विभक्तिकार्य करने पर 'अञ्जसाकृतम्' प्रयोग सिद्ध हुआ।

(४) मनसागुप्ता (प्रयोग)—'मनसा गुप्ता' इस विग्रह में 'कर्तृकरणे कृता बहुलम्' से तृतीयातत्पुरुष समास हुआ। 'मनस् शब्द से पर तृतीया विभक्ति का उत्तरपद के परे अलुक् हो संज्ञा अर्थ मे' एतदर्थक 'मनसः संज्ञायाम्' सूत्र से तृतीया का अलुक् हो गया। विभक्तिकार्य करने पर 'मनसागुप्ता' प्रयोग सिद्ध हुआ।

(५) मनसाज्ञायी (प्रयोग)—'ज्ञातुं शीलमस्य' इस अर्थ मे ज्ञा धातु से 'सुप्यजातौ णिनिस्ताच्छील्ये' सूत्र से णिनि प्रत्यय, 'आतो युक् चिण्कृतोः' से युक् करने पर तथा पूर्व में आङ् उपसर्ग लगाने पर 'आज्ञायी' शब्द सिद्ध होता है। 'मनसा आज्ञायी' इस विग्रह में 'कर्तृकरणे कृता बहुलम्' सूत्र से तृतीया

तत्पुरुष समास हुआ। समासत्वात् 'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः' सूत्र से सुप् विभक्ति के लोप के क्रम में तृतीया विभक्ति का लोप प्राप्त था, किन्तु 'आज्ञायिन् शब्द के परे मनस् शब्द से विहित तृतीया विभक्ति का संज्ञा अर्थ में अलुक् हो' एतदर्थक 'आज्ञायिनि च' इस सूत्र से तृतीया विभक्ति का अलुक् होने से तथा विभक्तिकार्य करने पर 'मनसाज्ञायी' प्रयोग सिद्ध हुआ।

(६) आत्मनश्च (सूत्र)—इस सूत्र में 'अलुगुत्तरपदे' सूत्र से अलुक् तथा 'उत्तरपदे' का अधिकार आता है। 'ओजःसहोऽम्भस्तमसस्तृतीयायाः' सूत्र से 'तृतीयायाः' की अनुवृत्ति आती है तथा 'पूरण इति वक्तव्यम्' इस वार्तिक के अर्थ का प्रभाव भी पड़ता है। अतः 'आत्मन् शब्द से पर पूरण-प्रत्ययान्त उत्तरपद के परे तृतीया समास में तृतीया विभक्ति का अलुक् हो' यही सूत्रार्थ फलित होता है। उदाहरण है—आत्मना पञ्चमः।

'आत्मना पञ्चमः' इस विग्रह में 'तृतीया तत्कृतार्थेन गुणवचनेन' सूत्र में 'तृतीया' इस योगविभाग से समास हुआ। 'आत्मनश्च' सूत्र से तृतीया का अलुक् होने पर तथा विभक्तिकार्य करने पर 'आत्मनापञ्चमः' प्रयोग सिद्ध हुआ।

'जनार्दनस्त्वात्मचतुर्थ एव' इस पौराणिक प्रयोग में 'आत्मना चतुर्थः' ऐसा विग्रह करके प्रस्तुत सूत्र से तृतीया का अलुक् होने पर 'आत्मनाचतुर्थः' प्रयोग के स्थान पर 'आत्मचतुर्थः' का प्रयोग इसलिए हुआ है कि वहाँ 'आत्मा चतुर्थो यस्य' ऐसा विग्रह करके बहुव्रीहि समास करने पर 'आत्मचतुर्थः' प्रयोग सिद्ध किया गया है। तृतीयातत्पुरुष समास वहाँ नहीं है।

यदि 'पूरण-प्रत्ययान्त उत्तरपद के परे' ऐसा नहीं कहा जाय तो 'आत्मना कृतम्' इस विग्रह में समासोपरान्त तृतीया का अलुक् होने से 'आत्मकृतम्' के स्थान पर 'आत्मनाकृतम्' प्रयोग होने लगेगा।

(७) वैयाकरणाख्यायां चतुर्थ्याः (सूत्र)—इस सूत्र में 'अलुगुत्तरपदे' का अधिकार आता है। 'आत्मनश्च' सूत्र से 'आत्मनः' पद की अनुवृत्ति होती है। 'वैयाकरणी संज्ञा के परे आत्मन् शब्द से विहित चतुर्थी विभक्ति का चतुर्थी समास में अलुक हो' यही सूत्रार्थ फलित होता है। उदाहरण है—आत्मनेपदम्, आत्मनेभाषा।

'आत्मने पदम्' यहाँ पर आत्मन् शब्द से 'तादर्थ्ये चतुर्थी वाच्या' इस वार्तिक से तादर्थ्य में चतुर्थी विभक्ति आयी है। 'आत्मने पदम्' इस विग्रह में

'चतुर्थी तदर्थार्थ०' सूत्र में 'चतुर्थी' ऐसा योगविभाग करके समास किया गया। 'वैयाकरणाख्यायां चतुर्थ्याः' सूत्र से चतुर्थी विभक्ति का अलुक् हुआ। विभक्तिकार्य करने पर 'आत्मनेपदम्' प्रयोग सिद्ध होता है।

इसी प्रकार 'आत्मनेभाषा' प्रयोग सिद्ध होगा।

(८) **परस्य च (सूत्र)**—पर शब्द के भी चतुर्थी समास में चतुर्थी का अलुक् हो' यही सूत्रार्थ है। उदाहरण है—परस्मैदम् आदि।

'परस्मैपदम्' यहाँ पर तादर्थ्य में चतुर्थी हुई है। 'परस्मै पदम्' ऐसा विग्रह करने पर 'चतुर्थी' इस योगविभाग से चतुर्थीसमास हुआ। समासत्वात् सुप् विभक्ति के लोप-क्रम में पर शब्द से विहित चतुर्थी विभक्ति का लोप प्राप्त था, किन्तु 'परस्य च' सूत्र से चतुर्थी विभक्ति का अलुक् होने से तथा विभक्तिकार्य करने पर 'परस्मैपदम्' प्रयोग सिद्ध हुआ।

इसी प्रकार 'परस्मैभाषा' प्रयोग भी सिद्ध होगा।

(९) **त्वचिसारः (प्रयोग)**—'त्वचि सारः' इस विग्रह में 'सप्तमी शौण्डैः' इस सूत्र में 'सप्तमी' इस योगविभाग से समास हुआ। समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप के लोप-क्रम में सप्तमी विभक्ति का लोप प्राप्त था, किन्तु हलन्त एवं अदन्त से पर जो सप्तमी उसका सप्तमी समास में अलुक् हो उत्तरपद के परे, संज्ञा में' एतदर्थक 'हलदन्तात्सप्तम्याः संज्ञायाम्' सूत्र से अलुक् हुआ। विभक्तिकार्य करने पर 'त्वचिसारः' प्रयोग सिद्ध हुआ।

(१०) **गविष्ठिरः, युधिष्ठिरः (प्रयोग)**—'गवि स्थिरः' इस विग्रह में सप्तमीतत्पुरुष समास हुआ। प्रातिपदिकावयव सुप् का लोप प्राप्त था; किन्तु 'हलदन्तात्सप्तम्याः संज्ञायाम्' सूत्र से हलन्त तथा अदन्त न होने पर भी 'गवियुधिभ्यां स्थिरः' सूत्र में गवि ऐसा कहने के कारण ही सप्तमी विभक्ति का अलुक् हो गया। 'गवि एवं युधि इस सप्तम्यन्त से पर स्थिर के सकार को षकार हो' एतदर्थक 'गवियुधिभ्यां स्थिरः' सूत्र से स्थिर के सकार को षत्व हो गया। ष्टुत्व एवं विभक्तिकार्य करने पर 'गविष्ठिरः' प्रयोग सिद्ध होता है। यहाँ पर 'संज्ञायाम्' सूत्र से सप्तमी तत्पुरुष समास हुआ।

इसी प्रकार 'युधि स्थिरः' इस विग्रह में युध् ङि स्थिर सु का 'संज्ञायाम्' सूत्र से सप्तमीतत्पुरुष समास हुआ। प्रातिपदिकावयव सुप् के लोपक्रम में ङि विभक्ति का लोप प्राप्त था, किन्तु हलन्त होने के कारण 'हलदन्तात्सप्तम्याः संज्ञायाम्' सूत्र से उसका अलुक् हुआ। 'गवियुधिभ्यां स्थिरः' सूत्र से स्थिर के

सकार को षकार हो गया। ष्टुत्व एवं विभक्तिकार्य करने पर 'युधिष्ठिरः' प्रयोग सिद्ध होता है।

(११) अरण्येतिलकाः (प्रयोग)—'अरण्ये तिलकाः' इस विग्रह में अरण्य ङि तिलक जस् का 'संज्ञायाम्' सूत्र से सप्तमीतत्पुरुष समास हुआ। 'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः' सूत्र से विभक्ति के लोप-क्रम में सप्तमी विभक्ति का लोप प्राप्त था, किन्तु अदन्त होने के कारण 'हलदन्तात् सप्तम्याः संज्ञायाम्' सूत्र से उसका अलुक् हो गया। विभक्तिकार्य करने पर 'अरण्येतिलकाः' प्रयोग सिद्ध हुआ।

(१२) हृदिस्पृक्, दिविस्पृक् (प्रयोग)—'हृदयं स्पृशति' इस विग्रह में अलुक् के विधान के कारण सप्तमी विभक्ति आती है अथवा 'विवक्षातः कारकाणि भवन्ति' इस नियम के अनुसार कर्म की अधिकरणत्व विवक्षा में सप्तमी विभक्ति आती है, इसलिए 'हृदि' ऐसा रूप बनता है। 'हृद्द्युभ्यां च' इस वार्त्तिक से सप्तमी का अलुक् होने से 'हृदिस्पृक्' प्रयोग सिद्ध होता है। इसी प्रकार 'दिवं स्पृशति' इस विग्रह में कर्म की अधिकरणत्व विवक्षा में अथवा अलुग्विधानसामर्थ्यात् सप्तमी विभक्ति लाने पर तथा प्रस्तुत वार्तिक से सप्तमी विभक्ति का अलुक् होने पर 'दिविस्पृक्' प्रयोग सिद्ध होता है।

(१३) मुकुटेकार्षापणम्, दृषदिमाषकः (प्रयोग)—'मुकुटे कार्षापणम्' इस विग्रह में 'संज्ञायाम्' सूत्र से सप्तमीतत्पुरुष समास हुआ। समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् के लोपक्रम में सप्तमी विभक्ति का लोप प्राप्त था, किन्तु 'प्राचीनों के देश में जो कर का नाम है, उस हलादि उत्तरपद के परे सप्तमी का अलुक् हो' एतदर्थक 'कारनाम्नि च प्राचां हलादौ' सूत्र से सप्तमी का अलुक् हुआ। विभक्तिकार्य करने पर 'मुकुटेकार्षापणम्' प्रयोग सिद्ध होता है।

इसी प्रकार 'दृषदि माषकः' इस विग्रह में 'संज्ञायाम्' से सप्तमीतत्पुरुष समास 'कारनाम्नि च प्राचां हलादौ' सूत्र से सप्तमी का अलुक् तथा विभक्तिकार्य करने पर 'दृषदिमाषकः' प्रयोग सिद्ध होता है।

राजा द्वारा जो कर लिया जाता है उसी को कार कहा जाता है।

(१४) मध्येगुरुः (प्रयोग)—'मध्ये गुरुः' इस विग्रह में सप्तमीतत्पुरुष समास हुआ। 'मध्य शब्द से पर सप्तमी समास में गुरुरूप उत्तरपद के परे सप्तमी का अलुक् हो' एतदर्थक 'मध्याद् गुरौ' सूत्र से सप्तमी का अलुक् हुआ। विभक्तिकार्य करने पर 'मध्येगुरुः' प्रयोग सिद्ध हुआ।

(१५) अन्तेगुरुः (प्रयोग)—'अन्ते गुरुः' इस विग्रह में सप्तमीतत्पुरुष समास हुआ। 'अन्तशब्द से पर सप्तमीसमास में गुरुरूप उत्तरपद के परे सप्तमी का अलुक् हो' एतदर्थक 'अन्ताच्च' इस वार्त्तिक से सप्तमी का अलुक् हुआ। विभक्तिकार्य करने पर 'अन्तेगुरुः' प्रयोग सिद्ध हुआ।

(१६) कण्ठेकालः, उरसिलोमाः (प्रयोग)—'कण्ठे कालो यस्य' इस विग्रह में व्यधिकरणपदक बहुव्रीहि समास हुआ। समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् के लोप क्रम में सप्तमी का लोप प्राप्त था, किन्तु 'मूर्धन् एवं मस्तक शब्द से भिन्न जो स्वाङ्गवाचक शब्द उससे पर सप्तमी का कामशब्द से भिन्न उत्तरपद के परे अलुक् हो' एतदर्थक 'अमूर्धमस्तकात्स्वाङ्गादकामे' सूत्र से सप्तमी का अलुक् होने से 'कण्ठेकालः' प्रयोग सिद्ध हुआ।

इसी प्रकार 'उरसि लोमानि यस्य' ऐसा विग्रह करने पर बहुव्रीहि समास, प्रस्तुत सूत्र से सप्तमी का अलुक् तथा विभक्तिकार्य करने पर 'उरसिलोमाः' प्रयोग सिद्ध होगा।

(१७) हस्तेबन्धः—हस्तबन्धः (प्रयोग)—'हस्ते बन्धः' इस विग्रह में हस्त ङि बन्ध सु का 'संज्ञायाम्' सूत्र से सप्तमीतत्पुरुष समास हुआ। समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् के लोप-क्रम में ङि विभक्ति का लोप प्राप्त था, किन्तु 'हलन्त तथा अदन्त शब्द के पर सप्तमी समास में जो सप्तमी उसका बन्धरूप उत्तरपद के परे विकल्प से अलुक् हो' एतदर्थक 'बन्धे च विभाषा' सूत्र से सप्तमी का वैकल्पिक अलुक् होने से 'हस्तेबन्धः' तथा 'हस्तबन्धः' प्रयोग सिद्ध होते हैं।

(१८) स्तम्बेरमः, कर्णेजपः (प्रयोग)—'स्तम्बे रमते' इस विग्रह में रम् धातु से 'स्तम्बकर्णयोरमिजपोः' सूत्र से रम् धातु से अच् प्रत्यय करने पर 'रमः' रूप बनता है। उपपद समासोपरान्त 'सप्तमीतत्पुरुष समास में कृदन्त तदादि के पर सप्तमी का बहुल प्रकार से अलुक् हो' एतदर्थक 'तत्पुरुषे कृति बहुलम्' सूत्र से सप्तमी का अलुक् होने पर तथा विभक्तिकार्य करने पर 'स्तम्बेरमः' प्रयोग सिद्ध होता है।

इसी प्रकार 'कर्णे जपति' इस विग्रह में जप् धातु से अच् प्रत्यय करने पर निष्पन्न जपः के साथ सप्तम्यन्त कर्ण शब्द का समास करने के बाद प्रस्तुत सूत्र से सप्तमी का अलुक् करने पर तथा विभक्तिकार्य करने पर 'कर्णेजपः' प्रयोग सिद्ध होता है।

(१९) **प्रावृषिजः, शरदिजः, कालेजः, दिविजः (प्रयोग)**—'प्रावृषि जायते' इस विग्रह में जन् धातु से 'जनेर्डः' सूत्र से डप्रत्यय करने पर निष्पन्न जः शब्द के साथ सप्तम्यन्त प्रावृष् शब्द का समास करने के बाद 'प्रावृट्शरत्कालः दिवां जे' सूत्र से सप्तमी का अलुक् होने से 'प्रावृषिजः' प्रयोग सिद्ध होता है। इसी प्रकार 'शरदि जातः' इस विग्रह में शरदिजः, 'काले जातः' इस विग्रह में कालेजः तथा 'दिवि जातः' इस विग्रह में 'दिविजः' प्रयोग सिद्ध होंगे।

(२०) **विभाषा वर्षक्षरशरवरात् (सूत्र)**—इस सूत्र में 'अलुगुत्तरपदे' का अधिकार आता है। 'हलदन्तात्सप्तम्याः संज्ञायाम्' से 'सप्तम्याः' पद की अनुवृत्ति आती है तथा 'संज्ञायाम्' की भी अनुवृत्ति आती है। 'प्रावृट्शरत्काल-दिवां जे' से 'जे' की अनुवृत्ति आती है। तदनुसार—'वर्ष, क्षर, शर, तथा वरशब्द से पर सप्तमी का ज के परे रहते विकल्प से अलुक् हो' यही अर्थ फलित होता है। उदाहरण है—वर्षेजः—वर्षजः आदि।

'वर्षे जायते या जातः' इस अर्थ में कृतडप्रत्ययान्तक ज शब्द के परे रहते प्रस्तुत सूत्र से सप्तमी का वैकल्पिक अलुक् होने से 'वर्षेजः' तथा 'वर्षजः' दोनों रूप होते हैं। इसी प्रकार 'क्षरेजः—क्षरजः, शरेजः—शरजः, वरेजः—वरजः' प्रयोग सिद्ध होंगे।

(२१) **घकालतनेषु कालनाम्नः (सूत्र)**—इस सूत्र में 'अलुगुत्तरपदे' का अधिकार, 'सप्तम्याः' पद की अनुवृत्ति, 'विभाषा वर्षक्षरशरवरात्' से 'विभाषा' पद की अनुवृत्ति आती है। 'घप्रत्यय (तरप् तथा तमप् प्रत्यय) के परे, कालशब्द के परे तथा तन शब्द के परे काल के नामवाचक शब्द से पर सप्तमी का वैकल्पिक अलुक् हो' यही सूत्रार्थ है। उदाहरण है—पूर्वाह्णेतरे—पूर्वाह्णतरे। यहाँ पर तरे इस घप्रत्ययान्ततदादि के परे कालनामार्थक पूर्वाह्ण शब्द से पर सप्तमी का वैकल्पिक अलुक् होने से 'पूर्वाह्णेतरे' तथा 'पूर्वाह्णतरे' दोनों प्रयोग सिद्ध होते हैं। इसी प्रकार काल शब्द के परे सप्तमी के अलुक् होने का उदाहरण है—पूर्वाह्णेकाले—पूर्वाह्णकाले। तन के परे सप्तमी का अलुक् होने का उदाहरण है—'पूर्वाह्णेतने—पूर्वाह्णतने'।

(२२) **खेशयः—खशयः, ग्रामेवासः—ग्रामवासः, ग्रामेवासी—ग्रामवासी (प्रयोग)**—'खे शेते' इस विग्रह में सप्तम्यन्त ख शब्द का शय सु के साथ सप्तमीतत्पुरुष समास हुआ। 'कालवाचक से भिन्न से पर सप्तमी का सप्तमी समास में शय, वास तथा वासिरूप उत्तरपद के परे विकल्प से अलुक् हो' एत-

दर्थक 'शयवासवासिष्वकालात्' सूत्र स सप्तमी विभक्ति का वैकल्पिक अलुक् होने से तथा विभक्तिकार्य करने पर 'खेशयः' तथा 'खशयः' प्रयोग सिद्ध होगा। इसी प्रकार 'ग्रामेवासः—ग्रामवासः, ग्रामेवासी—ग्रामवासी' प्रयोग भी सिद्ध होंगे।

(२३) **चौरस्य कुलम् (प्रयोग)**—'चौरस्य कुलम्' इस विग्रह में 'षष्ठी' सूत्र से षष्ठी तत्पुरुष समास हुआ। समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् के लोपक्रम में 'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः' से विभक्ति का लोप प्राप्त हुआ, किन्तु 'आक्रोश अर्थात् निन्दा रूप अर्थ के गम्यमान होने पर षष्ठी समास में षष्ठी विभक्ति का अलुक् हो उत्तरपद के परे' एतदर्थक 'षष्ठ्या आक्रोशे' सूत्र से षष्ठी का अलुक् होने पर तथा विभक्तिकार्य करने पर 'चौरस्य कुलम्' प्रयोग सिद्ध होता है। यदि आक्रोश अर्थ गम्यमान नहीं होगा तो षष्ठी का अलुक् भी नहीं होगा। जैसे—ब्राह्मणकुलम्। यहाँ पर चूंकि निन्दा अर्थ गम्यमान नहीं है, अतः 'ब्राह्मणस्य कुलम्' ऐसा विग्रह करके समासोपरान्त सुप् विभक्ति का लोप करने पर 'ब्राह्मणकुलम्' ऐसा ही प्रयोग होगा।

(२४) **वाचोयुक्तिः, दिशोदण्डः, पश्यतोहरः (प्रयोग)**—'वाचः युक्तिः' इस विग्रह में षष्ठीतत्पुरुष समासोपरान्त षष्ठी विभक्ति का लोप प्राप्त था, किन्तु 'वाक्, दिक् तथा पश्यत् शब्द से पर जो षष्ठी उसका क्रमशः युक्ति, दण्ड, तथा हर शब्द के परे अलुक् हो' एतदर्थक 'वाग्दिक्पश्यद्भ्यो युक्तिदण्डहरेषु' इस वार्त्तिक से षष्ठी का अलुक् हो गया। विभक्तिकार्य करने पर 'वाचोयुक्तिः' प्रयोग सिद्ध हुआ। इसी प्रकार 'दिशः दण्डः' इस विग्रह में दिशोदण्डः, 'पश्यतो हरः' इस विग्रह में पश्यतोहरः सिद्ध होता है।

(२५) **देवानाम्प्रियः**—'देवानां प्रियः' इस विग्रह में 'षष्ठी' सूत्र से समास हुआ। 'मूर्खरूप अर्थ में देवशब्द से पर जो षष्ठी उसका अलुक् हो प्रियरूप उत्तरपद के परे' एतदर्थक 'देवानाम्प्रिय इति च मूर्खे' इस वार्त्तिक से षष्ठी का अलुक् होने पर 'देवानाम्प्रियः' ऐसा प्रयोग होता है।

जहाँ मूर्ख अर्थ की प्रतीति नहीं होती है, वहाँ षष्ठी का लोप होने पर 'देवप्रियः' ऐसा ही प्रयोग होता है।

(२६) **शुनःशेपः, शुनःपुच्छः, शुनोलाङ्गूलः (प्रयोग)**—'शुनः शेपः' इस विग्रह में षष्ठी समासोपरान्त 'श्वन् शब्द से पर शेप, पुच्छ तथा लाङ्गूल रूप उत्तरपद के परे षष्ठी का अलुक् हो' एतदर्थक 'शेपपुच्छलाङ्गूलेषु शुनः' इस

वार्त्तिक से षष्ठी का अलुक् होने से विभक्तिकार्य करने पर 'शुनःशेपः' प्रयोग होता है। इसी प्रकार क्रमशः—पुच्छ तथा लाङ्गूल रूप उत्तरपदों के परे श्वन् शब्द से पर षष्ठी का अलुक् करने पर क्रमशः—'शुनःपुच्छः' तथा 'शुनोलाङ्गूलः' प्रयोग सिद्ध होता है।

(२७) **दिवोदासः (प्रयोग)**—'दिवो दासः' इस विग्रह में षष्ठीतत्पुरुष-समासोपरान्त विभक्ति का लोप प्राप्त होने पर 'दिव् शब्द से पर जो षष्ठी उसका दासरूप उत्तरपद के परे अलुक् हो' एतदर्थक 'दिवश्च दासे' इस वार्त्तिक से अलुक् होने पर तथा विभक्तिकार्य करने पर 'दिवोदासः' प्रयोग सिद्ध होता है।

(२८) **दास्याःपुत्रः— दासीपुत्रः (प्रयोग)**—'दास्याः पुत्रः' इस विग्रह में षष्ठीतत्पुरुषसमासोपरान्त 'निन्दारूप अर्थ में पुत्ररूप उत्तरपद के परे षष्ठी विभक्ति का विकल्प से अलुक् हो' एतदर्थक 'पुत्रेऽन्यतरस्याम्' सूत्र से षष्ठी का वैकल्पिक अलुक् होने पर क्रमशः 'दास्याःपुत्रः' तथा 'दासीपुत्रः' ये दोनों प्रयोग होते हैं। यहाँ निन्दा रूप अर्थ गम्यमान हो रहा है।

(२९) **होतुरन्तेवासी, होतुःपुत्रः, पितुरन्तेवासी, पितुःपुत्रः (प्रयोग)**—'होतुः अन्तेवासी' इस विग्रह में षष्ठीसमासोपरान्त 'विद्या एवं योनि-सम्बन्ध-वाचक ऋदन्त से पर षष्ठी का उत्तरपद के परे अलुक् हो' एतदर्थक 'ऋतो विद्यायोनिसम्बन्धेभ्यः' सूत्र से षष्ठी का अलुक् हुआ। विभक्तिकार्य करने पर 'होतुरन्तेवासी' प्रयोग सिद्ध हुआ। इसी प्रकार 'होतुः पुत्रः' आदि में षष्ठी का अलुक् होने पर इष्टसिद्धि होगी।

(३०) **मातुःष्वसा—मातुःस्वसा, मातृष्वसा—मातुः स्वसा (प्रयोग)**—'मातुः स्वसा' इस विग्रह में 'षष्ठी' सूत्र से समास हुआ। विभक्ति का लोप प्राप्त था, किन्तु 'मातृ तथा पितृ शब्द से पर षष्ठी का अलुक् हो, स्वसृ तथा पतिरूप उत्तरपद के परे विकल्प से' एतदर्थक 'विभाषा स्वसृपत्योः' सूत्र से षष्ठी का अलुक् हुआ। 'मातुः एवं पितुः शब्द से पर स्वसृ शब्द के आदि सकार को विकल्प से षकार हो समास में' एतदर्थक 'मातुःपितुर्भ्यामन्यतर-स्याम्' इस सूत्र से वैकल्पिक षत्व होने पर 'मातुःष्वसा' प्रयोग होगा। षत्वा-भावपक्ष में 'मातुःस्वसा' प्रयोग ही होगा। अलुक् के विकल्पपक्ष में षष्ठी का लोप हो जायगा तथा 'मातृ एवं पितृ शब्द से पर स्वसृ शब्द के आदि सकार को समास में षत्व हो' एतदर्थक 'मातृपितृभ्यां स्वसा' सूत्र से स्वसृ के आदि

सकार को षत्व होने से 'मातृष्वसा' प्रयोग होगा। समास न होने पर 'मातुः स्वसा' ऐसा ही रूप रहेगा।

इस प्रकार—षष्ठी का अलुक् तथा षत्व होने पर 'मातुःष्वसा' यह एक रूप, षष्ठी का अलुक् तथा षत्व न होने पर 'मातुःस्वसा' यह दूसरा रूप, षष्ठी का लुक् होने पर 'मातृपितृभ्यां स्वसा' से षत्व होने पर 'मातृष्वसा' यह तीसरा रूप तथा समास न होने पर 'मातुः स्वसा' यह चौथा रूप निष्पन्न होता है।

इसी प्रकार 'पितुःष्वसा, पितुःस्वसा, पितृष्वसा तथा पितुः स्वसा' प्रयोग सिद्ध होते हैं।

इस प्रकार अलुक्समास-प्रकरण समाप्त हुआ।

समासाश्रयविधि-प्रकरण

(१) ब्राह्मणितरा (प्रयोग)—'इयमनयोर्ब्राह्मणी' इस अर्थ में ब्राह्मणी शब्द से तरप् प्रत्यय तथा टाप् प्रत्यय किया गया है। 'भाषितपुंस्क से पर जो ङी तदन्त अनेकाच् को घरूप कल्प प्रत्यय के परे चेलट्, ब्रुव, गोत्र मत एवं हत रूप उत्तरपद के परे ह्रस्व हो' एतदर्थक 'घरूपकल्पचेलड्ब्रुवगोत्रमतहतेषु ङ्योऽनेकाचो ह्रस्वः' सूत्र से ब्राह्मणी शब्द के ईकार को ह्रस्व किया जाता है। विभक्तिकार्य करने पर 'ब्राह्मणितरा' प्रयोग सिद्ध होता है। इसी प्रकार 'ब्राह्मणितमा, ब्राह्मणिरूपा' आदि प्रयोग सिद्ध होते हैं।

(२) नद्याः शेषस्यान्यतरस्याम् (सूत्र)—'घरूपकल्प०' इस पूर्वसूत्र में ङ्यन्त एवं अनेकाच् को ह्रस्व विधान किया गया है। इस सूत्र से उससे भिन्न को ह्रस्व विधान करने के कारण ही 'शेषस्य' ऐसा सूत्र में कहा गया है। सूत्र का अर्थ है—'घादि के परे अङ्यन्त नदीसंज्ञक को तथा ङ्यन्त एकाच् को विकल्प से ह्रस्व हो'। उदाहरण है—ब्रह्मबन्धूतरा—ब्रह्मबन्धुतरा। यहाँ पर 'बन्धु' शब्द से 'ऊङुतः' सूत्र से ऊङ्प्रत्यय हुआ है तथा बन्धू को नदी संज्ञा भी हुई है। इस प्रकार इस अङ्यन्त नदीसंज्ञक बन्धू शब्द को घ प्रत्यय अर्थात् तरप् प्रत्यय के परे वैकल्पिक ह्रस्व होने से 'ब्रह्मबन्धुतरा' तथा 'ब्रह्मबन्धूतरा' प्रयोग होता है। 'स्त्रितरा—स्त्रीतरा' में स्त्रीशब्द ङ्यन्त होने के साथ-साथ चूंकि एकाच् है, अतः वैकल्पिक ह्रस्व हुआ है।

(३) विदुषितरा (प्रयोग)—'विद्लृ ज्ञाने' धातु से 'विदेः शतुर्वसुः' से वसु प्रत्यय करने पर तथा तदन्त से ङीप् प्रत्यय करने पर विदुषी शब्द निष्पन्न होता है। 'इयमनयोर्विदुषी' इस अर्थ में तरप् प्रत्यय जब किया जाता है एवं टाँप् प्रत्यय किया जाता है, तब 'उगितश्च' सूत्र से वैकल्पिक ह्रस्व करने पर 'विदुषितरा' प्रयोग सिद्ध होता है।

'उगित से पर जो नदी तदन्त को घादि के परे विकल्प से ह्रस्व हो' यही सूत्रार्थ है। ह्रस्वाभाव पक्ष में 'तसिलादिष्वाकृत्वसुचः' से पुंवद्भाव होने पर 'विद्वत्तरा' प्रयोग सिद्ध होता है।

(४) हृल्लेखः आदि (प्रयोग)—'हृदयं लिखति इति हृल्लेखः'। यहाँ पर 'हृदयस्य हृल्लेखयदण्लासेषु' सूत्र से हृदय शब्द को हृदादेश हुआ है।

'लेख, यत्, अण् तथा लास के परे हृदय शब्द को हृदादेश हो' यही सूत्रार्थ है। इसी प्रकार 'हृदयस्य प्रियः' इस अर्थ में हृदय शब्द से यत् प्रत्यय, प्रस्तुत सूत्र से हृदय को हृदादेश करने पर 'हृद्यम्' प्रयोग सिद्ध होता है। अण् का उदाहरण 'हार्दम्' तथा लास का उदाहरण 'हृल्लासः' है।

(५) **सौहार्द्यम्—सौहृदय्यम् (प्रयोग)**—'सु शोभनं हृदयं यस्य' इस विग्रह में बहुव्रीहि समास करके निष्पन्न सुहृदय शब्द से भाव में ष्यञ् प्रत्यय आया। 'ष्यञ् प्रत्यय एवं रोगशब्द के परे हृदय शब्द को विकल्प से हृदादेश हो' एतदर्थक 'वा शोकष्यञ्रोगेषु' सूत्र से हृदय शब्द को हृदादेश हो गया। 'हृद्भगसिध्वन्ते' से उभयवृद्धि एवं विभक्तिकार्य करने पर 'सौहार्द्यम्' प्रयोग सिद्ध हुआ। हृदादेशाभाव पक्ष में आदिवृद्धि तथा 'यस्येति च' से य के अकार का लोप हो गया। प्रातिपदिकादि कार्य करने पर 'सौहृदय्यम्' प्रयोग सिद्ध हुआ।

(६) **हृद्रोगः—हृदयरोगः (प्रयोग)**—'हृदयस्य रोगः' इस विग्रह में षष्ठीतत्पुरुषसमासोपरान्त प्रातिपदिकावयव सुप् का लोप हो गया। 'वा शोकष्यञ्रोगेषु' सूत्र से हृदय शब्द को हृदादेश करने पर 'हृद्रोगः' तथा विकल्पपक्ष में 'हृदयरोगः' प्रयोग सिद्ध हुआ।

(७) **पद्धिमम् (प्रयोग)**—'पादस्य हिमम्' इस विग्रह में षष्ठीतत्पुरुषसमासोपरान्त विभक्ति का लोप हो गया। 'हिम, काषिन् तथा हतिशब्द के परे पाद शब्द को पत् आदेश हो' एतदर्थक 'हिमकाषिहतिषु च' सूत्र से पाद को पदादेश हो गया। विभक्तिकार्य करने पर 'पद्धिमम्' प्रयोग सिद्ध हुआ। इसी प्रकार 'पत्काषी, पद्धतिः' प्रयोग सिद्ध होंगे।

(८) **उदमेघः (प्रयोग)**—'उदकस्य मेघः' इस विग्रह में षष्ठीतत्पुरुषसमासोपरान्त प्रातिपदिकावयव सुप् का लोप हो गया। 'संज्ञारूप अर्थ में उदक को अदन्त 'उद' आदेश हो' एतदर्थक 'उदकस्योदः संज्ञायाम्' सूत्र से उदक शब्द को अकारान्त उदादेश हो गया। सु विभक्ति, रुत्व एवं विसर्ग करने पर 'उदमेघः' प्रयोग सिद्ध हुआ। जलपूर्णमेघ के सादृश्य से किसी व्यक्ति की यह संज्ञा है।

(९) **क्षीरोदः (प्रयोग)**—'क्षीरम् उदकं यस्य' इस विग्रह में 'अनेकमन्यपदार्थे' से बहुव्रीहि समास हुआ। समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लोप हो गया। 'उत्तरपदस्थ उदकशब्द को अदन्त उद आदेश हो' एतदर्थक

'उत्तरपदस्य चेति वक्तव्यम्' इस वार्त्तिक से उदक को उदादेश हो गया। विभक्तिकार्य करने पर 'क्षीरोदः' प्रयोग सिद्ध हुआ।

(१०) ग्रामणिपुत्रः—ग्रामणीपुत्रः (प्रयोग)—'ग्रामणीश्चासौ पुत्रश्च' ऐसा विग्रह करने पर कर्मधारय समास अथवा 'ग्रामण्यः पुत्रः' ऐसा विग्रह करने पर षष्ठीतत्पुरुष समास करने के बाद 'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः' से प्रातिपदिकावयव सुप् का लोप होने पर 'इगन्त जो अङ्यन्त उसे विकल्प से ह्रस्व हो उत्तरपद के परे' एतदर्थक 'इको ह्रस्वोऽङ्यो गालवस्य' सूत्र से ग्रामणी के ईकार को वैकल्पिक ह्रस्व होने से 'ग्रामणिपुत्रः—ग्रामणीपुत्रः' प्रयोग सिद्ध होते हैं।

(११) भ्रुकुटिः—भ्रूकुटिः-भ्रकुटिः (प्रयोग)—'भ्रुवः कुटिः' इस विग्रह में षष्ठीतत्पुरुषसमासोपरान्त प्रातिपदिकावयव सुप् का लोप होने पर 'अभ्रुकुंसादीनामिति वक्तव्यम्' इस वार्त्तिक से कुटि शब्द के परे भ्रू शब्द को वैकल्पिक ह्रस्व होने से 'भ्रुकुटिः' तथा 'भ्रूकुटिः' प्रयोग सिद्ध होते हैं। अन्य व्याख्या के अनुसार भ्रू शब्द को अकारान्तादेश का विधान भी इस वार्त्तिक से किया जाता है। तदनुसार 'भ्रकुटिः' रूप भी सिद्ध होगा।

(१२) एकरूप्यम्, एकक्षीरम् (प्रयोग)—'एकस्या आगतम्' इस अर्थ में 'हेतुमनुष्येभ्योऽन्यतरस्यां रूप्यः' सूत्र से रूप्य प्रत्यय हुआ। विभक्ति का लोप हो गया। 'एक शब्द को ह्रस्व हो तद्धित के परे तथा उत्तरपद के परे' एतदर्थक 'एकतद्धिते च' सूत्र से एका शब्द को ह्रस्व हुआ। विभक्तिकार्यादि करने पर 'एकरूप्यम्' प्रयोग सिद्ध हुआ।

इसी प्रकार 'एकस्याः क्षीरम्' इस विग्रह में षष्ठीतत्पुरुष समास, प्रातिपदिकावयव सुप् का लुक्, क्षीररूप उत्तरपद के परे एका के आकार को ह्रस्व एवं विभक्तिकार्य करने पर 'एकक्षीरम्' प्रयोग सिद्ध हुआ।

(१३) रेवतिपुत्रः, अजक्षीरम् (प्रयोग)—'रेवत्याः पुत्रः' इस विग्रह में षष्ठीतत्पुरुष समास हुआ। प्रातिपदिकावयव सुप् का लोप हो गया। 'संज्ञा एवं छन्द अर्थात् वेद में ङ्यन्त तथा आबन्त को बहुल प्रकार से ह्रस्व हो उत्तरपद के परे' एतदर्थक 'ङ्यापोः सञ्ज्ञाछन्दसोर्बहुलम्' सूत्र से रेवती शब्द के ईकार को वैकल्पिक ह्रस्व हुआ तथा विभक्तिकार्य करने पर 'रेवतिपुत्रः' प्रयोग सिद्ध हुआ। इसी प्रकार 'अजायाः क्षीरम्' इस विग्रह में समासोपरान्त

अजा शब्द के आकार को प्रस्तुत सूत्र से ह्रस्व करने पर 'अजक्षीरम्' प्रयोग वेद में होता है।

(१४) अजत्वम्—अजात्वम्, रोहिणित्वम्—रोहिणीत्वम् (प्रयोग)— 'अजायाः भावः' इस अर्थ में 'तस्य भावस्त्वतलौ' से त्व प्रत्यय हुआ। 'त्व प्रत्यय के परे ङ्यन्त तथा आबन्त को विकल्प से ह्रस्व हो' एतदर्थक 'त्वे च' सूत्र से आबन्त अजा को वैकल्पिक ह्रस्व होने से 'अजत्वम्' तथा 'अजात्वम्' प्रयोग सिद्ध होता है।

इसी प्रकार रोहिणीशब्द से त्व प्रत्यय आने पर उसके परे रोहिणी शब्द के ईकार को ङ्यन्तत्वात् वैकल्पिक ह्रस्व होने के कारण 'रोहिणित्वम्' तथा 'रोहिणीत्वम्' प्रयोग सिद्ध होता है।

(१५) कौमुदगन्धीपुत्रः, कौमुदगन्धीपतिः (प्रयोग)—'कुमुदगन्ध इव गन्धो यस्य सः कुमुदगन्धिः'। यहाँ पर 'सप्तम्युपमानपूर्वपदस्य बहुव्रीहिर्वाच्यो वा चोत्तरपदलोपः' इस वार्तिक से बहुव्रीहि समास करने पर तथा 'उपमानाच्च' से इत्व करने पर 'कुमुदगन्धिः' निष्पन्न होता है। 'कुमुदगन्धेरपत्यं स्त्री' इस अर्थ में 'तस्यापत्यम्' से अण् तथा 'अणिञोरनार्षयोः' से उसे ष्यङादेश किया गया। 'यस्येति च' से इकार का लोप, आदिवृद्धि तथा आप् प्रत्यय करने पर 'कौमुदगन्ध्या' शब्द बनता है। अब 'कौमुदगन्ध्यायाः पुत्रः' इस विग्रह में षष्ठीतत्पुरुषसमास करने के बाद प्रातिपदिकावयव सुप् का लोप होने पर 'ष्यङन्त पूर्वपद को सम्प्रसारण हो पुत्र तथा पतिरूप उत्तरपद के परे तत्पुरुष-समास में' एतदर्थक 'ष्यङः सम्प्रसारणं पुत्रपत्योस्तत्पुरुषे' सूत्र से य् को सम्प्र-सारण हुआ इकार, 'सम्प्रसारणाच्च' से पूर्वरूप हो गया 'सम्प्रसारण को दीर्घ हो उत्तरपद के परे' एतदर्थक 'सम्प्रसारणस्य' सूत्र से इकार को दीर्घ हो गया। समुदाय से सु विभक्ति, उसे रुत्व तथा विसर्ग करने पर 'कौमुदगन्धी-पुत्रः' प्रयोग सिद्ध हुआ।

इसी प्रकार 'कौमुदगन्ध्यायाः पतिः' ऐसा विग्रह करने पर षष्ठीतत्पुरुष समास, विभक्ति का लोप, सम्प्रसारण, पूर्वरूप, सम्प्रसारण को दीर्घ तथा विभक्तिकार्य करने पर 'कौमुदगन्धीपतिः' प्रयोग सिद्ध होता है।

(१६) परमकारीषगन्धीपुत्रः (प्रयोग)—'करीषं गोमहिषादिपुरी-षम्'। गाय-भैंसा आदि के मल अर्थात् गोबर को करीष कहा जाता है। 'करीषस्य गन्धः करीषगन्धः'। 'करीषगन्ध इव इव गन्धो यस्य' इस विग्रह में

'सप्तम्युपमानपूर्वपदस्य बहुव्रीहिर्वाच्यो वा चोत्तरपदलोपः' इस वार्त्तिक से बहुव्रीहिसमास तथा द्वितीय गन्ध शब्द का लोप हो गया। 'उपमानाच्च' से इत्व करने पर 'करीषगन्धिः' बनता है। 'करीषगन्धेरपत्यं स्त्री' इस अर्थ में अण्, अण् को ष्यङ् 'यस्येति च' से इकार का लोप, आदिवृद्धि, आप् प्रत्यय करने पर 'कारीषगन्ध्या' तथा 'परमा चासौ कारीषगन्ध्या' इस विग्रह में कर्मधारय तत्पुरुष करने पर 'ष्यङः सम्प्रसारणं पुत्रपत्योस्तत्पुरुषे' से सम्प्रसारण, 'सम्प्रसारणाच्च' से पूर्वरूप, 'सम्प्रसारणस्य' से दीर्घ तथा विभक्तिकार्य करने पर 'परमकारीषगन्धीपुत्रः' प्रयोग सिद्ध होता है। यहाँ पर करीषगन्धि-शब्द से ही ष्यङ् का विधान होने से परमकारीषगन्ध्या शब्द का ष्यङन्त तदादि न होने के कारण उसे सम्प्रसारण नहीं होता, किन्तु 'स्त्री प्रत्यय का अनुपसर्जन होने पर तदन्ततदादिविधिजन्य निषेध न हो' एतदर्थक 'स्त्रीप्रत्यये चानुपसर्जनेन' इस परिभाषा के कारण परमकारीषगन्ध्या शब्द को भी ष्यङन्त तदादि मानकर उसे सम्प्रसारणादि हुआ है।

जहाँ स्त्रीप्रत्यय उपसर्जनत्वेन प्रयुक्त है, वहाँ सम्प्रसारणादि नहीं होगा। जैसे 'कारीषगन्ध्यामतिक्रान्तः' इस विग्रह में 'अत्यादयः क्रान्ताद्यर्थे द्वितीयया' से समास करने पर 'अतिकारीषगन्ध्यः' शब्द बनता है। 'अतिकारीषगन्धस्य पुत्रः' ऐसा विग्रह करने पर 'अतिकारीषगन्ध्यपुत्रः' ऐसा ही प्रयोग सिद्ध होता है। यहाँ सम्प्रसारणादि नहीं होता।

(१७) कारीषगन्धीबन्धुः (**प्रयोग**)—'कारीषगन्ध्या बन्धुरस्य' इस विगह में 'अनेकमन्यपदार्थे' से बहुव्रीहि समास हुआ। समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लोप हो गया। 'बन्धुरूप उत्तरपद के परे ष्यङन्त को सम्प्रसारण हो बहुव्रीहि में' एतदर्थक 'बन्धुनि बहुव्रीहौ' सूत्र से सम्प्रसारण हुआ। 'सम्प्रसारणाच्च' से पूर्वरूप हो गया। 'सम्प्रसारणस्य' सूत्र से दीर्घ हुआ। सु विभक्ति, रुत्व तथा विसर्ग करने पर 'कारीषबन्धुः' प्रयोग सिद्ध हुआ।

पुत्र या पतिशब्द उत्तरपद के रूप में नहीं है तथा तत्पुरुषसमास भी नहीं हुआ है, अतः 'ष्यङः सम्प्रसारणं पुत्रपत्योस्तत्पुरुषे' इस पूर्वसूत्र से यहाँ चूंकि सम्प्रसारण नहीं होता, इसीलिए इस सूत्र का विधान किया गया है। तत्पुरुषसमास होने पर यदि बन्धु शब्द उत्तरपद के रूप में रहेगा तो वहाँ इस सूत्र से सम्प्रसारण नहीं होगा। जैसे—कारीषगन्ध्यायाः बन्धुः कारीषगन्ध्याबन्धुः।

(१८) इष्टकचितम्, पक्वेष्टकचितम् आदि (प्रयोग)—'इष्टकाभिश्चितम्' इस विग्रह में 'कर्तृकरणे कृता बहुलम्' सूत्र से समास हुआ। विभक्ति का लोप हो गया। 'इष्टका, इषीका तथा माला शब्द को एवं तदन्त शब्दों को क्रमशः चित, तूल तथा भारिन् रूप उत्तरपद के परे ह्रस्व हो' एतदर्थक 'इष्टकेषीकामालानां चिततूलभारिषु' सूत्र से इष्टका के आकार को ह्रस्व हो गया। विभक्तिकार्य करने पर 'इष्टकचितम्' प्रयोग सिद्ध हुआ। इष्टकान्त का उदाहरण है—पक्वेष्टकचितम्। इसी प्रकार 'इषीकतूलम्' आदि प्रयोग सिद्ध होते हैं।

(१९) सत्यङ्कारः, अगदङ्कारः (प्रयोग)—कृधातु से भाव में घञ् करके 'कारः' शब्द बनता है। 'सत्यस्य कारः' इस विग्रह में तत्पुरुष समास हुआ। विभक्ति का लोप हो गया। 'कार रूप उत्तरपद के परे सत्य तथा अगद शब्द को मुम् हो' एतदर्थक 'कारे सत्यागदस्य' सूत्र से मुमागम करने पर तथा विभक्तिकार्य करने पर 'सत्यङ्कारः' प्रयोग सिद्ध होता है।

इसी प्रकार 'गदस्य अभावः' इस विग्रह में अर्थाभाव में अव्ययीभाव करने पर 'अगदः' बनता है। 'अगदस्य कारः' इस विग्रह में षष्ठीतत्पुरुष करने पर प्रस्तुत सूत्र से मुमागम एवं विभक्तिकार्य करने पर 'अगदङ्कारः' प्रयोग सिद्ध होता है।

(२०) धेनुम्भव्या (प्रयोग)—भू धातु से कर्त्ता अर्थ में 'भव्यगेय०' सूत्र से यत् प्रत्यय का विधान कर 'भव्य' ऐसा कृत्य-प्रत्ययान्त निपातन किया जाता है। स्त्रीत्वविवक्षा में भव्या शब्द बनता है। 'धेनुश्चासौ भव्या' इस विग्रह में 'मयूरव्यंसकादयश्च' से समास तथा भव्या शब्द का परनिपात होता है। यहाँ पर 'भव्या शब्द के परे धेनु शब्द को मुमागम हो' एतदर्थक 'धेनोर्भव्यायाम्' इस वार्त्तिक से मुमागम करने पर तथा विभक्तिकार्य करने पर 'धेनुम्भव्या' प्रयोग सिद्ध होता है। पहली बार जननेवाली गाय के विषय में प्रसव से पूर्व उसके लिए 'धेनुम्भव्या' शब्द का प्रयोग किया जाता है।

(२१) लोकम्पृणः (प्रयोग)—'लोकं पृणाति' इस विग्रह में पृ धातु से 'मूलविभुजादित्वात् क प्रत्यय करने से पृणः के साथ लोकम् का उपपद समास होता है। विभक्ति का लोप करने के बाद 'पृण रूप उत्तरपद के परे लोकशब्द को मुम् हो' एतदर्थक 'लोकस्य पृणे' इस वार्त्तिक से मुमागम करने पर तथा विभक्तिकार्य करने पर 'लोकम्पृणः प्रयोग सिद्ध होता है।

(२२) **तिमिङ्गिलः (प्रयोग)**—'तिमिं गिलतीति' इस विग्रह में गॄ धातु से क प्रत्यय करने पर निष्पन्न गिलः के साथ तिमिम् का उपपद समास होता है। विभक्ति का लोप करने पर 'गिल शब्द के परे गिलभिन्न शब्द को मुम् हो' एतदर्थक 'गिलेऽगिलस्य' इस वार्त्तिक से मुम् तथा विभक्तिकार्य करने पर 'तिमिङ्गिलः' प्रयोग सिद्ध होता है। यह एक मत्स्यविशेष है।

इसी प्रकार 'गिलगिल शब्द के परे गिलभिन्न शब्द को मुम् हो' एतदर्थक 'गिलगिले च' इस वार्त्तिक से तिमि शब्द को मुम् करने पर 'तिमिङ्गिलगिलः' प्रयोग होता है। यहाँ पर 'तिमिङ्गिलं गिलति' ऐसा विग्रह होगा। तिमिङ्गिलगिल भी एक मत्स्यविशेष है।

(२३) **उष्णङ्करणम्, भद्रङ्करणम् (प्रयोग)**—'उष्णस्य करणम्' इस विग्रह में षष्ठीतत्पुरुषसमास, विभक्ति का लोप होने पर 'उष्ण तथा भद्रशब्द को करण रूप उत्तरपद के परे मुम् हो' एतदर्थक 'उष्णभद्रयोः करणे' इस वार्त्तिक से मुम् करने पर तथा विभक्तिकार्य करने पर 'उष्णङ्करणम्' प्रयोग सिद्ध होता है। इसी प्रकार 'भद्रङ्करणम्' प्रयोग भी सिद्ध होगा।

(२४) **रात्रेः कृति विभाषा (सूत्र)**—'कृदन्त उत्तरपद के परे रात्रि शब्द को विकल्प से मुम् का आगम हो' यही सूत्रार्थ है। उदाहरण है—रात्रिञ्चरः—रात्रिचरः।

'रात्रौ चरति' इस विग्रह में चर् धातु से 'चरेष्टः' सूत्र से ट प्रत्यय होता है। अनुबन्धलोप हो जाता है। उपपद समास तथा विभक्ति का लोप करने के बाद 'रात्रेः कृति विभाषा' सूत्र से वैकल्पिक मुम् करने पर एवं विभक्ति-कार्य करने पर 'रात्रिञ्चरः' तथा 'रात्रिचरः' प्रयोग सिद्ध होता है।

इसी प्रकार 'रात्रौ अटति' इस विग्रह में अट् धातु से मूलविभुजादित्वात् क प्रत्यय, अनुबन्धलोप, उपपदसमास, प्रातिपदिकावयव सुप् का लोप, प्रस्तुत सूत्र से रात्रि शब्द को वैकल्पिक मुम् तथा विभक्तिकार्य करने पर 'रात्रिमटः' तथा 'रात्र्यटः' प्रयोग सिद्ध होता है।

(२५) **सपलाशम् (प्रयोग)**—'पलाशेन सह' इस विग्रह में 'तेन सहेति तुल्ययोगे' से बहुव्रीहि समास हुआ। प्रातिपदिकावयव सुप् का लोप हो गया। उपसर्जनत्वात् सह शब्द का पूर्वप्रयोग हुआ। 'उत्तरपद के परे सह को स आदेश हो संज्ञा में' एतदर्थक 'सहस्य सः सञ्ज्ञायाम्' सूत्र से सह को स आदेश हो गया। विभक्तिकार्य करने पर 'सपलाशम्' प्रयोग सिद्ध हुआ।

(२६) समुहूर्त्तं ज्योतिषमधीते, सद्रोणा खारी (प्रयोग)—'मुहूर्त्तविधि-परग्रन्थपर्यन्तं ज्योतिःशास्त्रमधीते' इस अर्थ में 'अव्ययं विभक्ति०' सूत्र से अन्तवचन में अव्ययीभाव समास हुआ। प्रातिपदिकावयव सुप् का लोप हो गया। 'ग्रन्थान्त तथा अधिक अर्थ में उत्तरपद के परे सह को स आदेश हो' एतदर्थक 'ग्रन्थान्ताधिके च' सूत्र से सह को स आदेश हो गया। विभक्तिकार्य करने पर 'समुहूर्त्तम्' प्रयोग सिद्ध हुआ।

इसी प्रकार 'द्रोणपरिमाणादधिका' इस विग्रह में सह शब्द का अधिकार्थ-वाची द्रोण शब्द के साथ 'मयूरव्यंसकादयश्च' से समास हुआ। प्रस्तुत सूत्र से सह को स आदेश तथा विभक्तिकार्य करने पर 'सद्रोणा' प्रयोग सिद्ध हुआ।

(२७) अनु भ्राता सगर्भ्यः, आदि (प्रयोग)—'समाने गर्भे भवः' इस विग्रह में 'तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च' सूत्र से तद्धितार्थ के विषय में समास हुआ। समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लोप हो गया। 'तत्र भवः' इस अर्थ में 'सगर्भसयूथसनुताद्यत्' सूत्र से यत् प्रत्यय हो गया। 'मूर्धन्, प्रभृति, तथा उदर्क को छोड़कर उत्तरपद के परे समान शब्द को स आदेश हो छन्द में' एतदर्थक 'समानस्य च्छन्दस्यमूर्धप्रभृत्युदर्केषु' सूत्र से समान शब्द को स आदेश हो गया। विभक्तिकार्य करने पर 'सगर्भ्यः' प्रयोग सिद्ध हुआ।

इसी प्रकार 'सयूथ्यः' एवं 'सनुत्यः' प्रयोग सिद्ध होंगे।

(२८) सज्योतिः (प्रयोग)—'समानं ज्योतिर्यस्य' इस विग्रह में 'अनेकमन्यपदार्थे' से बहुव्रीहि समास हुआ। समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लोप हो गया। 'ज्योतिर्जनपदरात्रिनाभिनामगोत्ररूपस्थानवर्णवयोवचनबन्धुषु' सूत्र से समान शब्द को स आदेश हो गया। विभक्तिकार्य करने पर 'सज्योतिः' प्रयोग सिद्ध हुआ।

इसी प्रकार—'सजनपदः, सरात्रिः, सनाभिः' आदि प्रयोग सिद्ध होंगे।

(२९) सब्रह्मचारी (प्रयोग)—'समानो ब्रह्मचारी' इस विग्रह में कर्मधारय समास हुआ। प्रातिपदिकावयव सुप् का लोप हो गया। 'ब्रह्मचारिन् रूप उत्तरपद के परे समान शब्द को 'स' आदेश हो, यदि चरण (शाखा) समानत्वेन गम्यमान हो' एतदर्थक 'चरणे ब्रह्मचारिणि' सूत्र से 'समान' को 'स' आदेश हो गया। विभक्तिकार्य करने पर 'सब्रह्मचारी' प्रयोग सिद्ध हुआ। चरण शाखा को कहा जाता है। ब्रह्म वेद है। उसके अध्ययनार्थ व्रत भी उपचारात् ब्रह्म ही कहलाता है। उसका आचरण जो करे वह ब्रह्मचारी है।

(३०) **सतीर्थ्यः (प्रयोग)**—'समाने तीर्थे वासी' इस विग्रह में सप्तमीतत्पुरुष समास हुआ। प्रातिपदिकावयव सुप् का लोप हो गया। 'तीर्थ रूप उत्तरपद के परे तथा यदि प्रत्यय के विवक्षित होने पर समान शब्द को 'स' आदेश हो' एतदर्थक 'तीर्थे ये' सूत्र से 'समान' को 'स' आदेश हो गया। 'समानतीर्थे वासी' से यत् प्रत्यय, 'यस्येति च' से अकार का लोप तथा विभक्तिकार्य करने पर 'सतीर्थ्यः' प्रयोग सिद्ध होता है। तीर्थ का अर्थ है गुरु तथा सतीर्थ्य शब्द का अर्थ है एक गुरुवाला छात्र। अर्थात् एक समान गुरु से पढ़नेवाले छात्र परस्पर 'सतीर्थ्य' कहलाते हैं।

(३१) **सोदर्यः—समानोदर्यः**—'समानोदरे शयितः' इस अर्थ में विवक्षित यत् प्रत्यय से पूर्व 'यदि प्रत्यय के विवक्षित होने पर समान शब्द को स आदेश हो विकल्प से' एतदर्थक 'विभाषोदरे' सूत्र से समान शब्द को वैकल्पिक स आदेश हुआ। 'सोदराद्यः' सूत्र से य प्रत्यय किया गया, भसंज्ञा, 'यस्येति च' से अकारलोप तथा विभक्तिकार्य करने पर 'सोदर्यः' तथा 'समानोदर्यः' प्रयोग सिद्ध हुआ।

(३२) **अङ्गुलिषङ्गः (प्रयोग)**—'अङ्गुलेः सङ्गः' इस विग्रह में षष्ठीतत्पुरुष समास हुआ। समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लोप हो गया। 'अङ्गुलिशब्द से पर सङ्ग शब्द के स को मूर्धन्य अर्थात् षत्व हो समास में' एतदर्थक 'समासेऽङ्गुलेः सङ्गः' इस सूत्र से सकार को षत्व हो गया। सु विभक्ति, रुत्व एवं विसर्ग करने पर 'अङ्गुलिषङ्गः' प्रयोग सिद्ध हुआ। समास न होने पर 'अङ्गुलेः सङ्गः' ऐसा ही प्रयोग होगा।

(३३) **भीरुष्ठानम् (प्रयोग)**—'भीरोः स्थानम्' इस विग्रह में षष्ठीतत्पुरुष समास, प्रातिपदिकावयव सुप् का लुक्, 'भीरुशब्द से पर स्थान शब्द के सकार को मूर्धन्य अर्थात् षकार हो समास में' एतदर्थक 'भीरोः स्थानम्' सूत्र से स्थान शब्द के सकार को षकार हो गया। ष्टुत्व एवं विभक्तिकार्य करने पर 'भीरुष्ठानम्' प्रयोग सिद्ध हुआ। समास न करने पर 'भीरोः स्थानम्' ऐसा ही प्रयोग होगा।

(३४) **ज्योतिष्टोमः, आयुष्टोमः (प्रयोग)**—'ज्योतिषः स्तोमः' इस विग्रह में षष्ठीतत्पुरुषसमास तथा प्रातिपदिकावयव सुप् का लुक् होने के बाद 'ज्योतिष् तथा आयुष् शब्द से पर स्तोम शब्द के सकार को मूर्धन्य अर्थात् षकार हो समास में' एतदर्थक 'ज्योतिरायुषः स्तोमः' सूत्र से स्तोम के सकार

को षत्व हो गया। ष्टुत्व एवं विभक्तिकार्य करने पर 'ज्योतिष्टोमः' प्रयोग सिद्ध हुआ। इसी प्रकार 'आयुषः स्तोमः' ऐसा विग्रह करने पर समासोपरान्त 'आयुष्टोमः' प्रयोग सिद्ध होगा। समास न करने पर क्रमशः–'ज्योतिषः स्तोमः' तथा 'आयुषः स्तोमः' ऐसा ही प्रयोग होगा.

(३५) **सुषामा (प्रयोग)**—'सु शोभनं साम यस्य' इस विग्रह में बहुव्रीहि समास तथा सुप् विभक्ति का लोप करने के बाद 'सुषामादिषु च' सूत्र से साम शब्द के सकार को षत्व करने पर तथा विभक्तिकार्य करने पर 'सुषामा' प्रयोग सिद्ध होता है। इसी प्रकार 'सुषन्धिः' भी होगा।

(३६) **कदश्वः, कदन्नम् (प्रयोग)**—'कुत्सितोऽश्वः' इस विग्रह में 'कुगतिप्रादयः' से तत्पुरुष समास हुआ। प्रातिपदिकावयव सुप् का लोप हो गया। 'अजादि उत्तरपद के परे तत्पुरुष समास में कु को कत् आदेश हो' एतदर्थक 'कोः कत्तत्पुरुषेऽचि' सूत्र से कु को कत् आदेश हो गया। विभक्तिकार्य करने पर 'कदश्वः' प्रयोग सिद्ध हुआ। इसी प्रकार 'कुत्सितमन्नम्' इस विग्रह में समासोपरान्त कु को कत् आदेश होने से 'कदन्नम्' प्रयोग सिद्ध होता है।

(३७) **कुत्रयः (प्रयोग)**—'कुत्सिताः त्रयः' इस विग्रह में 'कुगतिप्रादयः' से तत्पुरुष समास हुआ। समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लोप हो गया। 'त्रि शब्द के परे कु को कत् आदेश हो' एतदर्थक 'त्रौ च' इस वार्त्तिक से कु को कत् आदेश हो गया। विभक्तिकार्य करने पर 'कत्त्रयः' प्रयोग सिद्ध हुआ।

(३८) **कद्रथः, कद्वदः (प्रयोग)**—'कुत्सितो रथः' इस विग्रह में 'कुगति-प्रादयः' से समास हुआ। समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लोप हो गया। 'रथ एवं वद शब्द के परे कु को कत् आदेश हो' एतदर्थक 'रथवदयोश्च' सूत्र से कु को कत् आदेश हो गया। विभक्तिकार्य करने पर 'कद्रथः' प्रयोग सिद्ध हुआ। इसी प्रकार 'कुत्सितो वदः' इस विग्रह में 'कद्वदः' प्रयोग सिद्ध होगा।

(३९) **कत्तृणम् (प्रयोग)**—'कुत्सितं तृणम्' इस विग्रह में 'कुगतिप्रादयः' से समास हुआ। प्रातिपदिकावयव सुप् का लोप हो गया। 'जाति अर्थ में तृण-शब्द के परे कु को कत् आदेश हो' एतदर्थक 'तृणे च जातौ' सूत्र से कु को कत् आदेश हो गया। विभक्तिकार्य होने पर 'कत्तृणम्' प्रयोग सिद्ध हुआ।

(४०) **कापथम् (प्रयोग)**—'कुत्सितः पन्थाः' इस विग्रह में 'कुगति-प्रादयः' से समास हुआ। प्रातिपदिकावयव सुप् का लोप हो गया। 'ऋक्पूरब्धूः-पथामानक्षे' सूत्र से समासान्त अ-प्रत्यय हुआ। टिलोप हो गया। 'पथिन् तथा

अक्षिन् रूप उत्तरपद के परे कु को का आदेश हो' एतदर्थक 'का पथ्यक्षयोः' सूत्र से कु को का आदेश हो गया। 'पथः सङ्ख्याव्ययादेः' से नपुंसकत्व होने से विभक्तिकार्य करने पर 'कापथम्' प्रयोग सिद्ध हुआ।

(४१) **काक्षः (प्रयोग)**–'कुत्सितम् अक्षम्' इस विग्रह में 'कुगतिप्रादयः' से तत्पुरुष समास हुआ। प्रातिपदिकावयव सुप् का लोप हो गया। 'ऋक्पूरब्धूःपथामानक्षे' से समासान्त अ प्रत्यय हुआ। भसंज्ञा तथा टिलोप हो गया। 'का पथ्यक्षयोः' से कु को का आदेश करने पर तथा विभक्तिकार्य करने पर 'काक्षः' प्रयोग सिद्ध हुआ।

'कुत्सिते अक्षिणी यस्य' इस विग्रह में बहुव्रीहि करने पर 'बहुव्रीहौ सक्थ्यक्ष्णोः स्वाङ्गात्षच्' से समासान्त षच् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, टिलोप, कु को का आदेश तथा विभक्तिकार्य करने पर भी 'काक्षः' प्रयोग सिद्ध होता है।

(४२) **काजलम् (प्रयोग)**—'ईषत् जलम्' इस विग्रह में 'कुगतिप्रादयः' से तत्पुरुष समास हुआ। समासत्वात् प्रातिपदिकावयव सुप् का लोप हो गया। 'ईषत् अर्थ में जो कु शब्द उसे का आदेश हो' एतदर्थक 'ईषदर्थे' सूत्र से ईषदर्थक कु को का आदेश हो गया। विभक्तिकार्य करने पर 'काजलम्' प्रयोग सिद्ध हुआ।

(४३) **कापुरुषः—कुपुरुषः (प्रयोग)**—'कुत्सितः पुरुषः' इस विग्रह में 'कुगतिप्रादयः' से तत्पुरुष समास हुआ। प्रातिपदिकावयव सुप् का लोप हो गया। 'पुरुषरूप उत्तरपद के परे कु को वैकल्पिक का आदेश हो' एतदर्थक 'विभाषा पुरुषे' सूत्र से कु को विकल्प से का आदेश हुआ। विभक्तिकार्य करने पर 'कापुरुषः' तथा 'कुपुरुषः' प्रयोग सिद्ध हुआ।

(४४) **कवोष्णम्—कोष्णम्—कदुष्णम् (प्रयोग)**—'ईषदुष्णम्' इस विग्रह में ईषदर्थक कु का उष्णम् के साथ 'कुगतिप्रादयः' से समास हुआ। प्रातिपदिकावयव सुप् का लोप हो गया। 'उष्णरूप उत्तरपद के परे कु को कव तथा का आदेश हो विकल्प से' एतदर्थक 'कवं चोष्णे' सूत्र से कु को कव आदेश होने पर 'कवोष्णम्', का आदेश होने पर 'कोष्णम्' तथा इन दोनों के विकल्प में कत् आदेश होने पर 'कदुष्णम्' प्रयोग सिद्ध होता है।

(४५) **पृषोदरादीनि यथोपदिष्टम् (सूत्र)**—'पृषोदरादिगणपठित शब्द शिष्टों ने जैसे उच्चारित किये, उसी तरह साधु समझे जाये' यही सूत्रार्थ है। उदाहरण है- पृषोदरम् आदि।

यहाँ पर 'पृषतः उदरम्' इस विग्रह में षष्ठी समास तथा सुब्लुक् होने के बाद इस सूत्र के कारण तकार का लोप हो जाने से गुण हो जाता है तथा विभक्तिकार्य करने पर 'पृषोदरम्' प्रयोग सिद्ध होता है।

इसी प्रकार षष्ठीसमासोत्तर निष्पन्न वारिवाहक शब्द में पूर्वपद वारि शब्द को बरूप सर्वादेश तथा वाहकरूप उत्तरपद के आदि व को लादेश किया जाता है। इसी प्रकार अन्य उदाहरण निम्नरूप में हैं—

'भवेद्वर्णागमाद्धंसः सिंहो वर्णविपर्ययात्।
गूढोऽऽत्मा वर्णविकृतेर्वर्णनाशात् पृषोदरम् ॥'

(४६) **द्विगुणाकर्णः (प्रयोग)**—'द्विगुणरेखौ कर्णौ यस्य' इस विग्रह में बहुव्रीहि समास तथा सुप् का लोप हो गया। 'कर्णे लक्षणस्याविष्टाष्टपञ्च-मणिभिन्नच्छिन्नच्छिद्रस्रुवस्वस्तिकस्य' सूत्र से लक्षणवाचक द्विगुण शब्द के अकार को दीर्घ हो गया। विभक्तिकार्य करने पर 'द्विगुणाकर्णः' प्रयोग सिद्ध हुआ।

(४७) **उपानत्, नीवृत् आदि (प्रयोग)**—'उपनह्यते' इस विग्रह में सम्पदादित्वात् क्विप् प्रत्यय हुआ है। उपपद समास हुआ है। क्विप् का सर्वापहार लोप हो जाता है तथा 'नहि वृतिवृषिव्यधिरुचिसहितनिषु क्वौ' से पूर्वपद को दीर्घ हो जाता है। विभक्तिकार्य करने पर 'उपानत्' प्रयोग सिद्ध होता है। इसी प्रकार 'निवर्तते' इस विग्रह में 'नीवृत्' प्रयोग सिद्ध होगा।

(४८) **विश्वामित्रः (प्रयोग)**—'विश्वेषां मित्रः' इस विग्रह में षष्ठी-तत्पुरुष समास हुआ। प्रातिपदिकावयव सुप् का लोप हो गया। 'ऋषिरूप अर्थ में मित्रशब्द के परे विश्वशब्द को दीर्घ हो' एतदर्थक 'मित्रे चर्षौ' सूत्र से विश्वशब्द के अकार को दीर्घ हो गया। सु विभक्ति, रुत्व एवं विसर्ग करने पर 'विश्वामित्रः' प्रयोग सिद्ध हुआ।

(४९) **श्वादन्तः (प्रयोग)**—'शुनो दन्तः' इस विग्रह में षष्ठीतत्पुरुष-समास तथा प्रातिपदिकावयव सुप् का लोप हो गया। 'शुनोदन्तदंष्ट्राकर्णकुन्द-वराहपुच्छपदेषु दीर्घो वाच्यः' इस वार्तिक से श्वन् शब्द को दीर्घ हो गया। विभक्तिकार्य करने पर 'श्वादन्तः' प्रयोग सिद्ध हुआ।

(५०) **दूर्वावणम्—दूर्वावनम् (प्रयोग)**—'दूर्वाणां वनम्' इस विग्रह में षष्ठीतत्पुरुषसमास तथा प्रातिपदिकावयव सुप् का लोप हो गया। 'ओषधि तथा वनस्पतिवाचक से पर वन शब्द के नकार को विकल्प से णत्व हो' एत-दर्थक 'विभाषौषधिवनस्पतिभ्यः' सूत्र से 'वन' के नकार को वैकल्पिक णत्व

करने पर तथा विभक्तिकार्य करने पर 'दूर्वाविणम्' तथा 'दूर्वावनम्' प्रयोग सिद्ध होता है। वनस्पतिवाचक से पर वन शब्द के नकार को वैकल्पिक णत्व होने का उदाहरण है—शिरीषवणम्—शिरीषवनम्।

(५१) **क्षीरपाणा उशीनराः (प्रयोग)**—'क्षीरं पानं येषाम्' इस विग्रह में बहुव्रीहि समास तथा प्रातिपदिकावयव सुप् का लोप हो गया। 'पूर्व-पदस्थनिमित्त से पर पान शब्द के नकार को णकार हो, यदि देश अर्थ गम्य-मान हो तो' एतदर्थक 'पानं देशे' सूत्र से पान शब्द के नकार को णत्व हो गया। जस् विभक्ति आने पर 'क्षीरपाणाः' प्रयोग सिद्ध हुआ। यह 'उशीनराः' इस देशविशेष का विशेषण है। इसी प्रकार 'सुरा पानं येषां ते सुराप्राणाः प्राच्याः' प्रयोग भी सिद्ध होगा।

यदि भाव या करण अर्थ द्योत्य हो तो पान शब्द के नकार को विकल्प से णत्व का विधान 'वा भावकरणयोः' सूत्र से किया जाता है। 'क्षीरस्य पानम्' इस विग्रह में षष्ठीतत्पुरुषसमास तथा प्रातिपदिकावयव सुप् का लोप करने के बाद भाव अर्थ गम्यमान होने के कारण 'वा भावकरणयोः' सूत्र से वैकल्पिक णत्व होने पर 'क्षीरपाणम्' तथा 'क्षीरपानम्' प्रयोग सिद्ध होंगे।

(५२) **गिरिनदी—गिरिणदी (प्रयोग)**—'गिरेर्नदी' इस विग्रह में षष्ठी-तत्पुरुष समास तथा प्रातिपदिकावयव सुप् का लोप हो गया। 'गिरिनदी आदि शब्द को पूर्वपदस्थनिमित्त से पर उत्तरपदस्थ नकार को णकार हो विकल्प से' एतदर्थक 'गिरिनद्यादीनां वा' इस वार्त्तिक से नदी शब्द के नकार को वैकल्पिक णत्व होने के कारण 'गिरिनदी—गिरिणदी' प्रयोग सिद्ध होते हैं।

(५३) **गोष्पदः (प्रयोग)**—'गावः पद्यन्तेऽस्मिन् देशे' इस अर्थ में समासोपरान्त 'सेवित, असेवित तथा प्रमाणरूप अर्थ में गोष्पद ऐसा निपातन किया जाता है अर्थात् गोशब्द के पर पदशब्द को सुट् तथा सकार को षत्व का निपातन किया जाता है' इस अर्थवाले 'गोष्पदं सेवितासेवितप्रमाणेषु' सूत्र से सुट् तथा सकार को षत्व का निपातन होने से 'गोष्पदः' प्रयोग सिद्ध होता है। असेवित का उदाहरण है—'अगोष्पदान्यरण्यानि'। प्रमाण का उदाहरण—'गोष्पदमात्रं क्षेत्रम्' है। सेवित इत्यादि यदि न कहा जाय तो 'गोः पदम्, गोपदम्' ही होगा।

(५४) **आश्चर्यम् (प्रयोग)**—आङ्पूर्वक चर् धातु से 'चरेराङि चागुरौ' सूत्र से यत् प्रत्यय आता है। 'अद्भुत अर्थ में आश्चर्य ऐसा निपातन किया जाता है अर्थात् आ से पर चर् धातु को सुट् का निपातन होता है' एतदर्थक

'आश्चर्यमनित्ये' सूत्र से सुट् करने पर 'आश्चर्यम्' प्रयोग सिद्ध होता है। अद्भुत अर्थ यदि गम्यमान न हो तो सुट् नहीं होगा। इसका उदाहरण है— आचर्यं कर्म शोभनम्।

(५५) **पारस्करः, किष्किन्धा (प्रयोग)**—'पारं करोति तच्छीलः' इस विग्रह में उपपद समास, सुब्लुक् 'कृञो हेतुताच्छील्ये' से ट प्रत्यय, अनुबन्धलोप पारस्करप्रभृतीनि च सञ्ज्ञायाम्' सूत्र से सुट् तथा अन्य कार्य करने पर 'पारस्करः' प्रयोग सिद्ध होता है।

इसी प्रकार 'किं किमपि धत्ते' इस विग्रह में 'आतोऽनुपसर्गे कः' से क प्रत्यय, टाप्, इस सूत्र से पूर्व किम् के मकार का लोप तथा सुट् का निपातन किया जाता है। विभक्तिकार्य करने पर 'किष्किन्धा' प्रयोग सिद्ध होता है।

(५६) **तस्करः, बृहस्पतिः (प्रयोग)**—'तत् अर्थात् चौर्यं करोति' इस विग्रह में समासोपरान्त कृ धातु से 'कृञो हेतुताच्छील्ये' से ट प्रत्यय हुआ, अनुबन्धलोपादि हुआ। 'तद्बृहतोः करपत्योश्चोरदेवतयोः' इस वार्तिक से तद् शब्द के दकार का लोप तथा कर शब्द को सुट् का निपातन करने पर 'तस्करः' प्रयोग सिद्ध हुआ। यहाँ चोररूप अर्थ है।

इसी प्रकार 'बृहत्याः अर्थात् वाचः पतिः' इस विग्रह में समासोपरान्त विभक्ति का लोप करने पर 'कुक्कुट्यादीनामण्डादिषु' से बृहती शब्द को पुंवद्भाव हो गया। प्रस्तुत वार्तिक से बृहत् के तकार का लोप तथा पति शब्द को सुट् का निपातन हुआ। विभक्तिकार्य करने पर 'बृहस्पतिः' प्रयोग सिद्ध हुआ।

(५७) **प्रायश्चित्तिः, प्रायश्चित्तम् (प्रयोग)**—'प्रायस्य चित्तिः अथवा चित्तम्' इस विग्रह में समासोपरान्त विभक्ति का लुक् करने के बाद 'प्रायः शब्द से पर चित्ति एवं चित्तरूप उत्तरपद को सुट् हो अथवा चित्ति एवं चित्त-रूप उत्तरपद के परे प्रायशब्द को सान्त प्रायस् आदेश हो' एतदर्थक 'प्रायस्य चित्तिचित्तयोः' इस वार्तिक से निपातनात् चित्ति एवं चित्त शब्द को सुट् का आगम करके अथवा चित्ति एवं चित्त शब्द के परे प्रायः शब्द को प्रायस् आदेश करके 'प्रायश्चित्तिः' तथा 'प्रायश्चित्तम्' प्रयोग सिद्ध होते हैं।

इसी प्रकार आकृतिगण होने के कारण 'वनस्पतिः' आदि प्रयोग सिद्ध होते हैं।

इस प्रकार समासाश्रयविधि-प्रकरण समाप्त हुआ।

इस प्रकार समास-सन्दर्शिका नामक ग्रन्थ समाप्त हुआ।

प्रयोग, सूत्र एवं वार्तिक सूची

(अकारादिक्रमानुसार)

प्रयोग-सूची

	पृष्ठ		पृष्ठ
अ		अनुरूपम्	११
अक्षिभ्रुवम्	१०३	अनुलोमम्	१००
अगदङ्कारः	१२५	अनुविष्णु	११
अग्निष्टुत्	८९	अनुसामम्	१००
अग्निष्टोमः	८९	अनूपो देशः	९९
अग्नीवरुणौ	८९	अनृक्साम	९७
अग्नीषोमौ	८९	अन्तरीपम्	९८
अङ्गुलिषङ्गः	१२८	अन्तर्लोमः	६९
अचतुरः	१०२	अन्तेगुरुः	११५
अजक्षीरम्	१२२	अपदिशम्	६
अजत्वम्	१२३	अप्रजाः	७०
अञ्जसाकृतम्	१११	अब्राह्मणः	४५
अतिनिद्रम्	१०	अरण्येतिलकाः	११४
अतिराजः	४९	अराजा	१०९
अतिराजा	१०७	अर्काश्वमेधम्	८४
अतिरात्रः	४९	अलङ्कृत्य	४७
अतिश्वो वराहः	५१	अवतमसम्	१०६
अतिहिमम्	१०	अवरहसम्	१०७
अधिगोपम्	८	अवलोमम्	१००
अधिहरि	७	अवसामम्	१००
अध्यात्मम्	२२	अविद्यमानपुत्रः	५६
अनश्वः	४५	अश्वोरसम्	५०
अनुगवम्	१०८	असखा	१०९
अनुरहसम्	१०७	अस्तङ्गत्य	४७

अस्तिक्षीरा गौः ५८
अस्युद्यतः ७७
अहर्दिवम् १०४
अहोरात्रः ४८

आ

आकर्षश्वः ५१
आग्नावैष्णवम् ९०
आग्निमारुतम् ९०
आग्निवारुणम् ९०
आयुष्टोमः १२८
आश्चर्यम् १३२
आसन्नविंशाः ६६
आहिताग्निः ७७

इ

इतिहरि ११
इष्टकचितम् १२५

उ

उत्काकुत् ७४
उदग्भूमः १००
उदमेघः १२१
उद्गन्धिः ७२
उन्नसः ६९
उपकृष्णम् ८
उपगिरम् २३
उपचतुराः १०२
उपचर्मम् २२
उपजरसम् २०
उपदशाः ६७
उपनदम् २२
उपराजम् २२
उपशुनम् १०५
उपसमिधम् २३
उपानत् १३१
उरसिलोमाः ११५
उषासासूर्यम् ९१
उष्णकरणम् १२६
उष्ट्रमुखः ५७

ऊ

ऊर्ध्वंज्ञुः, ऊर्ध्वंजानुः ७२

ऋ

ऋक्सामे १०३

ए

एकक्षीरम् १२२
एकरूप्यम् १२२
एतायते ६२

ओ

ओजसाकृतम् १११

क

कण्ठेकालः ५७, ७७, ११५
कत्तृणम् १२९
कदन्नम् १२९
कदश्वः १२९
कद्रथः १२९
कद्वदः १२९
कर्णेजपः ११५
कल्याणपञ्चमीकः ६१
कल्याणीपञ्चमा ६०
कवोष्णम् १३०
काक्षः १३०
काजलम् १३०

कापथम् १२९
कापुरुषः १३०
कारीषगन्धीबन्धुः १२४
कालेजः ११६
किंराजा १०९
किंसखा १०९
किष्किन्धा १३३
कुक्कुटाण्डम् ६२
कुत्रयः १२९
कुम्भकारः ४७
कुशकाशम् ८२
कृतकृत्यः ७७
कृत्तिकारोहिण्यौ ८२
कृष्णभूमः १००
कृष्णसखः ४९
कृष्णसारङ्गः ४४
केशचूडः ५७
केशाकेशि ६६
कीटतक्षः ५०
कौमुदगन्धीपतिः १२३
कौमुदगन्धीपुत्रः १२३
क्षीरपाणाः १३२
क्षीरोदः १२१

ख

खरणसः ६९
खेशयः ११६

ग

गविष्ठिरः ११३
गार्गी ९४
गार्ग्यौ ९३
गिरिनदी १३२
गेहे नर्दी ३८
गेहे शूरः ३८
गोष्ठश्वः १०६
गोष्पदः १३२
ग्रामगमी २५
ग्रामणिपुत्रः १२२
ग्रामतक्षः ५०
ग्रामेवासः ११६
ग्रामेवासी ११६

च

चित्रगुः ५८
चित्राजरद्गुः ५९
चौरस्य कुलम् ११७

ज

जलजाक्षी ६८
जातोक्षः १०५
ज्योतिष्टोमः १२८

त

तप्तरहसम् १०७
तस्करः १३३
तापसपर्वतौ ८२
तिमिङ्गिलः १२६
तिरस्कृत्य ४७
तिरोभूय ४७
तौ ९५
त्रयोदश ५३
त्रिचतुराः १०२
त्रिनावम् ५१
त्रिमूर्धः ६८

त्र्यहः ५०
त्र्यायुषम् १०५
त्वक्स्रजम् ९२
त्वचिसारः ११३

द

दण्डपाणिः ७७
दण्डादण्डि ६६
दम्पती, जम्पती, जायापती ८०
दर्शनीयमानिनी ६२
दास्याःपुत्रः ११८
दिविजः ११६
दिविस्पृक् ११४
दिवोदासः ११८
दिशोदण्डः ११७
दीर्घसक्थः ६८
दुर्यवनम् ९
दुर्हृदमित्रः ७४
दूर्वावणम् १३१
दृषदिमाषकः ११४
देवब्राह्मणः ४२
देवानाम्प्रियः ११७
द्यावाक्षामे ९१
द्यावाभूमी ९१
द्रुणसः ६९
द्वादश ५२
द्विगुणाकर्णः १३१
द्विधन्वा ७२
द्विनावम् ५१
द्विमूर्धः ६८
द्विभूमः १००
द्विरात्रम् ४८
द्वीपम् ९८
द्व्यङ्गुलम् ४८
द्व्यञ्जलम् ५२
द्व्यहः ५०
द्व्यायुषम् १०५

ध

धेनुम्भव्या १२५
धेन्वनडुहौ १०२

न

नक्तन्दिवम् १०३
निरङ्गुलम् ४८
निर्मक्षिकम् १०
निःश्रेयसम् १०४
नीवृत् १३१

प

पक्वेष्टकचितम् १२५
पञ्चगवधनः ४०
पञ्चगवम् ४०
पञ्चनदम् १०१
पञ्चाङ्गुलम् ६८
पद्धिमम् १२१
पद्मनाभः १०१
परमकारीषगन्धीपुत्रः १२३
परमराजः ४९
परोक्षम् २१
पल्यवर्चसम् १०६
पश्यतोहरः ११७
पाचिकाभार्यः ६३
पाण्डुभूमः १००

पात्रेसमिताः ३८
पारस्करः १३३
पितरौ ९५
पितापुत्रौ ८९
पितुःपुत्रः ११८
पितुरन्तेवासी ११८
पुत्रौ ९४
पुरस्कृत्य ४७
पुरुषायुषम् १०४
पूतिगन्धिः ७२
पूर्वाह्णः ४९
प्रज्ञुः ७१
प्रणसः ६९
प्रतिलोमम् १००
प्रतिविपाशम् २०
प्रतिसामम् १००
प्रतीपम् ९८
प्रत्यक्षम् २१
प्रत्यर्थम् १२
प्रत्युरसम् १०८
प्रपतितपर्णः ५६
प्रशस्तभ्राता ७६
प्राध्वो रथः १०८
प्रायश्चित्तिः १३३
प्रावृषिजः ११६
प्रियसर्पिष्कः ७४
प्लक्षन्यग्रोधम् ८८

ब

बहिर्लोमः ६९
बहुकर्तृकः ६१
बहुदण्डिकानगरी ७५
बहुमालाकः ७५
बहुश्रेयसी ७६
बहुश्रेयान् ७६
बह्वृक्सूक्तम् ९७
बृहस्पतिः १३३
ब्रह्मवर्चसम् १०६
ब्राह्मणक्षत्रियविट्शूद्राः ८३
ब्राह्मणितरा १२०

भ

भद्रकरणम् १२६
भीरुष्ठानम् १२८
भूतपूर्वः ४
भूतबलिः ३०
भ्रातरौ ९४
भ्रुकुटिः १२२

म

मध्येगुरुः ११४
मनसागुप्ता १११
मनसाज्ञायी १११
महाब्रह्मः, महाब्रह्मा ५२
महायशस्कः ७५
महावैयाकरणः ४३
महोक्षः १०५
मातरपितरौ ९२
मातापितरौ ८८
मातुःष्वसा ११८
मित्रावरुणौ ८९
मुकुटेकार्षापणम् ११४
मुष्टीमुष्टि ६६
मृगपदम् ६२

य

यथाशक्ति १२
युधिष्ठिरः ११३
युधिष्ठिरार्जुनौ ८३
युवखलतिः ४३
युवजरती ४३
युवजानिः ७२
यौ ९५

र

रम्यपथो देशः १००
रसिकाभार्यः ६३
राजधुरा ९९
राजवर्चसम् १०६
रात्रिन्दिवम् १०३
रूपवद्भार्यः ५९
रेवतिपुत्रः १२२
रोहिणित्वम् १२३

ल

लोकम्पृणः १२५

व

वाक्त्वचम् ९२
वाङ्मनसे १०३
वाचोयुक्तिः ११७
विकाकुत् ७४
विख्यः ७०
विग्रः ७०
विदुषितरा १२०
विमलापं सरः ९८
विश्वामित्रः १३१
विष्णुपुरम् ९७
वृद्धोक्षः १०५
व्याघ्रपात् ७३
व्यूढोरस्कः ७४

श

शरदिजः ११६
शाकपार्थिवः ४२
शाकप्रति १५
शाङ्र्गधन्वा ७२
शुक्लम् ९४
शुनःपुच्छः ११७
शुनःशेपः ११७
शुनोलाङ्गूलः ११७
श्येतायते ६२
श्वःश्रेयसम् १०६
श्वसुरौ ९५
श्वादन्तः १३१
श्वोवसीयम् १०७

ष

षाण्मातुरः ३९

स

संज्ञुः ७१
सक्षत्रम् १३
सखिपथः ९९
सगर्भ्यः १२७
सचक्रम् १३
सज्योतिः १२७
सतीर्थ्यः १२८
सतृणम् १३
सत्कृत्य ४६
सत्यङ्कारः १२५
सद्रोणा खारी १२७

सन्तमसम्	१०६	सुरभिगन्धिः	७२
सपलाशम्	१२६	सुराजा	१०८
सपुत्रः, सहपुत्रः	६७	सुवर्णालङ्कारः	५७
सप्तगोदावरम्	१०१	सुश्वः	७०
सब्रह्मचारी	१२७	सुषामा	१२९
समक्षम्	२१	सुहृन्मित्रम्	७४
समीपम्	९८	सोदर्यः	१२८
समुहूर्त्तम्	१२७	सौहार्द्यम्	१२१
सम्मद्रम्	९	स्तम्बेरमः	११५
सरजसम्	१०४	स्तोकान्मुक्तः	१११
सर्पिषो ज्ञानम्	३३	स्त्रीपुंसौ	१०२
सर्वकभार्यः	६१	स्त्रीप्रमाणः	६०
सर्वप्रियः	६१	स्वायङ्कृतिः	२५
सर्वमहान्	३२	ह	
सर्वश्वेतः	३२	हंसौ	९४
सर्वाह्णः	४९	हरिगुरुहराः	८१
सहपुत्राय	६७	हरिहरौ	८१
सहरि	१२	हस्तिवर्चसम्	१०६
सहामात्याय	६७	हस्तेबन्धः	११५
साग्नि	१४	हृदिस्पृक्	११४
सुखापेतः	३१	हृद्रोगः	१२१
सुगन्धिः	७२	हृल्लेखः	१२०
सुदिवः	७०	हेमन्तशिशिरवसन्ताः	८२
सुप्रातः	७०	होतुःपुत्रः	११८
सुभ्राता	७६	होतुरन्तेवासी	११८

सूत्र-सूची

अजाद्यदन्तम्	८१	अनुर्यत्समया	१७
अत्यन्तसंयोगे च	२७	अनुवादे चरणानाम्	८४
अधिकरणवाचिना च	३४	अनेकमन्यपदार्थे	५६
अध्ययनतोऽवि०	८५	अन्नेन व्यञ्जनम्	२९

अन्यपदार्थे च संज्ञायाम्	१९
अपपरिबहि०	१५
अर्धं नपुंसकम्	३५
अल्पाख्यायाम्	७३
अल्पाच्तरम्	८१
अव्ययं विभक्ति०	६
अव्ययीभावे चाकाले	१२
अव्ययीभावे शरत्०	२०
अशाला च	५४
आख्यातमाख्यातेन०	४४
आङ्मर्यादाभिविध्योः	१५
आत्मनश्च	११२
आनङ् ऋतो द्वन्द्वे	८८
ईषदकृता०	४५
उपमितं०	४१
उपमानाच्च	७३
उपमानानि०	४१
ऊर्यादिच्विडाचश्च	४६
ऋक्पूरब्धूः०	९७
कडाराः कर्मधारये	४४
कर्तरि च	३४
कर्तृकरणे कृता बहुलम्	२८
कालाः	२६
कालाः परिमाणिना	३५
किं क्षेपे	४३
कुगतिप्रादयः	४६
कुत्सितानि कुत्सनैः	४०
कृत्यैरधिकार्थवचने	२९
कृत्यैर्ऋणे	३७
क्तेन च पूजायाम्	३३
क्तेन नञ्विशिष्टेनानञ्	४२
क्तेनाहोरात्रावयवाः	३७
क्षुद्रजन्तवः	८६
खट्वा क्षेपे	२६
ग्राम्यपशुसङ्घे०	९६
घकालतनेषु०	११६
चतुर्थी तदर्थार्थ०	३०
चार्थे द्वन्द्वः	७९
छाया बाहुल्ये	५४
जातिरप्राणिनाम्	८५
जातेश्च	६५
तत्र	३८
तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च	३९
तृजकाभ्यां कर्तरि	३४
तृतीया तत्कृतार्थेन०	२७
दिक्संख्ये संज्ञायाम्	३८
दिवसश्च पृथिव्याम्	९१
द्वन्द्वश्च प्राणि०	८३
द्वितीया श्रितातीत०	२५
धर्मादनिच्केवलात्	७१
ध्वाङ्क्षेण क्षेपे	३६
नदीभिश्च	१९
नद्याः शेष०	१२०
न निर्धारणे	३३
पञ्चमी भयेन	३१
पथो विभाषा	११०
परवल्लिङ्गं०	५३
परस्य च	११३
पारेमध्ये षष्ठ्या वा	१८
पूरणगुण०	३३

पूर्वसदृशसमोनार्थ० २८
पृषोदरादीनि० १३०
प्राप्तापन्ने च द्वितीयया ३५
भक्ष्येण मिश्रीकरणम् ३०
मयूरव्यंसकादयश्च ४४
यथाऽसादृश्ये १४
यस्य चायामः १७
याजकादिभिश्च ३२
यावदवधारणे १४
येषां च विरोधः शाश्वतिकः ८६
राजदन्तादिषु परम् ८०
रात्रेः कृति विभाषा १२६
लक्षणेनाभिप्रती० १६
वयसि दन्तस्य दतृ ७३
विभाषा चत्वारिंशत्० ५३
विभाषा वर्षक्षर० ११६
विभाषा सेना० ५५
विशिष्टलिङ्गो नदी० ८५
विशेषणं विशेष्येण बहुलम् ४२
वृद्धिनिमित्तस्य च ६४
वैयाकरणाख्यायां ११२
शूद्राणामनिरवसितानाम् ८७
षष्ठी ३२
संख्या वंश्येन १८
संज्ञापूरण्योश्च ६३
संज्ञायाम् ३७
सन्महत्परमो० ४३
सप्तमी शौण्डैः ३६
सभाराजा० ५४
सह सुपा ४
सिद्धशुष्कपक्वबन्धैश्च ३६
स्तोकान्तिकदूरार्थ० ३१
स्त्रियाः पुंवत्० ५८
स्वाङ्गाच्चेतः ६४

वार्तिक-सूची

अ

अनेकशफेष्विति वाच्यम् ९६
अर्थेन नित्य० ३०
अवर्णान्ताद्वा ९९

इ

इवेन समासो विभक्त्यलोपश्च ५

त

त्यदादितः० ९५

ध

धर्मादिष्वनियमः ८०

व

विरूपाणामपि० ९३

... संस्कृत संस्थान
पुस्तकालय
ग्रन्थ परि०सं० 10893
संस्कृत भवन लखनऊ

कतिपय परीक्षोपयोगी प्रश्नोत्तरात्मक ग्रन्थ

साहित्यदर्पणालोकः (प्रश्नोत्तरात्मकः) । श्री रामजी लाल शर्मा १५-००
काव्यप्रकाश-रहस्यम् (प्रश्नोत्तरात्मकः) । श्री रामजी लाल शर्मा १५-००
चन्द्रालोक-रहस्यम् (प्रश्नोत्तरात्मकः) । मानवल्ली तथा वेताल १४-००
शिशुपालवध-रहस्यम् (प्रश्नोत्तरात्मकः) १–४ सर्ग । अशोकचन्द्र गौड़ १६-००
सांख्यकारिकादर्शः (प्रश्नोत्तरात्मकः) । श्री राजेन्द्रप्रसाद कोठ्यारी १०-००
अलङ्कारशास्त्रस्येतिहासः (प्रश्नोत्तरात्मकः) । श्रीपरमेश्वरदीन पाण्डेय १०-००
नलचम्पू-रहस्यम् (प्रश्नोत्तरात्मकः) । १-५ उच्छ्वास । परमेश्वरदीनपाण्डेय १०-००
वेदान्तसार-प्रदीपः (प्रश्नोत्तरात्मकः) । श्री राजेन्द्रप्रसाद कोठ्यारी ८-००
मध्यसिद्धान्तकौमुदी-चन्द्रिका (प्रश्नोत्तरात्मकः) । विजयमित्र शास्त्री ३०-००
मृच्छकटिक-सोपानम् (प्रश्नोत्तरात्मकः) । डॉ० नरेश झा १५-००
वेणीसंहार-रहस्यम् (प्रश्नोत्तरात्मकः) । श्री परमेश्वरदीन पाण्डेय १०-००
नैषध-रहस्यम् (प्रश्नोत्तरात्मकः) । १–५ सर्ग । श्री रमाशंकर मिश्र १६-००
दशरूपक-रहस्यम् (प्रश्नोत्तरात्मकः) । श्री त्रिलोकीनाथ द्विवेदी १२-५०
भट्टिकाव्य-दर्पणः (प्रश्नोत्तरात्मकः) । श्री प्रज्ञान भिक्षु । १–४ सर्ग १५-००
५–८ सर्ग १५-००
भट्टिकाव्यालोकः (प्रश्नोत्तरात्मकः) । रमाशंकर मिश्र । १४–१७ सर्ग १५-००
१८–२२ सर्ग १५-००
चन्द्रकलानाटिका-रहस्यम् (प्रश्नोत्तरात्मकः) । श्री परमेश्वरदीन पाण्डेय ७-५०
संस्कृतसाहित्येतिहासः (प्रश्नोत्तरात्मकः) । श्री परमानन्द शास्त्री १२-५०
रसगङ्गाधर-हृदयम् । (प्रश्नोत्तरात्मकः) । श्री ज्ञानचन्द्र त्यागी १४-००
लघुसिद्धान्तकौमुदी-चन्द्रिका (प्रश्नोत्तरात्मकः) । विजयमित्र शास्त्री २०-००
कादम्बरी-कलाप्रकाशः (प्रश्नोत्तरात्मकः) । डॉ० नरेश झा १५-००
लघुमञ्जूषारहस्यम् (प्रश्नोत्तरात्मकः) । स्वामी रामेश्वर पुरी ६-००
शाकुन्तलरहस्यम् (प्रश्नोत्तरात्मकः) । श्री त्रिलोकीनाथ द्विवेदी १५-००
मेघदूत-तत्त्वालोकः (प्रश्नोत्तरात्मकः) । डॉ० अशोकचन्द्र गौड़ शास्त्री १०-००
महाभाष्यनवाह्निकालोचनम् (प्रश्नोत्तरात्मकः) । विजयमित्र शास्त्री १६-००
मुक्तावली-प्रकाशः (न्यायसिद्धान्तमुक्तावली-प्रश्नोत्तरी) ।
श्री राजेन्द्रप्रसाद कोठ्यारी १५-००
औचित्यविचारचर्चा-मञ्जरी (प्रश्नोत्तरात्मकः) । डॉ० नरेश झा १०-००
वक्रोक्तिजीवितम् (प्रश्नोत्तरात्मकः) । डॉ० नरेश झा ७-५०
भारतीयसंस्कृति-सोपानम् (प्रश्नोत्तरात्मकः) । डॉ० शिवप्रसाद द्विवेदी १२-५०